नवीन परिवर्द्धित और अप-टु-डेट संस्करण

गांधी-वाणी

[विषय और काल-क्रम से चुनी हुई गांधी जी की सूक्तियाँ]

संग्राहक एवं सम्पादक

श्री रामनाथ 'सुमन'

प्रकाशक

साधना-सदन,

६९, लूकरगंज, इलाहाबाद

तीन रुपये

प्रकाशक

साधना-सदन,

९६, लूकरगंज, प्रयाग।

मार्च १९४७

२०००

तीन रुपये

मुद्रक

जगतनारायणलाल

हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग।

स्व० महादेव भाई को

जो ऐसी पुस्तक लिखने के सब

तरह से अधिकारी थे

—'सुमन'—

भूमिका

गांधी जी के विचारों से कोई सहमत हो या असहमत, प्रत्येक क्षेत्र में उनका व्यापक प्रभाव भारतीय विचार-धारा पर पड़ा है, इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। वह महापुरुष हैं; वह युग-पुरुष हैं। उनकी देन राजनीति में भी काफ़ी है पर उससे भी अधिक हमारी संस्कृति के प्रति है। इस युग में, युग के सर्वश्रेष्ठ तत्त्वों को अपनाते हुए भी, वह भारतीय सभ्यता और संस्कृति के सब से शक्तिशाली प्रवक्ता हैं—ऐसा प्रवक्ता जो न केवल बोलता है बल्कि अपने जीवन और आचरण में अपने विचारों को अभिव्यक्त करता है।

हम गांधी-युग में ही जी रहे हैं, इसलिए उनकी शक्ति और उनकी विचार-शृंखला का ठीक-ठीक अन्दाज़ आज कर लेना बहुत कठिन है। फिर गांधी जी ने इतना लिखा और इतना कहा है और इतनी प्रकार से कहा है कि जहाँ वह लोक-प्रिय हुए हैं तहाँ उनके विचारों को समझने में भ्रम भी खूब हुआ है। उनके अच्छे-अच्छे अनुयायियों ने इस भ्रम का परिचय दिया है। उनकी स्पष्ट घोषणाओं के रहते हुए अहिंसा ने हिंसा का चोला धारण किया है; उनके बार-बार चेतावनी देने पर भी लोगों ने उनकी बातों का मनमाना अर्थ निकालने की कोशिश की है। किसी ने ठीक ही कहा है—'संसार अपने महापुरुषों के बारे में कुछ नहीं जानता।' जो वह सोचता है, उसका अपना कल्पित होता है। इसलिए इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि उनके विचार सिलसिलेवार एकत्र कर दिये जायँ।

× × ×

१९३८ में पहली बार मैंने गांधीजी के विचारों का एक कोष तैयार करने की योजना बनाई थी। १९४० में मैंने जब उनके विविध विषय के विचारों का सङ्कलन शुरू किया तब मालूम पड़ा कि काम कितना कठिन है। गांधीजी ने पिछले ४० वर्षों में इतना लिखा है कि मनोयोगपूर्वक उसे पढ़ना ही वर्षों का काम है। प्रायः दो वर्ष कठिन परिश्रम करके मैं यह पुस्तक पूर्ण कर पाया हूँ। इसमें उनके विचारों का विषयानुसार वर्गीकरण तो किया ही गया है; उनका क्रम भी ऐसा रखा गया है कि काल क्रमानुसार उनके विकास का ज्ञान भी पाठकों को होता चले। विचार जहाँ से लिये गये हैं उनका पूरा-पूरा हवाला दिया गया है। छपने की तिथि तो दी ही गई है; जहाँ पता चल सका, तहाँ लिखने की तिथि और स्थान भी देने की चेष्टा की गई है। मूल रूप में वह रचना जिस पत्र में छपी उसका नाम पहले, और अनुवाद रूप में जिस पत्र में आई उसका नाम बाद में दिया गया है। अनुवाद को मूल से मिलाकर अनेक स्थानों पर शुद्ध किया गया है। मैं कह सकता हूँ कि पुस्तक को जितना प्रामाणिक बनाया जा सकता था बनाने की चेष्ठा की गई है। प्रत्येक विषय पर गांधीजी के विचार जानने के लिए यह एक रेडी रेफरेंस' का काम देगी।

इधर पुस्तक दो वर्षों से अप्राप्य थी। इस बार इसे फरवरी १९४७ तक बिल्कुल अप-टु-डेट कर दिया गया है। गांधीजी की अनेक सूक्तियाँ जोड़ी गई हैं। सत्याग्रह-विज्ञान और असहयोग-तत्व दो अध्याय सर्वथा नये हैं। इन परिवर्द्धनों से पुस्तक नई और अधिक उपयोगी हो गई है।

भारतीय सांस्कृतिक विचार-धारा को नवीन प्रकाश में अध्ययन करने में पुस्तक हर तरह के विचारवालों के लिए सहायक होगी।

—श्रीरामनाथ 'सुमन'

विषय-क्रम

संकेत-शब्दों का स्पष्टीकरण

यं० इं०='यंग इंडिया' : गांधी जी का अङ्गरेजी साप्ताहिक विचारपत्र।

न० जी०='नवजीवन' : गांधी जी का गुजराती साप्ताहिक।

हिं० न० जी०='हिंदी नवजीवन' : गांधी जी का हिन्दी साप्ताहिक।

ह० ज०='हरिजन' : गांधी जी का अङ्गरेजी साप्ताहिक।

ह० बं०='हरिजन बंधु' : गांधी जी का गुजराती साप्ताहिक।

ह० से०='हरिजन सेवक' : गांधी जी का हिन्दी साप्ताहिक।

आ० क०='आत्मकथा : गांधी जी की आत्मकथा।

गांधी-वाणी

: १ :

सत्य

सत्य क्या है ?

"...इस परिमित सत्य के अतिरिक्त एक शुद्ध सत्य है। वह अखण्ड है; सर्वव्यापक है। परन्तु वह अवर्णनीय है क्योंकि सत्य ही ईश्वर है, अथवा परमेश्वर ही सत्य है। दूसरी सब चीज़ें मिथ्या हैं अर्थात् दूसरों में इसी परिमाण में जो कुछ सत्य हो वही ठीक है।"

× × ×

"जो सत्य जानता है; मन से, वचन से और काया से सत्य का आचरण करता है, वह परमेश्वर को पहचानता है। इससे वह त्रिकाल-दर्शी हो जाता है। उसे इसी देह में मुक्ति प्राप्त हो जाती है।"

× × ×

"...सत्य कहना और करना मेरा स्वभाव ही हो गया है। पर हाँ, जिस सत्य को मैं परोक्ष रीति से जानता हूँ उसके पालन करने का दावा मैं नहीं कर सकता। मुझसे अनजान में भी अत्युक्ति हो सकती है। इस सब में असत्य की छाया है और ये सत्य की कसौटी पर नहीं चढ़ सकते। जिसका जीवन सत्यमय है वह तो शुद्ध स्फटिक मणि की तरह हो जाता है। उसके पास असत्य ज़रा देर के लिए भी नहीं ठहर सकता। सत्याचरणी को कोई धोखा दे ही नहीं सकता; क्योंकि उसके सामने झूठ बोलना अशक्य हो जाना चाहिए। संसार में कठिन से कठिन व्रत सत्य का है।..."

× × ×

"मेरे सामने जब कोई असत्य बोलता है तब मुझे उसपर क्रोध होने के बजाय स्वयं अपने ही ऊपर अधिक कोप होता है। क्योंकि मैं जानता हूँ कि अभी मेरे अन्दर—तह में—असत्य का वास है।"

—नवजीवन : हिं० न० जी० २७।११।'२१]

सत्य में अहिंसा का समावेश है

"सत्य में ही सब बातों का समावेश हो जाता है। अहिंसा में चाहे सत्य का समावेश न होता हो पर......सत्य में अहिंसा का समावेश हो जाता है।"

× × ×

"निर्मल अन्तःकरण को जिस समय जो प्रतीत हो वही सत्य है। उसपर दृढ़ रहने से शुद्ध सत्य की प्राप्ति हो जाती है।"

× × ×

"सत्य में प्रेम मिलता है; सत्य में मृदुता मिलती है।"

× × ×

"शरीर की स्थिति अहङ्कार की ही बदौलत सम्भवनीय है। शरीर का आत्यन्तिक नाश ही मोक्ष है। जिसके अहङ्कार का आत्यन्तिक नाश हो चुका है वह तो प्रत्यक्ष सत्य की मूर्ति हो जाता है।"

—१७।३।'२३ : श्री जमनालाल बजाज के नाम साबरमती जेल से लिखे एक पत्र से]

सत्य

"...सत्य सर्वदा स्वावलम्बी होता है और बल तो उसके स्वभाव में ही होता है।"

—यं० इं० । हिं० न० जी० १४।२।'२४ । पृष्ठ १४०]

सत्य का बल

"पृथ्वी सत्य के बल पर टिकी हुई है। 'असत्'—असत्य—के मानी हैं 'नहीं'; 'सत्'—सत्य—अर्थात् 'है'। जहाँ असत् अर्थात् अस्तित्व ही नहीं है, उसकी सफलता कैसे हो सकती है? और जो सत् अर्थात् 'है' उसका नाश कौन कर सकता है? बस, इसी में सत्याग्रह का समस्त शास्त्र समाविष्ट है।"

—द० अ० का सत्याग्रह : उत्तरार्द्ध, हिन्दी, पृष्ठ १३७; १९२४]

कटु भाषा बनाम सत्य

"...तीखी-चटपटी भाषा सत्य के नज़दीक उतनी ही विजातीय है जितनी कि नीरोग जठर के लिए तेज़ मिर्चियाँ।"

× × ×

"...सत्य स्वयं ही पूर्ण शक्तिमान है और जब कड़े शब्दों के द्वारा उसकी पुष्टि का प्रयत्न किया जाता है तब वह अपमानित होता है।"

× × ×

"...जो मनुष्य अपनी जिह्वा को कब्जे में नहीं रख सकता उसमें सत्य का अधिष्ठान नहीं है।"

× × ×

"...कटुता से कल्पना-पथ मलिन हो जाता है।"

—यं० इं० । हिं० न० जी० १७।९।'२५; पृष्ठ ३४-३५]

सत्य की सत्ता

"...मेरा यह विश्वास दिन-दिन बढ़ता जाता है कि सृष्टि में एक मात्र सत्य की ही सत्ता है और उसके सिवा दूसरा कोई नहीं है।"

—सत्याग्रहाश्रम, साबरमती। मार्गशीर्ष शुक्ल ११ सं० १९८२ : आत्म-कथा की भूमिका से : हिन्दी संस्करण : सस्ता सा० मण्डल]

सत्यरूपी परमेश्वर का शोधक हूँ !

"...परमेश्वर की व्याख्याएँ अगणित हैं, क्योंकि उसकी विभूतियाँ भी अगणित हैं। विभूतियाँ मुझे आश्चर्य-चकित तो करती हैं, मुझे क्षण भर के लिए मुग्ध भी करती हैं, पर मैं तो पुजारी हूँ सत्य-रूपी परमेश्वर का। मेरी दृष्टि में वही एक मात्र सत्य है, दूसरा सब कुछ मिथ्या है। पर यह सत्य अभी तक मेरे हाथ नहीं लगा है; अभी तक तो मैं उसका शोधक मात्र हूँ। हाँ, उसकी शोध के लिए मैं अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु को भी छोड़ देने के लिए तैयार हूँ; और इस शोधरूपी यज्ञ में अपने शरीर को भी होम देने की तैयारी कर ली है...।"

—सत्याग्रहाश्रम, साबरमती। मार्गशीर्ष शुक्ल ११ सं० १९८२, 'आत्मकथा' की भूमिका से; हिन्दी संस्करण। स० सा० मण्डल]

सत्य

"...सत्य एक विशाल वृक्ष है। उसकी ज्यों-ज्यों सेवा की जाती है त्यों-त्यों उसमें अनेक फल आते हुए दिखाई देते हैं। उनका अन्त ही नहीं होता। ज्यों-ज्यों हम गहरे पैठते हैं, त्यों-त्यों उनमें से रत्न निकलते हैं सेवा के अवसर हाथ आते रहते हैं।"

—हिं० आ० क०। भाग ३, अध्याय ११, पृष्ठ २४०। स० संस्करण, १९३९]

शुद्ध सत्य की शोध

"...रागद्वेषादि से भरा मनुष्य सरल हो सकता है; वह वाचिक सत्य भले ही पास पाल ले, पर उसे शुद्ध सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। शुद्ध सत्य की शोध करने के मानी हैं रागद्वेषादि द्वन्द्व से सर्वथा मुक्ति प्राप्त कर लेना।"

—हिं० आ० क०। भाग ४, अध्याय ३७, पृष्ठ ३८८। स० संस्करण १९३९]

सत्य और अहिंसा

"...अहिंसा को जितना मैं पहचान सका हूँ उसकी बनिस्बत मैं सत्य को अधिक पहचानता हूँ, ऐसा मेरा ख्याल है। और यदि मैं सत्य को छोड़ दूँ तो अहिंसा की बड़ी उलझनें मैं कभी न सुलझा सकूँगा, ऐसा मेरा अनुभव है।"

—हिं० आ० क० । भाग ५, अध्याय २९, पृष्ठ ५०६-७ । स० संस्करण, १९३९]

× × ×

"...मैंने सत्य को जिस रूप में देखा है और जिस राह से देखा है, उसे उसी रूप से, उसी राह से बताने की हमेशा कोशिश की है।... मैं सत्य को ही परमेश्वर मानता हूँ।......सत्यमय बनने के लिए अहिंसा ही एक राजमार्ग है।......मेरी अहिंसा सच्ची होते हुए भी कच्ची है, अपूर्ण है। इसलिए मेरी सत्य की झाँकी उस सत्य-रूपी सूर्य के तेज की एक किरण-मात्र के दर्शन के समान है, जिसके तेज का माप हजारों साधारण सूर्यों को इकट्ठा करने पर भी नहीं मिल सकता। अतः अब तक के अपने प्रयोगों के आधार पर इतना तो मैं अवश्य कह सकता हूँ कि इस सत्य का सम्पूर्ण दर्शन सम्पूर्ण अहिंसा के अभाव में अशक्य है।

"ऐसे व्यापक सत्यनारायण के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए प्राणि-मात्र के प्रति आत्मवत् प्रेम की बड़ी भारी ज़रूरत है। इस सत्य को पाने की इच्छा करनेवाला मनुष्य जीवन के एक भी क्षेत्र से बाहर नहीं रह सकता। यही कारण है कि मेरी सत्य-पूजा मुझे राजनीतिक क्षेत्र में घसीट ले गई। जो यह कहते हैं कि राजनीति से धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं है, मैं निस्संकोच होकर कहता हूँ कि वे धर्म को नहीं जानते।...

"...बिना आत्म-शुद्धि के प्राणि-मात्र के साथ एकता का अनुभव

नहीं किया जा सकता। और आत्म-शुद्धि के अभाव में अहिंसाधर्म का पालन करना भी हर तरह ना-मुमकिन है। चूँकि अशुद्धात्मा परमात्मा के दर्शन करने में असमर्थ रहता है, इसलिए जीवन-पथ के सारे क्षेत्रों में शुद्धि की जरूरत रहती है। इस तरह की शुद्धि साध्य है; क्योंकि व्यक्ति और समष्टि के बीच इतना निकट का सम्बन्ध है कि एक की शुद्धि अनेक की शुद्धि का कारण बन जाती है और व्यक्तिगत कोशिश करने की ताक़त तो सत्यनारायण ने सब किसी को जन्म से ही दी है।

"लेकिन मैं तो पल-पल इस बात का अनुभव करता हूँ कि शुद्धि का यह मार्ग विकट है। शुद्ध होने का मतलब तो मन से, वचन से और काया से निर्विकार होना, राग-द्वेष आदि से रहित होना है। इस निर्विकार स्थिति तक पहुँचने के लिए प्रति पल प्रयत्न करने पर भी मैं उस तक पहुँच नहीं सका हूँ। इस कारण लोगों की प्रशंसा मुझे भुला नहीं सकती, उलटे बहुधा वह मेरे दुःख का कारण बन जाती है। मैं तो मन के विकारों को जीतना, सारे संसार को शस्त्र-युद्ध में जीतने से भी कठिन समझता हूँ।......मैं जानता हूँ कि अभी मुझे बीहड़ रास्ता तय करना है। इसके लिए मुझे शून्यवत् बनना पड़ेगा। जबतक मनुष्य खुद अपने आप को सबसे छोटा नहीं मानता है तबतक मुक्ति उससे दूर रहती है। अहिंसा नम्रता की पराकाष्ठा है।......और यह अनुभवसिद्ध बात है कि इस तरह की नम्रता के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती।..."

—हिं० आ० क०। भाग ५, अध्याय ४४, पृष्ठ ५५३-५४ सस्ता संस्करण. १९३९]

सत्य का और क्या पुरस्कार होगा ?

"...सत्य के पालन में ही शान्ति है। सत्य ही सत्य का पुरस्कार

है। कीमती से कीमती वस्तु बेचनेवाले को जैसे उससे अधिक कीमती वस्तु नहीं मिल सकती, वैसे ही सत्यवादी भी सत्य से बढ़कर और क्या चीज़ चाहेगा?……सत्य जहाँ सूर्य के समान ताप पहुँचाता है तहाँ प्राण का सिञ्चन भी करता है।…"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, १९।१२।'२९, पृष्ठ १३८]

सत्य में गोपीनीयता नहीं!

"……सत्य गोपीनीयता से घृणा करता है।"

—यं० इं०, २१।१२।'३१]

सत्य ही परमेश्वर है!

"…परमेश्वर 'सत्य' है, यह कहने के बजाय 'सत्य' ही परमेश्वर है यह कहना अधिक उपयुक्त है।"

सत्य बिना शुद्ध ज्ञान नहीं

"जहाँ सत्य नहीं है वहाँ शुद्ध ज्ञान सम्भव नहीं हो सकता।…… जहाँ सत्य ज्ञान है वहाँ आनन्द ही होगा, शोक होगा ही नहीं। और, सत्य शाश्वत है इसलिए आनन्द भी शाश्वत होता है।"

सत्य की आराधना ही भक्ति है

"सत्य की आराधना भक्ति है।…वह 'मरकर जीने का मन्त्र' है।"

—यरवदा जेल; २२।७।'३०]

सत्यनारायण

"विचार में देह का संसर्ग छोड़ दें तो अन्त में देह हमें छोड़ देगी। यह मोह-रहित स्वरूप सत्यनारायण है।"

—यरवदा जेल; २९।७।'३०]

सत्य स्वतन्त्र है

"परम सत्य अकेला खड़ा होता है। सत्य साध्य है, अहिंसा साधन है।"

—यरवदा जेल; १९।८।'३०]

सत्य की शक्ति

"सत्य के पास अपनी रक्षा के लिए अमोघ शक्ति है। सत्य ही जीवन है और ज्योंही यह किसी मानव-व्यक्ति में अपना घर कर लेता है त्योंही यह अपने को फैला लेता है।"

—ह० से०; १७।३।'३३]

सत्य ही धर्म की प्रतिष्ठा है

"सत्य ही एक धर्म की सच्ची प्रतिष्टा है। जब सत्य ही परमेश्वर है, तो धर्म में असत्य को स्थान नहीं हो सकता है।"

—ह० से०; १७।३।'३३]

सत्य की अपार शक्ति

"हमको तो अपना जीवन सत्यमय बनाना है। हम देखते हैं कि सत्य के नाम पर असत्य लोगों के आदर का पात्र हो रहा है। धर्म का उद्देश्य तो है बन्धुत्व को बढ़ाना, मनुष्य-मनुष्य में जो कृत्रिम भेद हैं, उनको कम करना। लेकिन आज उसी के नाम पर अछूतों के साथ घृणित व्यवहार हो रहा है। मैं कह चुका हूँ कि असत्य स्वयं कमजोर है, परतन्त्र है। बिना सत्य के आधार के वह खड़ा ही नहीं रह सकता। लेकिन मैं आप को यह बतलाना चाहता हूँ कि सत्य के नाम पर अगर असत्य भी इतना विजयी हो सकता है, तो स्वयं सत्य कितना

होगा ? इसका नाप कौन लगा सकता है ?"

—'सर्वोदय,' अक्टूबर,' ३८, पृष्ठ १९ (उद्धरण)]

सत्य की क्षमता

"...मामूली लोग आकाश तक ही देख सकते हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि हम आकाश-गंगा के जगत् को देख लेते हैं लेकिन उसके परे कुछ हो तो हमें पता नहीं। लेकिन सत्य तो आकाश को भी छेद कर उसके परे चला जाता है। हमको तो अपना जीवन सत्यमय बनाना है।... .. मैं कह चुका हूँ कि असत्य स्वयं कमजोर है, परतन्त्र है। बिना सत्य के आधार के वह खड़ा ही नहीं रह सकता। ..."

—गाँधी सेवा संघ सम्मेलन, हुबली, २०।४।'३७]

सत्यव्रती अकेला नहीं

"...मेरे लिए सत्य धर्म और हिन्दू धर्म पर्यायवाची शब्द हिन्दू धर्म में अगर असत्य का कुछ अंश है तो मैं उसे धर्म नहीं मान सकता। अगर इसके लिए सारी हिन्दू जाति मेरा त्याग कर दे और मुझे अकेला भी रहना पड़े तो भी मैं कहूँगा, मैं अकेला नहीं हूं, तुम अकेले हो, क्योंकि मेरे साथ सत्य है और तुम्हारे साथ नहीं है। सत्य तो प्रत्यक्ष परमात्मा है।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन हुबली, २०।४।'३७]



: २ :

अहिंसा

[१]

अहिंसा और उसकी शक्ति

अहिंसा : तात्विक

"अहिंसा मानो पूर्ण निर्दोषता ही है। पूर्ण अहिंसा का अर्थ है प्राणिमात्र के प्रति दुर्भाव का पूर्ण अभाव।"

× × ×

"अहिंसा एक पूर्ण स्थिति है। सारी मनुष्य जाति इसी एक लक्ष्य की ओर स्वभावतः, परन्तु अनजान में, जा रही है।"

—यं० इं० । हिं० न० जी० १२।३।'२५]

अहिंसा

"...अहिंसा एक महाव्रत है। तलवार की धार पर चलने से भी कठिन है। देहधारी के लिए उसका सोलह आना पालन असम्भव है। उसके पालन के लिए घोर तपश्चर्या की आवश्यकता है। तपश्चर्या का अर्थ यहाँ त्याग और ज्ञान करना चाहिए।"

—नवजीवन । हिं० न० जी०, २०।८।'२५ पृष्ठ ३]

सत्य और अहिंसा

"...सत्य विधायक है; अहिंसा निषेधात्मक है। सत्य वस्तु का साक्षी है; अहिंसा वस्तु होने पर भी उसका निषेध करती है। सत्य है असत्य नहीं है। हिंसा है; अहिंसा नहीं है। फिर भी अहिंसा ही होना चाहिए। यही परमधर्म है। सत्य स्वयंसिद्ध है। अहिंसा उसका सम्पूर्ण फल है; सत्य में वह छिपी हुई है। वह सत्य की तरह व्यक्त नहीं है।"

× × ×

"....अहिंसा सत्य का प्राण है। उसके बिना मनुष्य पशु है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, १५।१०।'२५ पृष्ठ ६९]

× × ×

"....मेरे लिए सत्य से परे कोई धर्म नहीं है, और अहिंसा से बढ़कर कोई परम कर्त्तव्य नहीं है। 'सत्यान्नास्ति परो धर्मः' और 'अहिंसा परमो धर्मः' इन दो सूत्रों में धर्म शब्द के अर्थ भिन्न हैं। इनके मानी हैं, सत्य से बढ़कर कोई ध्येय नहीं और अहिंसा से बढ़कर कोई कर्त्तव्य नहीं है। इस कर्त्तव्य को करते-करते ही आदमी सत्य की पूजा कर सकता है। सत्य की पूजा का दूसरा कोई साधन नहीं है। सत्य के लिए देश के नाश का भी साक्षी बनना पड़े तो बनना चाहिए। देश को छोड़ना पड़े तो छोड़ना चाहिए...। ......यदि मेरा कोई सिद्धान्त कहा जाय तो वह इतना ही है। पर इसमें गांधीवाद जैसी कोई चीज़ नहीं है। ...मैंने जो कुछ लिखा है, वह मैंने जो कुछ किया है, उसका वर्णन है; और मैंने जो कुछ किया है वही सत्य और अहिंसा की सब से बड़ी टीका (व्याख्या) है।"

—गांधी सेवासंघ सम्मेलन,सावली; ३ मार्च,'३६]

अहिंसा प्रेम की पराकाष्ठा है

"....दूसरे के लिए प्राणार्पण करना प्रेम की पराकाष्टा है और उसका शास्त्रीय नाम अहिंसा है। अर्थात् यों कह सकते हैं कि अहिंसा ही सेवा है। संसार में हम देखते हैं कि जीवन और मृत्यु का युद्ध होता रहता है परन्तु दोनों का परिणाम मृत्यु नहीं जीवन है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० १५।९।'२७, पृष्ठ २६। मैसूर से विदा होते समय स्वयंसेवकों को दिये गये प्रवचन से]

अहिंसा

"...अहिंसा प्रचण्ड शस्त्र है। उसमें परम पुरुषार्थ है। वह भीरु से दूर भागती है। वह वीर पुरुष की शोभा है, उसका सर्वस्व है। यह शुष्क, नीरस, जड़ पदार्थ नहीं है। यह चेतन है। यह आत्मा का विशेष गुण है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, १३।१।'२८; पृष्ठ २८]

× × ×

"अहिंसा ही सत्येश्वर का दर्शन करने का सीधा और छोटा-सा मार्ग दिखाई देता है।"

—ह० से० १०।११।'३३]

अहिंसा सब से बड़ी शक्ति

"सत्य के बाद असल में अहिंसा ही संसार में बड़ी-से-बड़ी सक्रिय शक्ति है। विफल तो वह कभी जाती ही नहीं। हिंसा सिर्फ ऊपर से सफल मालूम पड़ती है।"

—ह० से० २८।९।'३४]

× × ×

"अहिंसा की शक्ति अपरिमेय है। उसी तरह अहिंसक की शक्ति भी अतुलित है। अहिंसक स्वयं कुछ नहीं करता; उसका प्रेरक ईश्वर होता है।......पूर्ण सत्याग्रही याने ईश्वर का पूर्ण अवतार।...... इसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं है कि यह संसार इस तरह का अवतार निर्माण करने की प्रयोगशाला है। हमें यह श्रद्धा रखनी चाहिए कि हम सब मिलकर अगर अंशरूप से तैयारी करें तो कभी न कभी पूर्ण अवतार प्रकट अवश्य ही होगा।......"

—५।४।'३५ के एक पत्र से; 'सर्वोदय', जनवरी, '३९, पृष्ठ ३२]

अहिंसा

"अहिंसा—यह मानवजाति के पास एक ऐसी प्रबल-से-प्रबल शक्ति पड़ी हुई है कि जिसका कोई पार नहीं। मनुष्य की बुद्धि ने संसार के जो प्रचण्ड से प्रचण्ड अस्त्र-शस्त्र बनाये हैं उनसे भी प्रचण्ड यह अहिंसा की शक्ति है। संहार कोई मानव-धर्म नहीं है। मनुष्य अपने भाई को मार कर नहीं बल्कि ज़रूरत हो तो उसके हाथ से मर जाने को तैयार रहकर स्वतन्त्रता से जीवित रहता है। हत्या या अन्य प्रकार की हिंसा, फिर चाहे वह किसी भी कारण की गई हो, मानवजाति के विरुद्ध एक अक्षम्य अपराध है।"

—ह० से०; २६।७।'३५; पृष्ठ १८४]

× × ×

"मुझमें अहिंसा की अपूर्ण शक्ति है, यह मैं जानता हूँ; लेकिन जो कुछ शक्ति है वह अहिंसा की ही है। लाखों लोग मेरे पास आते हैं। प्रेम से मुझे अपनाते हैं। औरतें निर्भय होकर मेरे साथ रह सकती हैं। मेरे पास ऐसी कौन-सी चीज़ है? केवल अहिंसा की शक्ति है; और कुछ नहीं। अहिंसा की यह शक्ति एक नई नीति के रूप में जगत् को देना चाहता हूँ।"

—गांधी सेवा संघ की सभा, वर्धा; २२।६।'४०]

पूर्ण अहिंसक की शक्ति

"......कभी-कभी यह विचार आता है कि सब छोड़-छाड़कर एक दम एकान्त में जाकर अपना प्रयोग चलाकर देखूँ तो? अपनी शान्ति और कल्याण साधने के लिए नहीं, किन्तु आत्मनिरीक्षण के लिए, आत्मा की आवाज़ को अधिक स्पष्टता से सुनने के लिए, जगत्

के ही कल्याण का प्रतिक्षण विचार हो, और इस विचार की सहज-सिद्धि प्राप्त हो सके। तभी मेरा अहिंसा का प्रयोग सफल होगा। पूर्ण अहिंसक मनुष्य गुफा में बैठा हुआ भी सारे जगत् को हिला सकता है, इसमें मुझे शङ्का नहीं। पर उस विचार के पीछे पूर्ण एकाग्रता और पूर्ण शुद्धि होनी चाहिए।"

—ह० से०, २७.७.'४०; पृष्ठ २०६। प्यारेलाल के लेख से]

अहिंसा श्रद्धा का विषय है

"······यह सच है कि अहिंसा के मामले में भी हमको बुद्धि का प्रयोग अन्त तक करना होगा। लेकिन मैं आपसे कह दूँ कि अहिंसा केवल बुद्धि का विषय नहीं है; यह श्रद्धा और भक्ति का विषय है। यदि आपका विश्वास अपनी आत्मा पर नहीं है, ईश्वर और प्रार्थना पर नहीं है तो अहिंसा आपके काम आनेवाली चीज़ नहीं है।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, डेलांग, २७.३.'३८]

नम्रता की चरम सीमा = अहिंसा

"मैं जानता हूँ कि अभी मुझे इससे कहीं विकट रास्ता तै करना है। मुझे अपने आप को शून्य बना लेना चाहिए। जबतक मनुष्य अपनी गिनती पृथ्वी के सारे जीवों के अन्त में नहीं करेगा, उसे मोक्ष नहीं मिलेगा। नम्रता की चरम सीमा का ही नाम तो अहिंसा है।"

—'सर्वोदय', नवम्बर, '३८; पृष्ठ ४९; नीचे का उद्धरण]

अहिंसा

"······अहिंसा कोई ऐसा गुण तो है नहीं जो गढ़ा जा सकता हो। यह तो एक अन्दर से बढ़नेवाली चीज़ है, जिसका आधार आत्य-

न्तिक व्यक्तिगत प्रयत्न है।"

—ह० से० २३।४।'३८; पृष्ठ ७६]

अहिंसा ही एक मार्ग है

"मैं तो शुरू से यह मानता आया हूँ कि अहिंसा ही धर्म है, वही जिंदगी का एक रास्ता है।"

—ह० से० ८।१२।'४६, पृष्ठ ४२०]

अहिंसा स्वयंभू शक्ति है !

"अहिंसा एक स्वयंभू शक्ति है।"

—गां० से० सं० सम्मेलन, मालिकान्दा, बंगाल। २१।२।'४०]

संहार के बीच अमृत का स्रोत

"......यह जगत् प्रतिक्षण बदलता है। इसमें संहार की इतनी शक्तियाँ हैं कि कोई स्थिर नहीं रह सकता लेकिन फिर भी मनुष्य जाति का संहार नहीं हुआ, इसका यही अर्थ है कि सब जगह अहिंसा ओत-प्रोत है। मैं उसका दर्शन करता हूँ। गुरुत्वाकर्षण शक्ति के समान अहिंसा संसार की सारी चीज़ों को अपनी तरफ़ खींचती है। प्रेम में यह शक्ति भरी हुई है।"

—गां० से० सं० सम्मेलन, मालिकान्दा (बंगाल) २२।२।'४०]

अहिंसा के नाम का प्रभाव

"......रामनाम के विषय में हमने सुना है कि रामनाम से लोग तर जाते हैं; तो फिर स्वयं राम ही आ जायँ तो क्या होगा ? अहिंसा के नाम ने भी इतना किया, तो फिर दरअसल हममें सच्ची अहिंसा आजाय तो हम आकाश में उड़ने लगेंगे।......हमारा शब्द आकाश-गंगा को

भी भेदता हुआ चला जायगा। यह ज़मीन आसमान हो जायगी।"

—गांधी सेवा संघ की सभा, वर्धा; २२।६। '४०]

हिंसा : अहिंसा

"......जिस तरह कहा जाता है कि रामनाम के प्रताप से पानी पर पत्थर तैरे, उसी तरह अहिंसा के नाम से जो प्रवृत्ति चली, उससे देश में भारी जागृति हुई, और हम आगे बढ़े। जिनका विश्वास अचल है वे इस प्रयोग को आगे बढ़ा सकते हैं।"

× × ×

"......हिंसा करनेवाले सब जड़वत् होते हैं, इस वाक्य में अतिशयोक्ति है।"

× × ×

"......सामान्य अनुभव यह है कि बहुत-सी हिंसा का निवारण अहिंसा के द्वारा हो जाता है। इस अनुभव पर से हम अनुमान लगा सकते हैं कि तीव्र हिंसा का प्रतिकार तीव्र अहिंसा से हो सकता है।"

—ह० से०; २७।७।'४०; पृष्ठ १९५]

अहिंसा की कसौटी हिंसा है

"दया की निर्दयता के सामने, अहिंसा की हिंसा के सामने, प्रेम की द्वेष के सामने और सत्य की झूठ के सामने ही परीक्षा हो सकती है। यह बात सही हो तो यह कहना गलत होगा कि खूनी के सामने अहिंसा बेकार है। हाँ, यों कह सकते हैं कि खूनी के सामने अहिंसा का प्रयोग करना अपनी जान देना है। लेकिन इसी में अहिंसा की परीक्षा है।"

—नई दिल्ली, २१–४–४६। 'ह० बन्धु'। ह० से० २८।४।४६]

[२]

अहिसा की व्यापकता और सन्देश

आकर्षण न कि अपकर्षण प्रकृति का तत्व है

"......मेरी दृष्टि में तो, मुझे निश्चय है कि, न तो कुरान में न महाभारत में कहीं भी हिंसा को प्रधान पद दिया गया है। यद्यपि कुदरत में हमको काफी अपकर्षण दिखाई देता है तथापि वह आकर्षण के ही सहारे *जीवित रहती* है। पारस्परिक प्रेम की बदौलत ही कुदरत का काम चलता है। मनुष्य संहार पर अपना निर्वाह नहीं करते हैं। आत्मप्रेम की बदौलत औरों के प्रति आदरभाव अवश्य ही उत्पन्न होता है। राष्ट्रों में एकता इसलिए होती है कि राष्ट्रों के अंगभूत लोग परस्पर आदरभाव रखते हैं। किसी दिन हमारा राष्ट्रीय न्याय हमें सारे विश्व तक व्याप्त करना पड़ेगा, जैसा कि हमने अपने कौटुम्बिक न्याय को राष्ट्रों के--एक विस्तृत कुटुम्ब के—निर्माण में व्याप्त किया है।"

—यं० इं०। हिं० नवजीवन। ५।३।'२२; पृष्ठ २२६]

प्रेम ही सहज वृत्ति है

"... संसार आज इसलिए खड़ा है कि यहां पर घृणा से प्रेम की मात्रा अधिक है, असत्य से सत्य अधिक है। धोकेबाजी और जोर-जब्र तो बीमारियां हैं; सत्य और अहिंसा स्वास्थ्य हैं। यह बात कि संसार अभी तक नष्ट नहीं हो गया है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि संसार में रोग से अधिक स्वास्थ्य है।"

—यं० इं०। हिं० नवजीवन १५।१२।'२७; पृष्ठ १३३]

अहिंसा जीवन-धर्म है

"अगर अहिंसा या प्रेम हमारा जीवन-धर्म न होता, तो इस मर्त्य-लोक में हमारा जीवन कठिन हो जाता। जीवन तो मृत्यु पर प्रत्यक्ष और सनातन विजय-रूप है।"

× × ×

"अगर मनुष्य और पशु के बीच कोई मौलिक और सबसे महान अन्तर है तो वह यही है कि मनुष्य दिनोंदिन इस धर्म का अधिकाधिक साक्षात्कार कर सकता है, और अपने व्यक्तिगत जीवन में उसपर अमल भी कर सकता है। संसार के प्राचीन और अर्वाचीन सब सन्त पुरुष अपनी-अपनी शक्ति और पात्रता के अनुसार इस परम जीवन-धर्म के ज्वलन्त उदाहरण थे। निस्सन्देह यह सच है कि हमारे अन्दर छिपा हुआ पशु कई बार सहज विजय प्राप्त कर लेता है। पर इससे यह सिद्ध नहीं होता कि यह धर्म मिथ्या है। इससे तो केवल यह सिद्ध होता है कि यह आचरण में कठिन है।"

—ह० से० २६।९।'३६; पृष्ठ २५२]

अहिंसा का सङ्गठन

"अगर अहिंसा सङ्गठित नहीं हो सकती तो वह धर्म नहीं है। यदि मुझमें कोई विशेषता है तो यही कि मैं सत्य और अहिंसा को सङ्गठित कर रहा हूँ। ...जो बात मैं करना चाहता हूँ और जो करके मरना चाहता हूं वह यह है कि मैं अहिंसा को सङ्गठित करूँ। अगर वह सब क्षेत्रों के लिए उपयुक्त नहीं है तो झूठ है। मैं कहता हूँ, जीवन की जितनी विभूतियाँ हैं सबमें अहिंसा का उपयोग है।......"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, हुदली, २०।४।'३७]

अहिंसा पर ही समाज की स्थिति

"......सारा समाज अहिंसा पर उसी प्रकार कायम है जिसप्रकार कि गुरुत्वाकर्षण से पृथ्वी अपनी स्थिति में बनी हुई है।"

—ह० से०, ११।२।'३९: पृष्ठ ४१८]

व्यापक और सार्वजनीन अहिंसा

"अहिंसा अगर व्यक्तिगत गुण है तो वह मेरे लिए त्याज्य वस्तु है। मेरी अहिंसा की कल्पना व्यापक है। वह करोड़ों की है। मैं तो उनका सेवक हूँ। जो चीज़ करोड़ों की नहीं हो सकती, वह मेरे लिए त्याज्य है और मेरे साथियों के लिए भी त्याज्य ही होनी चाहिए। हम तो यह सिद्ध करने के लिए पैदा हुए हैं कि सत्य और अहिंसा केवल व्यक्तिगत आचार के नियम नहीं हैं। वह समुदाय, जाति और राष्ट्र की नीति हो सकती है।.........मेरा यह विश्वास है कि अहिंसा हमेशा के लिए है। वह आत्मा का गुण है इसलिए वह व्यापक है क्योंकि आत्मा तो सभी के होती है। अहिंसा सबके लिए है, सब जगहों के लिए है, सब समय के लिए है। अगर वह दरअसल आत्मा का गुण है तो हमारे लिए वह सहज हो जाना चाहिए। आज कहा जाता है कि सत्य व्यापार में नहीं चलता; राजकारण में नहीं चलता। तो फिर वह कहाँ चलता है? अगर सत्य जीवन के सभी क्षेत्रों में और सभी व्यवहारों में नहीं चल सकता तो वह कौड़ी कीमत की चीज़ नहीं है। जीवन में उसका उपयोग ही क्या रहा?.........सत्य और अहिंसा कोई आकाश-पुष्प नहीं है। वे हमारे प्रत्येक शब्द, व्यापार और कर्म में प्रकट होने चाहिएँ।"

—गां० से० सं० सम्मेलन, मालिकान्दा (बंगाल); २२।२।'४०]

× × ×

"...हमें सत्य और अहिंसा को केवल व्यक्तियों के अमल की चीज़ नहीं बनाना है, बल्कि ऐसी चीज़ बनाना है जिसपर कि समूह, जातियाँ और राष्ट्र भी अमल कर सकें। मैं इसी को सच्चा करने के लिए जीता हूँ और इसी की कोशिश करते हुए मरूँगा। मेरी श्रद्धा मुझे नित-नये सत्य खोज निकालने में मदद देती है। अहिंसा आत्मा का स्वभाव है, इस कारण हर व्यक्ति जीवन की सभी बातों में उस पर अमल कर सकता है।"

—ह० से० १६।३।'४०; पृष्ठ ३४; गांधी-सेवा-संघ के भाषण से]

अहिंसा सामाजिक धर्म है !

"...मैंने यह विशेष दावा किया है कि अहिंसा सामाजिक चीज़ है केवल व्यक्तिगत चीज़ नहीं है। मनुष्य केवल व्यक्ति नहीं है; वह पिण्ड भी है और ब्रह्माण्ड भी। वह अपने ब्रह्माण्ड का बोझ अपने कन्धे पर लिये फिरता है। जो धर्म व्यक्ति के साथ खत्म हो जाता है, वह मेरे काम का नहीं है। मेरा यह दावा है कि सारा समाज अहिंसा का आचरण कर सकता है और आज भी कर रहा है।"

—गांधी सेवा संघ की सभा, वर्धा : २२।६।'४०]

× × ×

"...हम लोगों के हृदय में इस झूठी मान्यता ने घर कर लिया है कि अहिंसा व्यक्तिगत रूप से ही विकसित की जा सकती है, और वह व्यक्ति तक ही मर्यादित है; दर असल बात ऐसी है नहीं। अहिंसा सामाजिक धर्म है, सामाजिक धर्म के तौर पर विकसित की जा सकती है, यह मनवाने का मेरा प्रयत्न और प्रयोग है। यह नई चीज़ है, इसलिए इसे झूठ समझकर फेंक देने की बात इस युग में तो कोई नहीं करेगा। यह कठिन है, इसलिए अशक्य है, यह भी इस युग में कोई नहीं कहेगा।

क्योंकि बहुत सी चीजें अपनी आँखों के सामने नई-पुरानी होती हमने देखी हैं; जो अशक्य लगता था, उसे शक्य बनते हमने देखा है।"

—सेवाग्राम, ६।७।'४०; ह० से० २४।८।'४०; पृष्ठ २३१-२३२]

संयम, अहिंसा और सत्य

"...संयम की कोई मर्यादा नहीं इसलिए अहिंसा की भी कोई मर्यादा नहीं। संयम का स्वागत दुनिया के तमाम शास्त्र करते हैं; स्वच्छन्दता के विषय में शास्त्रों में भारी मतभेद है। समकोण सब जगह एक ही प्रकार का होता है। दूसरे कोण अगणित हैं। अहिंसा और सत्य समस्त धर्मों का समकोण है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, २०।८।'२५; पृष्ठ ३]

भारत और अहिंसा

"मेरी आज भी वही ज्वलन्त श्रद्धा है कि संसार के समस्त देशों में भारत ही एक ऐसा देश है जो अहिंसा की कला सीख सकता है।"

× × ×

"...शस्त्रीकरण की दौड़ में शामिल होना हिन्दुस्तान के लिए, आत्मघात करना है। भारत अगर अहिंसा को गँवा देता है, तो संसार की अन्तिम आशा पर पानी फिर जाता है।"

—ह० से १४।१०।'३९; पृष्ठ २७८–२७९]

× × ×

"...मैं जानता हूँ कि तार्किक चिन्तन की बड़ी से बड़ी मात्रा भी पृथ्वी पर अहिंसा का राज्य न स्थापित कर सकेगी। केवल एक ही चीज़ यह काम कर सकती है और वह है राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने में अहिंसा के सामर्थ्य को बिना किसी सन्देह

के प्रदर्शित कर सकने की भारत की योग्यता।"

—सेवाग्राम, ८।६।'४०: ह० से०, १५।६।'४०, पृष्ठ १५०]

× × ×

"...अगर हिन्दुस्तान जगत् को अहिंसा का सन्देश न दे सका तो यह तबाही आज या कल आने ही वाली है, और कल के बदले आज इसके आने की सम्भावना अधिक है। जगत् युद्ध के शाप से बचना चाहता है, पर कैसे बचे इसका उसे पता नहीं चलता। यह चाबी हिन्दुस्तान के हाथ में है।"

—सेवाग्राम २५।६।'४०, ह० से० २९।६।'४०, पृष्ठ १६५]

हिंसा का परिणाम

"इटली की ओर देखो। गैरीबाल्डी बड़ा आदमी था। उसने इटली को आज़ादी दिलवाई। और मुसोलिनी ने भी इटली को बड़ा बना हुआ-सा दिखाया। मगर आज इटली कहाँ है? जापान की तरफ़ देखो, जर्मनी की तरफ़ देखो। जिस हिंसा की बदौलत वे सत्ता के शिखर पर चढ़े उसी ने उन को धरती पर गिरा दिया है। और क्या परमाणु बम ने सभी क़िस्म की हिंसा की व्यर्थता साबित नहीं कर दी है? फिर भी हम इतने कूढ़मग़ज़ हैं, जो यह ख़्याल करते हैं कि कुछ लोगों की खोपड़ियाँ तोड़कर और उस जायदाद को बर्बाद करके जो सब कुछ कहने और कर लेने के बाद भी हमारी अपनी जायदाद है, हम स्वराज्य हासिल कर सकेंगे।...मुझे यक़ीन है कि हिंसा के इस ताण्डव से लोग अहिंसा का पाठ पढ़ेंगे।"

—'हरिजन'। ह० से० १०।३।'४६]

[३]

अहिंसा का आचरण

अहिंसा की साधना

"मानसिक अहिंसा की स्थिति को प्राप्त करने के लिए काफ़ी कठिन अभ्यास की ज़रूरत है। हमारे दैनंदिन जीवन में व्रत और नियमों का पालन आवश्यक है। वह अनुशासन हमें रुचिकर भले ही न हो, फिर भी वह उतना ही आवश्यक है जितना कि एक सिपाही के लिए। परन्तु मैं यह मानता हूँ कि यदि हमारा चित्त इसमें सहयोग न दे तो केवल बाह्य आचरण एक दिखावे की चीज़ हो जायगी; जिससे खुद हमारा नुकसान होगा और दूसरों का भी। मन, वाचा और शरीर में जब उचित सामञ्जस्य हो तभी सिद्धावस्था प्राप्त हो सकती है। लेकिन यह अभ्यास एक प्रचण्ड मानसिक आन्दोलन होता है। अहिंसा कोई महज यान्त्रिक क़वायद नहीं है। वह तो हृदय का सर्वोत्कृष्ट गुण है और साधना से ही प्राप्त हो सकता है।"

—'सर्वोदय', नवम्बर,' ३८; अन्तिम कवर का उद्धरण]

अहिंसा का व्यवहार

"...शुद्ध अहिंसा के नाम से ही हमें भड़क नहीं जाना चाहिए। इस अहिंसा को हम स्पष्टतया समझ लें, और उसकी सर्वोपरि उपयोगिता को स्वीकार कर लें, तो उसका आचरण जितना कठिन माना

जाता है, उतना कठिन नहीं है। 'भारत-सावित्री'[१] की रट लगाना आवश्यक है। ऋषि-कवि पुकार-पुकार कर कहता है,—'जिस धर्म में सहज ही शुद्ध अर्थ और काम समाये हुए हैं, उस धर्म का हम क्यों आचरण नहीं करते ?' यह धर्म तिलक लगाने या गंगा-स्नान करने का नहीं, किन्तु अहिंसा और सत्य आचरण का है। हमारे पास दो अमर वाक्य हैं; "अहिंसा परम धर्म है" और "सत्य के सिवा दूसरा धर्म नहीं।" इसमें वाञ्छनीय सब अर्थ और काम आ जाते हैं। फिर हम क्यों हिचकिचाते हैं ?...जो सरल है, वही लोगों को कठिन मालूम पड़ता है। यह हमारी जड़ता का सूचक है। यहाँ 'जड़ता' शब्द को निन्दात्मक नहीं समझना चाहिए। मैंने अंग्रेज शास्त्रियों के शब्द का अनुवाद किया है। वस्तुमात्र में जड़ता नाम का एक गुण है, और वह अपनी जगह उपयोगी भी है। इसी गुण से हम टिके रहते हैं। यह न हो तो हम हमेशा लुढ़कते रहें। इस जड़ता के वश होकर हमारे अन्दर इस मान्यता ने घर कर लिया है कि सत्य और अहिंसा का पालन बहुत कठिन है। यह दूषित जड़ता है। यह दोष हमें निकाल ही देना चाहिए। पहले तो सङ्कल्प कर लेना चाहिए कि असत्य और अहिंसा के द्वारा

[१] 'महाभारत' लिखने के बाद महर्षि व्यास ने अन्त में एक श्लोक लिखा है। यही श्लोक (जो नीचे दिया जा रहा है) भारत-सावित्री के नाम से प्रख्यात है:—

ऊर्ध्व बाहुर्विरोम्येष: नैव कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते॥

अर्थात् "मैं ऊँचा हाथ करके पुकारता हूँ, पर मेरी कोई सुनता नहीं। धर्म में ही अर्थ और काम समाया हुआ है, ऐसे सरल धर्म का लोग क्यों सेवन नहीं करते ?"

कितना भी लाभ हो, हमारे लिए वह त्याज्य है। क्योंकि वह लाभ लाभ नहीं, किन्तु हानि रूप ही होगा।..."

—से ग्राम, १०।६।'४०; ह० से० २०।७।'४०; पृष्ठ १८९]

अहिंसा का आचरण

"जब कोई आदमी अहिंसक होने का दावा करता है तो उससे आशा की जाती है कि वह उस आदमी पर भी क्रोध नहीं करेगा जिसने उसे चोट पहुँचाई हो। वह उसकी बुराई या हानि नहीं चाहेगा, वह उसकी कल्याण-कामना करेगा; वह उसपर किटकिटायेगा नहीं; वह उसे किसी प्रकार की शारीरिक चोट नहीं पहुँचायेगा। वह गलती करनेवाले द्वारा दी जाने वाली सब प्रकार की यन्त्रणा सहन करेगा। इस प्रकार अहिंसा पूर्ण निर्दोषता है। पूर्ण अहिंसा सम्पूर्ण जीवधारियों के प्रति दुर्भावना का सम्पूर्ण अभाव है। इसलिए वह मानवेतर प्राणियों, यहाँ तक कि विषधर कीड़ों और हिंसक जानवरों, का भी आलिङ्गन करती है।......अहिंसा, अपने सक्रिय रूप में, सम्पूर्ण जीवन के प्रति एक सद्भावना है। यह विशुद्ध प्रेम है ......।"

× × ×

"जब मनुष्य अपने में निर्दोष होता है तो कुछ देवता नहीं बन जाता। तब वह सिर्फ सच्चा आदमी बनता है। अपनी वर्तमान स्थिति में हम आंशिक रूप से मनुष्य और आंशिक रूप से पशु हैं, और अपने अज्ञान, बल्कि मद या उद्दण्डता, में कहते हैं कि जब हम घूँसे का जवाब घूँसे से देते हैं और इस कार्य के लिए क्रोध की उपयुक्त मात्रा अपने अन्दर पैदा करते हैं तो अपनी योनि के तात्पर्य की उचित ढंग पर पूर्ति करते हैं। हम यह मान लेते हैं कि प्रतिहिंसा या बदला

हमारे जीवन का नियम है, जब कि प्रत्येक शास्त्र में हम देखते हैं कि प्रति-हिंसा कहीं अनिवार्य नहीं बल्कि क्षम्य मानी गई है। संयम—नियन्त्रण—अलबत्ता अनिवार्य है।......संयम हमारे अस्तित्व का मूल मन्त्र है। सर्वोच्च पूर्णता की प्राप्ति सर्वोच्च संयम के बिना सम्भव नहीं है। इस प्रकार कष्ट-सहन मानव जाति का बैज (पहिचान का लक्षण) है।"

—यं० इं०; ९ मार्च,'२२]

× × ×

"मैं कोई स्वप्नद्रष्टा नहीं हूँ। एक व्यावहारिक आदर्शवादी होने का मेरा दावा है। अहिंसा-धर्म केवल ऋषियों और संतों के लिए नहीं है। यह मामूली आदमियों के लिए भी है। अहिंसा मानवजाति का नियम है, जैसे हिंसा पशु का नियम है। पशु (या नरपशु) में आत्मशक्ति निद्रित रहती है और वह शरीर-बल के अलावा और कोई नियम नहीं जानता। मनुष्य का सम्मान अधिक ऊँचे क़ानून का—आत्मा की शक्ति का अनुसरण करने का तक़ाज़ा करता है।"

× × ×

"इसलिए मैंने भारत के सामने आत्म-बलिदान का पुराना नियम रखने की हिम्मत की है। सत्याग्रह, और इससे निकले असहयोग तथा सविनय प्रतिरोध, और कुछ नहीं, कष्ट-सहन के क़ानून के नाम भर हैं। जिन ऋषियों ने, हिंसा के बीच अहिंसा के नियम की खोज की, वे न्यूटन से अधिक प्रतिभा रखने वाले थे। वे वेलिंगटन से कहीं अधिक वीर थे। शस्त्रों का प्रयोग जानने के बाद उन्होंने उनकी निस्सारता का अनुभव किया और थकी हुई दुनिया को सिखाया था कि उसकी मुक्ति हिंसा के रास्ते में नहीं, अहिंसा के रास्ते है।"

—यं० इं०, ११ अगस्त, '२०]

"मैं भारत से अहिंसा का पालन करने को इसके अशक्त होने के कारण नहीं कहता। मैं चाहता हूँ कि वह अपनी शक्ति का अनुभव करते हुए अहिंसा का पालन करे। अपनी शक्ति की अनुभूति के लिए उसे किसी शस्त्रज्ञान की आवश्यकता नहीं है। हमें इसकी (शस्त्र-ज्ञान की) आवश्यकता का भान इसलिए होता है कि हम अपने को मांस का लोथड़ा मात्र—देहधारी मात्र—समझ बैठे हैं। मैं चाहता हूँ कि भारत इस बात का अनुभव करे कि उसकी अपनी एक आत्मा है, जो नष्ट नहीं की जा सकती और समस्त संसार के भौतिक संघटन की अवज्ञा कर सकती है।" एक मानव प्राणी राम का, बन्दरों की सेना लेकर दस सिरवाले और समुद्र की गर्जन वाली लहरों के बीच अपनी लंका को सुरक्षित समझनेवाले रावण की उद्धत शक्ति से लोहा लेने का और क्या अभिप्राय हो सकता है?— क्या इसका अर्थ आध्यात्मिक शक्ति द्वारा शरीर-बल की पराजय नहीं है?"

—यं० इं० ११ अगस्त,'२०]

× × ×

"मैंने भारत के सामने अहिंसा का आत्यन्तिक रूप नहीं रखा है; और नहीं तो इसीलिए कि मैं अपने को अभी वह प्राचीन सन्देश देने के योग्य नहीं पाता। यद्यपि मेरी बुद्धि ने इसे पूरी तरह समझ और ग्रहण कर लिया है किन्तु अभी तक यह मेरे समस्त जीवन—सम्पूर्ण अस्तित्व का अङ्ग नहीं बन पाया है। मेरी शक्ति ही इस बात में है कि मैं जनता से कोई ऐसी बात करने को नहीं कहता जिसे मैं अपने जीवन में बार-बार आज़मा न चुका होऊँ।......"

—यं० इं०, २९ मई, '२४]

× × ×

"...व्यर्थ अधिक बल का प्रयोग करना कायरता और पागलपन का लक्षण है। एक बहादुर आदमी चोर को मार नहीं डालता बल्कि पकड़कर उसे पुलिस के हवाले कर देता है। उससे भी ज्यादा बहादुर आदमी सिर्फ उसे खदेड़ देने में अपनी शक्ति लगाता है और फिर उसके बारे में कुछ नहीं सोचता। और जो सबसे अधिक वीर है वह तो अनुभव करता है कि चोर बेचारा चोरी से अच्छी बात जानता नहीं, वह उसको समझाने की कोशिश करता है और अपने को उलटे मार खाने, यहाँ तक कि मार डाले जाने, के ख़तरे में डालता है, लेकिन बदले में आक्रमण नहीं करता। हमें जैसे हो वैसे कायरता और पौरुषहीनता का त्याग करना चाहिए।"

—यं०इं०, १५ दिसम्बर,' २०]

× × ×

"जहाँ सिर्फ कायरता और हिंसा के बीच किसी एक के चुनाव की बात हो तहाँ मैं हिंसा के पक्ष में राय दूँगा।"

—यं० इं०, ११ अगस्त,' २०]

× × ×

"मेरा विश्वास है कि अहिंसा हिंसा से असीम गुनी ऊँची चीज़ है। क्षमा दण्ड से अधिक पुरुषोचित है—क्षमा वीरस्य भूषणम्।..."

× × ×

"......शक्ति शारीरिक क्षमता से नहीं उत्पन्न होती; वह अजेय संकल्प (या इच्छा) से उत्पन्न होती है।......"

—यं० इं०, ११ अगस्त,' २०]

× × ×

"......अहिंसा का अर्थ ईश्वर पर भरोसा रखना है।......"

—यं० इं०, १२ जनवरी,'२१]

× × ×

"......अगर भारत तलवार के सिद्धान्त को अपनाता है तो उसे क्षणिक विजय प्राप्त हो सकती है। पर तब भारत मेरे हृदय का गौरव न रह जायगा। भारत के प्रति मेरी इतनी भक्ति इसलिए है कि मेरे पास जो कुछ है वह सब मैंने उसी से पाया है। मेरा पक्का विश्वास है कि उसे दुनिया को एक सन्देश देना है। उसे अन्धा बनकर युरोप की नक़ल नहीं करनी है। जिस दिन भारत तलवार का सिद्धान्त ग्रहण करेगा वह मेरी परीक्षा का दिन होगा और मुझे आशा है कि मैं अपने कर्तव्य में हलका न उतरूँगा। मेरा धर्म भौगोलिक सीमाओं में बँधा हुआ नहीं है। अगर मुझे इसमें जीवित श्रद्धा होगी तो वह मेरे भारत-प्रेम को भी पार कर जायगी। मैं अहिंसा-द्वारा, जिसे मैं हिन्दू धर्म का मूल समझता हूँ, भारत की सेवा के लिए अपना जीवन अर्पित कर चुका हूँ।"

—यं० इं०, ११ अगस्त,'२०]

× × ×

अहिंसा

"......अहिंसा मेरी प्रत्येक प्रवृत्ति की जड़ है......।"

पाँच उपसिद्धान्त

१. "जहाँ तक मानवीय दृष्टि से सम्भव है तहाँ तक पूर्ण आत्म-शुद्धि अहिंसा के अन्दर निहित है।

२. मनुष्य मनुष्य के बीच मुक़ाबला करें तो मालूम होगा कि अहिंसक मनुष्य में हिंसा करने की जितनी ही शक्ति होगी उतनी ही

मात्रा में उसकी अहिंसा का माप हो जायगा।

(यहाँ कोई हिंसा की शक्ति के बदले हिंसा की इच्छा समझने की भूल न करे। अहिंसक में हिंसा की इच्छा तो कभी नहीं हो सकती।)

३. विना अपवाद के अहिंसा हिंसा से श्रेष्ठ शक्ति है, अर्थात् अहिंसक व्यक्ति में उसके हिंसक होने की दशा में जो शक्ति होती उससे अहिंसक होने की दशा में सदा अधिक शक्ति होती है।

४. अहिंसा में हार-जैसी कोई चीज़ ही नहीं हैं। हिंसा के अन्त में तो निश्चित हार ही है।

५. अगर अहिंसा के सम्बन्ध में जीत शब्द का प्रयोग किया जा सके तो कहा जा सकता है कि अहिंसा का अन्तिम परिणाम निश्चित विजय है। पर असल में देखें तो जहाँ हार का भाव ही नहीं है, वहाँ जीत का भी कोई भाव नहीं हो सकता।"

"......अहिंसा श्रद्धा और अनुभव की वस्तु है, एक सीमा से आगे तर्क की चीज़ वह नहीं है।"

—'हरिजन,' १२ अक्तूबर, '३५]

अहिंसा की सफलता की कुछ शर्तें

१. अहिंसा परम श्रेष्ठ मानव धर्म है; पशु बल से वह अनन्त गुना महान् और उच्च है।

२. अन्ततोगत्वा वह उन लोगों को कोई लाभ नहीं पहुँचा सकती, जिनकी उस प्रेम-रूपी परमेश्वर में सजीव श्रद्धा नहीं है।

३. मनुष्य के स्वाभिमान और सम्मान-भावना की वह सबसे बड़ी रक्षक है। हाँ, वह मनुष्य की चल-अचल सम्पत्ति की हमेशा रक्षा करने का आश्वासन नहीं देती—हालाँकि अगर मनुष्य उसका अच्छा अभ्यास

कर ले तो शस्त्रधारियों की सेनाओं की अपेक्षा वह इसकी अधिक अच्छी तरह रक्षा कर सकती है। यह तो स्पष्ट है कि अन्याय से अर्जित सम्पत्ति तथा दुराचार की रक्षा में वह जरा भी सहायक नहीं हो सकती।

४. जो व्यक्ति और राष्ट्र अहिंसा का अवलम्बन करना चाहें, उन्हें आत्म-सम्मान के अतिरिक्त अपना सर्वस्व (राष्ट्रों को तो एक-एक आदमी) गँवाने के लिए तैयार रहना चाहिए। इसलिए वह दूसरे के मुल्कों को हड़पने अर्थात् आधुनिक साम्राज्यवाद से, जो कि अपनी रक्षा के लिए पशुबल पर निर्भर रहता है, बिल्कुल मेल नहीं खा सकता।

५. अहिंसा एक ऐसी शक्ति है, जिसका सहारा बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री- पुरुष सब ले सकते हैं, बशर्ते कि उनकी उस करुणामय में तथा मनुष्य-मात्र में सजीव श्रद्धा हो। जब हम अहिंसा को अपना जीवन-सिद्धान्त बना लें तो वह हमारे सम्पूर्ण जीवन में व्याप्त होनी चाहिए। यों कभी-कभी उसे पकड़ने और छोड़ने से लाभ नहीं हो सकता।

६. यह समझना एक जबर्दस्त भूल है कि अहिंसा केवल व्यक्तियों के लिए ही लाभदायक है, जन-समूह के लिए नहीं। जितना वह व्यक्ति के लिए धर्म है उतना ही वह राष्ट्रों के लिए भी धर्म है।"

—ह० से० ५।९।'३६; पृष्ठ २२८-२२९]

अहङ्कार और हिंसा

"...जहाँ अहङ्कार है वहाँ हिंसा अवश्य है। प्रत्येक कार्य करते समय मन में यह प्रश्न कर लेना चाहिए कि यहाँ 'मैं' (अहङ्कार) हूँ या नहीं? जहाँ 'मैं' (अहङ्कार) नहीं है वहाँ हिंसा नहीं है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० १०।६।'२६; पृष्ठ ३३९]

उदारता और अहिंसा

"…उदारता तो अहिंसा का अवयव है। उससे रहित अहिंसा अपङ्ग है, इसलिए वह चल ही नहीं सकती।"

—ह० से० २७।७।'४०;पृष्ठ १९६]

अहिंसा

"…जहाँ अहिंसा है, वहाँ कौड़ी भी नहीं रह सकती।…"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, सावली,३ मार्च,'३६]

× × ×

"…सत्य और अहिंसा का मार्ग खाँड़े की धार के जैसा है। खूराक ठीक तरह से ली जाय, तो वह शरीर को पोषण देती है। इसी प्रकार अहिंसा का ठीक तरह से पालन किया जाय तो वह आत्मा को पोषण देती है।"

—ह० से० ९।४।'३८ पृष्ठ ५८: गांधी-सेवा-संघ के डेलांग अधिवेशन मे २५।३'३८ को दिये गये प्रवचन से]

सच्ची अहिंसा

"…अहिंसा तितिक्षा और प्रेम की मात्रा बढ़ाकर सत्य को सिखाती है। प्रेम सौदे और शर्त की वस्तु नहीं है! जो अहिंसक के साथ अहिंसक रहता है, उसे अहिंसक कौन कहेगा? इसमें तो मनुष्य अपने स्वभाव से ही चलता है। जब खूनी के साथ मिलकर मैं मर जाऊँ तो दुनिया मुझे बहादुर कहेगी।…"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन,डेलांग, २५मार्च, '३८]

अहिंसा का स्वभाव

"…अहिंसा का स्वभाव ही यह है कि वह दौड़-दौड़कर हिंसा के

मुख में चली जाय। और हिंसा का स्वभाव है कि दौड़-दौड़कर जो जहाँ मिले उसको खा जाय।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, वृन्दावन ३।५।'३९, प्रारम्भिक भाषण से]

अहिंसा का राजमार्ग

"परस्पर विश्वास और सरल चित्त से दूसरों की बात समझ लेने की तैयारी यही अहिंसा का राजमार्ग है।"

—गांधी से० संघ सम्मेलन, वृन्दावन (विहार), ५।५।'३९]

अहिंसा

"अहिंसा में हिंसक की हिंसा को शमन करने की शक्ति होनी चाहिए।"

× × ×

"...अहिंसा का लक्षण तो सीधे हिंसा के मुँह में दौड़ जाना है।"

× × ×

"...अहिंसा डरपोक का शस्त्र नहीं है। वह तो परम पुरुषार्थ है; वीरों का धर्म है। सत्याग्रही बनना है तो आपका अज्ञान, आलस्य सब दूर हो जाना चाहिए। सतत जागृति आप लोगों में आनी चाहिए। तन्द्रा जैसी चीज़ वहाँ नहीं रहनी चाहिए। तभी अहिंसा चल सकती है। सच्ची अहिंसा आने के बाद आपकी वाणी से, आपके आचार से, व्यवहार से अमृत झरने लगेगा...।"

× × ×

"...सम्पूर्ण आत्म-शुद्धि के प्रयत्न में मर मिटना यह अहिंसा की शर्त्त है।"

—ह० से०; २०।५।'३९; पृष्ठ १०९-११०]

[४]

अहिंसा वीर-धर्म है

कायरता बनाम हिंसा

"...मेरे अहिंसा धर्म में ख़तरे के वक्त अपने अजीज़ों को मुसीबत में छोड़कर भाग खड़े होने के लिए जगह नहीं। मारना या नामर्दी के साथ भाग खड़ा होना, इनमें से यदि मुझे किसी बात को पसन्द करना पड़े तो मेरा उसूल कहता है कि मारने का—हिंसा का रास्ता पसन्द करो।"

—यंग इंडिया। हिं० न० जी० १।६।'२४; पृष्ठ ३३६]

× × ×

"...डर कर भाग खड़े होना, मन्दिर छोड़ देना या बाजे बजाना बन्द कर देना या अपनी रक्षा न करना, यह मनुष्यता नहीं है; यह तो नामर्दी है। अहिंसा वीरता का लक्षण है—भीरु, डरपोक मनुष्य यह तक नहीं जान सकता कि अहिंसा किस चिड़िया का नाम है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० १४।९।'२४; पृष्ठ ३४-३५]

अहिंसा वीर का लक्षण है

"...मैंने तो पुकार-पुकार कर कहा है कि अहिंसा—क्षमा—वीर का लक्षण है। जिसे मरने की शक्ति है वही मारने से अपने को रोक सकता है। मेरे लेखों से तुम भीरुता को अहिंसा मान लो तो ? अपने लोगों की रक्षा करने के धर्म को खो बैठो तो ? तो मेरी अधोगति हुए बिना न रहे। मैंने कितनी ही बार लिखा है और कहा है कि कायरता कभी

धर्म हो ही नहीं सकता। संसार में तलवार के लिए जगह जरूर है। कायर का तो क्षय ही हो सकता है। उसका क्षय ही योग्य भी है। परन्तु मैंने तो यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि तलवार चलानेवाले का भी क्षय ही होगा। तलवार से मनुष्य किसको बचावेगा और किसको मारेगा? आत्मबल के सामने तलवार का बल तृणवत् है। अहिंसा आत्मा का बल है। तलवार का उपयोग करके आत्मा शरीरवत् बनती है। अहिंसा का उपयोग करके आत्मा आत्मवत् बनती है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, २८।९।'२४; पृष्ठ ५२]

कायरता स्वयं हिंसा है!

"......सच बात यह है कि कायरता खुद ही एक सूक्ष्म, और इसलिए भीषण प्रकार की, हिंसा है और शारीरिक हिंसा की अपेक्षा उसे निर्मूल करना बहुत ही मुश्किल है।"

—यं० इं०। हिं० न० जी० ८।१।'२५; पृष्ठ १७७]

मारना कब ठीक है?

"....मेरा धर्म मुझे शिक्षा देता है कि औरों की रक्षा के लिए अपनी जान दे दो; दूसरे को मारने के लिए हाथ तक न उठाओ। पर धर्म मुझे यह कहने के लिए भी छुट्टी देता है कि अगर ऐसा मौका आवे कि अपने आश्रित लोगों या ज़िम्मे के काम को छोड़कर भाग जाने या हमला करने वाले को मारने में से किसी एक बात को पसन्द करना हो तो यह हर शख़्स का कर्तव्य है कि वह मारते हुए वहीं मर जाय, अपनी जगह छोड़कर भागे हर्गिज़ नहीं। मुझे ऐसे हट्टे-कट्टे पछत्ते लोगों से मिलने का दुर्भाग्य प्राप्त हुआ है जो सीधे-सरल भाव से आकर मुझसे कहते हैं, और जिसे मैंने बड़ी शरम के साथ सुना है,

कि मुसलमान बदमाशों को हिन्दू अबलाओं पर बलात्कार करते हुए हमने अपनी आँखों देखा है। जिस समाज में जवाँमर्द लोग रहते हों वहाँ बलात्कार की आँखों-देखी गवाहियाँ देना प्रायः असम्भव होना चाहिए। ऐसे जुर्म की खबर देने के लिए एक शख्स जिन्दा न रहना चाहिए। एक भोला-भाला पुजारी, जो अहिंसा का मतलब नहीं जानता था, मुझसे खुशी-खुशी आकर कहता है साहब, जब हुल्लड़-बाजों की भीड़ मन्दिर में मूर्ति तोड़ने को घुसी तो मैं बड़ी होशियारी से छिप रहा। मेरा मत है कि ऐसे लोग पुजारी होने के लायक बिल्कुल नहीं हैं। उसे वहीं मर जाना चाहिए था। तब अपने खून से उसने मूर्ति को पवित्र कर दिया होता। और अगर उसे यह हिम्मत न थी कि अपनी जगह पर बिना हाथ उठाये और मुँह से यह प्रार्थना करते हुए कि 'ईश्वर इस खूनी पर रहम कर!' मर मिटे तो उस हालत में उन मूर्ति तोड़ने वालों का संहार करना भी उसके लिए ठीक था। परन्तु अपने इस नश्वर शरीर को बचाने के लिए छिप रहना मनुष्योचित न था।"

—यं० इं०। हिं० न० जी० ८।१।'२५; पृष्ठ १७७]

हिंसक और अहिंसा

"..... डरकर जो हिंसा नहीं करता वह तो हिंसा कर ही चुका है। चूहा बिल्ली के प्रति अहिसक नहीं। उसका मन तो निरन्तर बिल्ली की हिंसा करता रहता है। निर्बल होने के कारण वह बिल्ली को मार नहीं सकता। हिंसा करने का पूरा सामर्थ्य रखते हुए भी जो हिंसा नहीं करता है वही अहिंसा-धर्म का पालन करने में समर्थ होता है। जो मनुष्य स्वेच्छा से और प्रेम भाव से किसी की हिंसा नहीं करता वही अहिंसा धर्म का पालन करता है। अहिंसा का अर्थ है प्रेम, दया, क्षमा। शास्त्र उसका

वर्णन वीर के गुण के रूप में करते हैं। यह वीरता शरीर की नहीं बल्कि हृदय की है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, २०।८।'२५: पृष्ठ ३]

कायरता हिंसा का प्रकार है

"...डर कर भाग जाना कायरता है और कायरता से न तो समझौता हो सकेगा, न अहिंसा को ही कुछ मदद मिलेगी। कायरता हिंसा की एक किस्म है और उसे जीतना बहुत दुश्वार है। हिंसा से प्रेरित मनुष्य को हिंसा छोड़कर अहिंसा की उत्तम शक्ति को ग्रहण करने को समझाने में सफल होने की आशा की जा सकती है लेकिन कायरता तो सब प्रकार की शक्ति का अभाव है।"

"वे जो मरना जानते हैं उन्हें मैं अपनी अहिंसा सफलतापूर्वक सिखा सकता हूँ;जो मरने से डरते हैं उन्हें मैं अहिंसा नहीं सिखा सकता।"

—यं० इं०। हिं० न० जी० १५।१०।'२५: पृष्ठ ७१। बिहार के दौरे में भागलपुर की एक सभा में हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न पर बोलते हुए।]

अहिंसा और अभय

"...अहिंसा क्षत्रिय का धर्म है। महावीर क्षत्रिय थे। बुद्ध क्षत्रिय थे। राम, कृष्ण आदि क्षत्रिय थे। वे सब थोड़े या बहुत अहिंसा के उपासक थे। हम उनके नाम पर भी अहिंसा का प्रवर्त्तन चाहते हैं। लेकिन इस समय तो अहिंसा का ठेका भीरु वैश्य वर्ग ने ले रखा है; इसलिए वह धर्म निस्तेज हो गया है। अहिंसा का दूसरा नाम है क्षमा की परिसीमा। लेकिन क्षमा तो वीर पुरुष का भूषण है। अभय के बिना अहिंसा नहीं हो सकती...।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० २८।१०।'२६: पृष्ठ ८५]

हिंसा बनाम कायरता

"......मेरा अहिंसा धर्म एक महान शक्ति है। उसमें कायरता और कमज़ोरी के लिए ज़रा भी स्थान नहीं है। एक हिंसा का उपासक अहिंसा का भक्त बन सकता है। परन्तु एक कायर से तो कभी अहिंसक बनने की आशा ही नहीं की जा सकती। इसीलिए मैंने कई मर्तबा... लिखा है कि यदि कष्ट-सहन अर्थात् अहिंसा द्वारा हम अपनी स्त्रियों और पूजा-स्थानों की रक्षा नहीं कर सकते हों तो, यदि हम मर्द हैं, कम से कम हमें सशस्त्र प्रतिकार करके जरूर उनकी रक्षा करनी चाहिए।..."

—यं० इं० । हिं० न० जी०, १६।६।'२७; पृष्ठ ३४९]

अहिंसा वीर-धर्म है !

"...अहिंसा कुछ डरपोक का, निर्बल का धर्म नहीं है। वह तो बहादुर और जान पर खेलनेवाले का धर्म है। तलवार से लड़ते हुए जो मरता है वह अवश्य बहादुर है, किन्तु जो मारे बिना धैर्यपूर्वक खड़ा-खड़ा मरता है, वह अधिक बहादुर है।......मार के डर से जो अपनी स्त्रियों का अपमान सहन करता है वह मर्द न रहकर नामर्द बनता है। वह न पति बनने लायक है, न पिता या भाई बनने लायक।......जहाँ नामर्द बसते हैं वहाँ बदमाश तो होंगे ही।"

—नवजीवन । हिं० न० जी० ११।१०।'२८; पृष्ठ ६२]

अहिंसा बनाम कायरता

"...अहिंसा और कायरता परस्पर-विरोधी शब्द हैं। अहिंसा सर्व-श्रेष्ठ सद्गुण है; कायरता बुरी से बुरी बुराई है। अहिंसा का मूल प्रेम में है; कायरता का घृणा में। अहिंसक सदा कष्ट-सहिष्णु होता है; कायर सदा पीड़ा पहुँचाता है। सम्पूर्ण अहिंसा उच्चतम वीरता है......।"

—यं० इं० । हिं० न० जी० ३१।१०।'२९; पृष्ठ ८५]

कायरता बनाम शरीर-बल

"……कायरता की अपेक्षा बहादुरी के साथ शरीरबल का प्रयोग करना कहीं श्रेयस्कर है।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, डेलांग, २५ मार्च,' ३८]

× × ×

"……चाहे जो हो, कायरता को तो छोड़ ही देना है। अहिंसा लाचार और भीरुओं के लिए नहीं है।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, डेलांग, २६ मार्च,' ३८]

× × ×

"मेरा मतलब यह है कि हमारी अहिंसा उन कायरों की न हो जो लड़ाई से डरते हैं, खून से डरते हैं; हत्यारों की आवाज़ से जिनका दिल काँपता है। हमारी अहिंसा तो पठानों की अहिंसा होनी चाहिए।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, डेलांग, २७ मार्च,' ३८]

कायरता बनाम अहिंसा

"……कायरता से तो बहादुरी के साथ शरीरिक बल काम में लाना हज़ार दर्जे अच्छा है। कायरता की अपेक्षा लड़ते-लड़ते मर जाना हज़ार गुना अच्छा है। हम सब मूलतः तो शायद पशु ही होंगे, और मैं यह मानने के लिए तैयार हूँ कि हम धीरे-धीरे विकास के क्रमानुसार पशु से मनुष्य हुए हैं। अतः हम पशु-बल लेकर तो अवतीर्ण हुए ही थे, पर हमारा मानव-अवतार इसलिए हुआ कि हमारे अन्तर में जो ईश्वर बसता है उसका साक्षात्कार हम कर सकें। यह मनुष्य का विशेषाधिकार है, और यही इसके और पशु-सृष्टि के बीच अन्तर है।"

—ह० से० ९।४।'३८; पृष्ठ ५९ : गांधी-सेवा-संघ के डेलांग अधिवेशन में २५।३।'३८ को दिये गये प्रवचन से]

कायरता बनाम हिंसा

"क्या आप इतनी दूर तक मेरे साथ जाने को तैयार हैं ? क्या जो कुछ मैं कहता हूँ वह आपकी बुद्धि को जँचता है ? यदि हाँ, तो हमें अपने भीतरी से भीतरी विचारों में से भी हिंसा को निकाल देना चाहिए। लेकिन यदि आप मेरे साथ न चल सकें, तो आप अपने ही रास्ते खुशी से जावें। अगर आप किसी दूसरे रास्ते से अपने मुकाम को पहुँच सकते हों तो बेशक जावें। आप मेरी बधाइयों के पात्र होंगे। क्योंकि मैं कायरता तो किसी हालत में सहन नहीं कर सकता। मेरे गुज़र जाने के बाद कोई यह न कहने पाये कि गांधी ने लोगों को नामर्द बनना सिखाया। अगर आप सोचते हों कि मेरी अहिंसा कायरता के बराबर है, या उससे कायरता ही पैदा होगी तो आपको उसे छोड़ देने में ज़रा भी हिचकना नहीं चाहिए। आप निपट कायरता से मरें, इसकी अपेक्षा आपका बहादुरी से प्रहार करते हुए और प्रहार सहते हुए मरना मैं कहीं बेहतर समझूँगा। मेरे सपने की अहिंसा अगर सम्भव न हो तो अहिंसा का स्वाँग भरने की अपेक्षा यह बेहतर होगा कि आप उस सिद्धान्त का ही त्याग कर दें।"

—१७ जून,' ३९; 'हरिजन' में]

वीरों की अहिंसा

"...सिर्फ मर जाने से हम परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं होंगे। हमारे दिल में मारनेवालों के लिए दया होनी चाहिए।.........वे अज्ञान हैं इसलिए ईश्वर से प्रार्थना करेंगे कि वह उन्हें ज्ञान दे। हम तितिक्षा से उनके आघात सह लेंगे। हमारे हृदय से दया के उद्‌गार निकलेंगे। सिर्फ लोगों को सुनाने के लिए नहीं बल्कि सच्चे दिल से हम उनपर

दया करेंगे। कोई मुझपर हमला करता है लेकिन मुझे उसपर गुस्सा नहीं आता; वह मारता जाता है, मैं सहता जाता हूँ; मरते-मरते भी मेरे मुख पर दर्द का भाव नहीं, बल्कि हास्य है; मेरे दिल में रोष के बदले दया है तो मैं कहूँगा कि हमने वीर पुरुषों की अहिंसा सिद्ध कर ली।……अहिंसा में इतनी ताक़त है कि वह विरोधियों को मित्र बना लेती है और उनका प्रेम प्राप्त कर लेती है।"

अहिंसा कायरों का नाश करती है!

"…अहिंसा एक हद तक अशक्तों का शस्त्र भी हो सकती है। लेकिन एक हद तक ही। परन्तु वह बुज़दिलों का—कायरों का—शस्त्र तो हर्गिज़ नहीं हो सकती। अगर कोई बुज़दिल होकर अहिंसा को लेता है तो अहिंसा उसका नाश करेगी।"

—गां० से० सं० सम्मेलन, मालिकान्दा (बंगाल); २१।२'४०]

जीवन मृत्यु की शय्या है!

"…हिन्दुस्तान के लड़वैयों में हम अग्रगामी रहें। जीवन को मृत्यु की शय्या समझकर चलें। इस मौत के बिछौने में अकेले न सोयें। हमेशा यमदूत को साथ लेकर सोयें। मृत्यु (देवता) से कहें कि अगर तू मुझे ले जाना चाहता है तो ले जा; मैं तो तेरे मुँह में नाच रहा हूँ। जबतक नाचने देगा, नाचूँगा, नहीं तो तेरी ही गोद में सो जाऊँगा। अगर आपने इस तरह मृत्यु का भय जीत लिया, तो यह संघ अमर हो जायगा। अगर आप इस तरह के हैं, तो किसी संघ की क्या ज़रूरत है? तब तो आप खुद ही एक संघ हैं।"

—मालिकान्दा (बंगाल); २२।२।'४०; गांधी सेवा-संघ के सदस्यों को संघ के विसर्जन की सलाह देते हुए]

लाचारी का भाव

"...हिंसा के मुक़ाबले में लाचारी का भाव आना अहिंसा नहीं, कायरता है। अहिंसा को कायरता के साथ मिला नहीं देना चाहिए।"

—ह० से० २३।३'४०; पृष्ठ ४८; शान्ति-निकेतन में बातचीत में]

मृत्यु का भय

"......मौत के भय से मुक्त हर एक पुरुष या स्त्री स्वयं मरकर अपनी और अपनों की रक्षा करे। सच तो यह है कि मरना हमें पसन्द नहीं होता, इसलिए आख़िर हम घुटने टेक देते हैं। कोई मरने के बदले सलाम करना पसन्द करता है, कोई धन देकर जान छुड़ाता है, कोई मुँह में तिनका लेता है, और कोई चींटी की तरह रेंगना पसन्द करता है। इसी तरह कोई स्त्री लाचार होकर, जूझना छोड़, पुरुष की पशुता के वश हो जाती है।......सलामी से लेकर सतीत्व-भंग तक की सभी क्रियाएँ एक ही चीज़ की सूचक हैं। जीवन का लोभ मनुष्य से क्या-क्या नहीं कराता? अतएव जो जीवन का लोभ छोड़कर जीता है, वही जीता है। 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'। प्रत्येक पाठक को यह अनुपम श्लोक याद कर लेना चाहिए। किन्तु इसके प्रति केवल ज़बानी वफ़ादारी से कोई काम नहीं हो सकता। इसे उसे अपने हृदय की गहराई में उतार लेना चाहिए। जीवन का स्वाद लेने के लिए हमें जीवन के लोभ का त्याग कर देना चाहिए।"

—सेवाग्राम २३।२।'४२; हरिजन १।३।'४२; पृष्ठ ६०]

[५]

अहिंसा : विविध पहलू

अहिंसा असहयोग से अधिक महत्व रखती है

"...यदि हम इस बात को याद रक्खें कि असहयोग की अपेक्षा अहिंसा अधिक महत्वपूर्ण है और अहिंसा के बिना असहयोग पाप है तो मैं आजकल जिन विचारों को इन पृष्ठों में पल्लवित कर रहा हूँ वे सूर्य-प्रकाश की तरह स्पष्ट हो जायँगे।"

—यं० इं०। हिं० न० जी०, १४।९।'२४; पृष्ठ ३६]

अहिंसावादी उपयोगितावादी नहीं है

"...बात तो यह है कि अहिंसावादी उपयोगितावाद का समर्थन नहीं कर सकता। वह तो 'सर्वभूत हिताय' यानी सबके अधिकतम लाभ के लिए ही प्रयत्न करेगा और इस आदर्श की प्राप्ति में मर जायगा। इस प्रकार वह इसलिए मरना चाहेगा जिसमें दूसरे जी सकें। दूसरों के साथ-साथ वह अपनी सेवा भी आप मरकर करेगा। सबके अधिकतम सुख के अन्दर अधिकांश का अधिकतम सुख भी मिला हुआ है।"

—यं०इं०। हिं० न० जी० ९।१२।'२६; पृष्ठ १३७]

रूढ़िग्रस्त अहिंसा

"...रूढ़ि या आवश्यकता के कारण पाली जानेवाली अहिंसा में भौतिक परिणाम भले ही आवें किन्तु खुद अहिंसा एक ऊँचे प्रकार की भावना है, और उसका आरोपण तो उसी आदमी के सम्बन्ध में किया जा सकता है जिसका मन अहिंसक है और जो प्राणिमात्र के प्रति

करुणा से, प्रेम से उभरा पड़ता है। खुद किसी दिन मांसाहार किया नहीं, इसलिए आज भी नहीं करता है किन्तु क्षण-क्षण में क्रोध करता है, दूसरों को लूटता है, लूटने में नीति-अनीति की पर्वा नहीं करता, जिसे लूटता है उसके सुख-दुःख की फिक्र नहीं रखता, वह आदमी किसी तरह अहिंसक मानने लायक नहीं है किन्तु यह कहना चाहिए कि वह घोर हिंसा करने वाला है। इसके उलटे मांसाहार करनेवाला वह आदमी जो प्रेम से उभरा पड़ता है, राग-द्वेषादि से मुक्त है, सब के प्रति समभाव रखता है, वह अहिंसक है; पूजा करने योग्य है। अहिंसा का खयाल करते हुए हम हमेशा केवल खान-पानादि का विचार करते हैं। यह अहिंसा नहीं कही जायगी। यह तो मूर्च्छा है। जो मोक्षदायी है, जो परम धर्म है, जिसके निकट हिंसक प्राणी अपनी हिंसा छोड़ देते हैं, दुश्मन वैर भाव का त्याग करते हैं, कठोर हृदय पिघल जाते हैं, वह अहिंसा कोई अलौकिक शक्ति है, और वह बहुत प्रयत्न के बाद, बहुत तपश्चर्या के बाद किसी-किसी का ही वरण करती है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, १९।७।'२८; पृष्ठ ३८२]

हिंसा आत्मघाती है

"हिंसा आत्मघाती है और उसके सामने यदि प्रतिहिंसा न हो तो वह जिन्दा नहीं रह सकती।..."

—यं० इं०। हिं०न०जी०, १७।११।'२७; पृष्ठ १००]

ठगिनी हिंसा

"...लालच और कपट हिंसा की सन्तान भी हैं और उसके जनक भी हैं। हिंसा अपने नग्न रूप में लोगों को उसी तरह बुरी लगती है, जिस तरह मांस, रक्त और कोमल त्वचा से शून्य एक नर-कङ्काल बुरा लगता

है। ऐसी हिंसा बहुत समय तक नहीं टिक सकती। लेकिन जब वह शान्ति और प्रगति का भेष धारण कर लेती है तो काफी लम्बे समय तक बनी रहती है।

—यं० इं० [हिं० न० जी० ६।२।'३०; पृष्ठ १९७]

अहिंसा बनाम दया

"......जहाँ दया नहीं वहाँ अहिंसा नहीं अतः यों कह सकते हैं कि जिसमें जितनी दया है उतनी ही अहिंसा है।...जो जीने के लिए खाता है; सेवा करने के लिए जीता है, मात्र पेट पालने के लिए कमाता है वह काम करते हुए भी अक्रिय है; वह हिंसा करते हुए भी अहिंसक है। क्रियाहीन अहिंसा आकाश के फूल के समान है। क्रिया हाथ-पैर से ही होती हो, सो नहीं। मन हाथ-पैर की अपेक्षा बहुत ज्यादा काम करता है। विचार मात्र क्रिया है। विचार-रहित अहिंसा हो ही नहीं सकती।..."

—नवजीवन [हिं० न० जी०, ४।४।'२९; पृष्ठ २५७]

अहिंसा और मांसाहार

...मांसाहारी सत्याग्रही हो सकता है।"

× × ×

"मैंने मांसाहारी अहिंसक और निरामिष-भोजी हिंसक भी देखे हैं।...निरामिषहारी अभिमान न करें। अहिंसा एक अनोखी चीज़ है। यह भावना का विषय है, सिर्फ बाहरी आचार का नहीं।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, सावली, ४ मार्च,' ३६]

हिंसक और अहिंसक प्रवृत्तियाँ

"हिंसक और अहिंसक प्रवृत्तियाँ एक साथ चल रही हैं। ईश्वर उनका

द्रष्टा है। जनता परिणाम देखती है। हम हेतु देखेंगे। अहिंसा का किस तरह अमल मैं करता हूँ वह नई सी चीज़ मालूम होती है। जैनों और बौद्धों ने भी अहिंसा के प्रयोग किये। लेकिन वह आहार में मर्यादित हो गई है। राजनीतिक और सामाजिक कामों में भी हिंसक और अहिंसक दोनों शक्तियाँ प्रेरक हो जाती हैं। बाह्यतः उनके स्वरूप में फर्क नहीं दीख पड़ता पर हेतु में होता है। हर चीज़ में इस बात का ध्यान रक्खें तो हानि न होगी, और कठिनाइयाँ भी न रहेंगी।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, सावली, ३ मार्च, '३६]

सङ्कटापन्न विरोधी के प्रति आचरण

"...अहिंसक आदमी का कोई दुश्मन नहीं होता। लेकिन अपने को जो दुश्मन कहता है, वह जब दुर्बल हो जाता है तो अहिंसक मनुष्य उसपर दया करता है। वह उसकी आपत्ति में उसपर सवारी नहीं कसना चाहता। जब वह सङ्कट से मुक्त हो जाता है तभी अपनी लड़ाई शुरू करता है।..."

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, डेलांग, २५ मार्च, '३८]

हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न और अहिंसा

"अगर हम सचमुच शक्तिशाली अहिंसा का प्रयोग कर रहे हैं, तो हिन्दू मुसलमानों के बीच मैत्री कराने का प्रयत्न होना चाहिए। अब तक दोस्ती नहीं थी सिर्फ खुशामद से उन्हें जीतने की कोशिश हुई। उन सब चीज़ों में पालिसी थी।..."

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, डेलांग २८।३।'३८]

अहिंसा

"मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि अगर हमारी अहिंसा वैसी

न हुई जैसी कि वह होनी चाहिए, तो राष्ट्र को उससे बड़ा नुक्सान पहुँचेगा। क्योंकि उसकी आख़िरी तपिश में हम बहादुर के बजाय कायर साबित होंगे। और आज़ादी के लिए लड़नेवालों के लिए कायरता से बड़ी कोई बेइज़्ज़ती नहीं है।"

× × ×

"अगर हम यह महसूस करें कि हिंसा की लड़ाई बग़ैर हम ब्रिटिश सत्ता को नहीं हटा सकते, तो हमें याने कांग्रेस को राष्ट्र से साफ़-साफ़ यह कह देना और उसे उसके लिए तैयार करना चाहिए। इसके बाद जो सारी दुनिया में हो रहा है वही हम भी करें, याने जब ज़रूरत हो खामोश रहें और जब मौक़ा हो तब वार करें।"

—ह० से० ९।४।'३८; पृष्ठ ५८]

युरोपीय युद्ध और अहिंस

"···युरोप ने चार दिन की दुनियावी ज़िन्दगी के लिए अपनी आत्मा को बेच दिया है। म्यूनिच में युरोप को जो शान्ति प्राप्त हुई है वह तो हिंसा की विजय है। साथ ही, वह उसकी पराजय भी है।······मैं तो कहता हूँ कि अपने विरोधियों से लड़ते हुए मरना अगर बहादुरी है, जैसी कि वह वस्तुतः है, तो अपने विरोधियों से लड़ने से इन्कार करके भी उनके आगे न झुकना और भी बहादुरी है। जब दोनों ही सूरतों में मृत्यु निश्चित है, तब दुश्मन के प्रति अपने मन में कोई भी द्वेष-भाव रखे बग़ैर छाती खोलकर मरना क्या अधिक श्रेष्ठ नहीं है?"

—ह० से० ८।१०।'३८; पृष्ठ २६८]

अहिंसात्मक प्रतिकार

"अहिंसा का यह मतलब नहीं है कि हम दुष्टता के ख़िलाफ़ असली

लड़ाई को छोड़कर बैठ जायँ। बल्कि मेरी कल्पना की अहिंसा में जितना अधिक सक्रिय और वास्तविक प्रतिकार है, उतना प्रतिघात में नहीं है, क्योंकि प्रतिघात का तो स्वभाव ही ऐसा है कि उससे दुष्टता पनपती है। मेरा उद्देश दुष्टता का मानसिक और इसीलिए नैतिक प्रतिकार है। अत्याचारी की तलवार के विरुद्ध उससे पैनी धार वाली तलवार के प्रयोग से उसकी तलवार की धार भोंटी करने का मेरा इरादा नहीं है। मैं तो उसकी इस अपेक्षा को कि मैं शारीरिक प्रतिकार करूँगा, झूठा साबित करके उसकी तलवार भोंटी करना चाहता हूँ। मैं जो आत्मिक प्रतिकार करूँगा उससे वह पार नहीं पा सकेगा। पहले तो वह चौंधिया जायगा और अन्त में उसे उस प्रतिकार का लोहा मानना पड़ेगा, लेकिन ऐसा करने से उसकी मान-हानि होने के बदले उसका उत्थान होगा। कोई कहेंगे, यह तो आदर्श अवस्था है। हाँ, है तो सही।"

—'सर्वोदय', आवरण पृष्ठ, अक्टूबर,' ३८]

सच्चा बन्धुत्व

"बन्धुत्व से यह मतलब नहीं है कि जो तुम्हारा बन्धु बने और तुमसे प्रेम करे, उसके बन्धु बनो और उससे प्रेम करो। यह तो सौदा हुआ। बन्धुत्व में व्यापार नहीं होता। और मेरा धर्म तो मुझे यह सिखाता है कि बन्धुत्व केवल मनुष्यमात्र से ही नहीं, बल्कि प्राणिमात्र के साथ होना चाहिए। हम अपने दुश्मन से भी प्रेम करने के लिए तैयार न होंगे तो हमारा बन्धुत्व निरा ढोंग है। दूसरे शब्दों में कहूँ तो, जिसने बन्धुत्व की भावना को हृदयस्थ कर लिया है वह यह नहीं कहने देगा कि उसका कोई शत्रु है।"

—'सर्वोदय', अप्रैल, '३९; पृष्ठ ३३]

हिंसा बनाम अहिंसा

"हिन्दुस्तान में आज जगह-जगह हिंसा और अहिंसा की पद्धति के बीच एक द्वन्द्व युद्ध चल रहा है। हिंसा तो पानी के प्रवाह की तरह है। पानी को निकलने का रास्ता मिलते ही उसमें से उसका प्रवाह भयानक ज़ोर से बहने लगता है। अहिंसा पागलपन से काम कर ही नहीं सकती। वह तो अनुशासन का सार तत्व है। किन्तु जब वह सक्रिय बन जाती है, तब फिर हिंसा की कोई भी शक्तियाँ उसे पराजित नहीं कर सकतीं। अहिंसा सोलहों कलाओं से वहीं उदित होती है जहाँ उसके नेताओं में कुन्दन की जैसी शुद्धता और अटूट श्रद्धा होती है।"

—ह० से०, २८।१।'३९; पृष्ठ ४०]

प्रजातन्त्र और अहिंसा

"...जबतक प्रजातन्त्र का आधार हिंसा पर है, वह दीन-दुर्बलों की रक्षा नहीं कर सकता। दुर्बलों के लिए ऐसे राजतन्त्र में कोई स्थान ही नहीं है। प्रजातन्त्र का अर्थ मैं यह समझता हूँ कि इस तन्त्र में नीचे-से-नीचे और ऊँचे-से-ऊँचे आदमी को आगे बढ़ने का समान अवसर मिलना चाहिए। लेकिन सिवा अहिंसा के ऐसा कभी हो ही नहीं सकता।"

—ह० से० १८।५।'४०; पृष्ठ ११३]

हिंसा बनाम अहिंसा

"...जैसे हिंसा की तालीम में मारना सीखना जरूरी है, उसी तरह अहिंसा की तालीम में मरना सीखना पड़ता है। हिंसा में भय से मुक्ति नहीं मिलती, किन्तु भय से बचने का इलाज ढूँढ़ने का प्रयत्न रहता है। अहिंसा में भय को स्थान ही नहीं है। भयमुक्त होने के

लिए अहिंसा के उपासक को उच्च कोटि की त्याग वृत्ति विकसित करनी चाहिए। जमीन जाय, धन जाय, शरीर भी जाय, इसकी परवा ही न करे। जिसने सब प्रकार के भय को नहीं जीता वह पूर्ण अहिंसा का पालन नहीं कर सकता। इसलिए अहिंसा का पुजारी एक ईश्वर का ही भय रखे, और दूसरे सब भयों को जीत ले। ईश्वर की शरण ढूँढ़ने वालों को आत्मा शरीर से भिन्न है, यह भान होना चाहिए। और आत्मा का भान होते ही क्षणभङ्गुर शरीर का मोह उतर जाता है। इस तरह अहिंसा की तालीम हिंसा की तालीम से एक दम उल्टी होती है। बाहर की रक्षा के लिए हिंसा की जरूरत पड़ती है। आत्मा की, स्वमान की रक्षा के लिए अहिंसा की आवश्यकता है।...”

—सेवाग्राम, २५।८।'४०, ह० से० ३१।८।'४०; पृष्ठ २४२]

: ३ :

ईश्वर और उसकी साधना

ईश्वर

"ईश्वर निश्चय ही एक है। वह अगम, अगोचर और मानवजाति के बहु-जन-समाज के लिए अज्ञात है। वह सर्वव्यापी है। वह बिना आँखों के देखता है, बिना कानों के सुनता है। वह निराकार और अभेद है। वह अजन्मा है; उसके न माता है, न पिता, न सन्तान। फिर भी वह पिता, माता, पत्नी या सन्तान के रूप में पूजा ग्रहण करता है। यहाँ तक कि वह काष्ठ और पाषाण के भी रूप में पूजा-अर्चा को अङ्गीकार करता है, हालाँ कि वह न तो काष्ठ है, न पाषाण आदि ही। वह हाथ नहीं आता—चकमा देकर निकल जाता है। अगर हम उसे पहचान लें तो वह हमारे बिल्कुल नज़दीक है। पर अगर हम उसकी सर्वव्यापकता को अनुभव न करना चाहें तो वह हमसे अत्यन्त दूर है।"

—१९।९।'२४; यं० इं०। हिं० न० जी० २८।९।'२४; पृष्ठ ५३]

ईश्वरीय प्रकाश की सार्वदेशिकता

"ईश्वरीय प्रकाश किसी एक ही राष्ट्र या जाति की सम्पत्ति नहीं है।"

—१९।९।'२४ यं० इं०। हिं० न० जी०, २८।९।'२४ पृष्ठ ५३]

ईश्वर

"...ईश्वर न काबा में है, न काशी में है। वह तो घर-घर में व्याप्त है—हर दिल में मौजूद है।"

—यं० इं०। हिं० न० जी० १।१।'२५; पृष्ठ १६७]

× × ×

"...मेरा ईश्वर तो मेरा सत्य और प्रेम है। नीति और सदाचार ईश्वर है। निर्भयता ईश्वर है। ईश्वर जीवन और प्रकाश का मूल है। फिर भी वह इन सबसे परे है। ईश्वर अन्तरात्मा ही है। वह तो नास्तिकों की नास्तिकता भी है। क्योंकि वह अपने अमर्यादित प्रेम से उन्हें भी जिन्दा रहने देता है। वह हृदय को देखनेवाला है। वह बुद्धि और वाणी से परे है। हम स्वयं जितना अपने को जानते हैं उससे कहीं अधिक वह हमें और हमारे दिलों को जानता है। जैसा हम कहते हैं वैसा ही वह हमें नहीं समझता। क्योंकि वह जानता है कि जो हम जबान से कहते हैं अक्सर वही हमारा भाव नहीं होता।...ईश्वर उन लोगों के लिए एक व्यक्ति ही है जो उसे व्यक्ति रूप में हाज़िर देखना चाहते हैं। जो उसका स्पर्श करना चाहते हैं उनके लिए वह शरीर धारण करता है। वह पवित्र से पवित्र तत्व है। जिन्हें उसमें श्रद्धा है उन्हीं के लिए उसका अस्तित्व है।...वह हममें व्याप्त है और फिर भी हमसे परे है। वह बड़ा सहनशील है, वह बड़ा धैर्यवान है, लेकिन वह बड़ा भयङ्कर भी है। उसका व्यक्तित्व इस दुनिया में, और भविष्य की दुनिया में भी, सबसे अधिक काम करानेवाली ताकत है। जैसा हम अपने पड़ोसी—मनुष्य और पशु दोनों—के साथ बर्ताव करते हैं वैसा ही बर्ताव वह हमारे साथ भी करता है। उसके सामने अज्ञान की दलील नहीं चल सकती। लेकिन यह सब होने पर भी वह बड़ा रहमदिल है क्योंकि वह हमें पश्चात्ताप करने के लिए मौक़ा देता है। दुनिया में सबसे बड़ा प्रजातन्त्रवादी वही है क्योंकि वह बुरे-भले को पसन्द करने के लिए हमें स्वतन्त्र छोड़ देता है। वह सबसे बड़ा जालिम है क्योंकि वह अक्सर हमारे मुँह तक आये हुए कौर को छीन लेता है और इच्छा-स्वातन्त्र्य

की ओट में हमें इतनी कम छूट देता है कि हमारी मजबूरी के कारण उससे सिर्फ उसी को आनन्द मिलता है। यह सब, हिन्दूधर्म के अनुसार, उसकी लीला है, उसकी माया है। हम कुछ नहीं हैं, सिर्फ़ वही है।…"

—यं० इं० । हिं० न० जी० ५।३।'२५ । पृष्ठ २३८-२३९]

× × ×

"…यदि वह नहीं है तो हम भी नहीं हो सकते हैं। इसीलिए हम सब उसे एक आवाज से……अनेक और अनन्त नामों से पुकारते हैं। वह एक है; अनेक है। अणु से भी छोटा और हिमालय से भी बड़ा है। समुद्र के एक बिन्दु में भी समा जा सकता है और ऐसा भारी है कि सात समुद्र मिलकर भी उसे सहन नहीं कर सकते। उसे जानने के लिए बुद्धि-वाद का उपयोग ही क्या हो सकता है? वह तो बुद्धि से अतीत है। ईश्वर का अस्तित्व मानने के लिए श्रद्धा की आवश्यकता है।……मेरी श्रद्धा बुद्धि से भी इतनी अधिक आगे दौड़ती है कि मैं समस्त संसार का विरोध होने पर भी यही कहूँगा कि ईश्वर है; वह है ही है।"

—नवजीवन : हिं० न० जी० २१।१।'२६ पृष्ठ १८१]

× × ×

"ईश्वर प्रकाश है, अन्धकार नहीं। वह प्रेम है, घृणा नहीं। वह सत्य है, असत्य नहीं। एक ईश्वर ही महान है। हम उसके बन्दे उसकी चरण-रज हैं।"

—ह० से०, २६।३।'३३]

ईश्वर के प्रति सच्ची श्रद्धा

"…यदि हमारे अन्दर सच्ची श्रद्धा है, यदि हमारा हृदय वास्तव में प्रार्थनाशील है तो हम ईश्वर को प्रलोभन नहीं देंगे, उसके साथ शर्तें नहीं करेंगे। हमें उसके आगे अपने को शून्य—नगण्य—कर देना

होगा।......जबतक हम अपने को शून्यता तक नहीं पहुँचा देते तब-तक हम अपने अन्दर के दोषों को नहीं हटा सकते। ईश्वर पूर्ण आत्म-समर्पण के बिना सन्तुष्ट नहीं होता। वास्तविक स्वतन्त्रता का इतना मूल्य वह अवश्य चाहता है। और जिस क्षण मनुष्य इस प्रकार अपने को भुला देता है उसी क्षण वह अपने को प्राणिमात्र की सेवा में लीन पाता है। वह उसके लिए आनन्द और श्रम-परिहार का विषय हो जाती है। तब वह एक बिल्कुल नया मनुष्य हो जाता है और ईश्वर की इस सृष्टि की सेवा में अपने को खपाते हुए कभी नहीं थकता।"

—यं० इं०। हिं० न० जी०, २९।१२।'२८; पृष्ठ १४०]

ईश्वर के अस्तित्व की अनुभूति

"...मैं धुँधले तौर पर जरूर यह अनुभव करता हूँ कि जब मेरे चारों ओर सब कुछ बदल रहा है, मर रहा है तब भी इन सब परिवर्तनों के नीचे एक जीवित शक्ति है जो कभी नहीं बदलती, जो सबको एक में ग्रथित करके रखती है, जो नई सृष्टि करती है, उसका संहार करती है और फिर नये सिरे से पैदा करती है। यही शक्ति ईश्वर है, परमात्मा है। मैं इन्द्रियों से जिनका अनुभव करता हूँ उनमें से और कोई वस्तु टिकी नहीं रह सकती, नहीं रहेगी, इसलिए 'तत्सत्' एक वही है। और यह शक्ति शिव है या अशिव ? मैं तो इसे शुद्ध शिव-रूप में देखता हूँ क्योंकि मैं देखता हूँ कि मृत्यु के मध्य में जीवन कायम रहता है, असत्य के मध्य सत्य पनपता है, अन्धकार के बीच प्रकाश कायम रहता है। इसलिए मैं मानता हूं कि ईश्वर जीवन है, सत्य है, प्रकाश है। वह प्रेम है। वह परम मङ्गल है।"

—कोलम्बिया ग्रामोफोन कम्पनी के एक रेकार्ड से]

जीवन में ईश्वर का स्थान

"आजकल तो यह एक फैशन-सा बन गया है कि जीवन में ईश्वर का कोई स्थान नहीं समझा जाता और सच्चे ईश्वर में अडिग आस्था रखने की आवश्यकता के बिना ही सर्वोच्च जीवन तक पहुँचने पर जोर दिया जाता है।.........पर मेरा अपना अनुभव तो मुझे इसी ज्ञान पर ले जाता है कि जिसके नियमानुसार सारे विश्व का सञ्चालन होता है उस शाश्वत नियम में अचल विश्वास रक्खे बिना पूर्णतम जीवन सम्भव नहीं है। इस विश्वास से विहीन व्यक्ति तो समुद्र से अलग आ पड़ने वाली उस बूँद के समान है जो नष्ट होकर ही रहती है।"

—ह० से०, २५।४।'३६; पृष्ठ ७६]

ईश्वर में विश्वास

"जो लोग ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करना चाहते, वे अपने शरीर के सिवा और किसी वस्तु के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते। मानवता की प्रगति के लिए ऐसा विश्वास अनावश्यक है। आत्मा या परमात्मा के अस्तित्व के प्रमाण रूप कितनी ही भारी दलील क्यों न हो, ऐसे मनुष्यों के लिए वह व्यर्थ ही है। जिस मनुष्य ने अपने कानों में डाट लगा रखी हो, उसे आप कितना ही बढ़िया संगीत क्यों न सुनायें, वह उसकी सराहना तो क्या करेगा उसे सुन भी नहीं सकेगा। इसी तरह जो लोग विश्वास ही नहीं करना चाहते, उन्हें आप प्रत्यक्ष ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करा ही नहीं सकते।"

—ह० से० १२।६।'३६; पृष्ठ १३२]

रामनाम की महिमा

"......रामनाम के प्रताप से पत्थर तैरने लगे, रामनाम के बल

से बानर सेना ने रावण के छक्के छुड़ा दिये, रामनाम के सहारे हनुमान ने पर्वत उठा लिया और राक्षसों के घर अनेक वर्ष रहने पर भी सीता अपने सतीत्व को बचा सकी। भरत ने चौदह साल तक प्राण धारण कर रक्खा, क्योंकि उनके कण्ठ से रामनाम के सिवा दूसरा कोई शब्द न निकलता था। इसलिए तुलसीदास ने कहा कि कलिकाल का मल धो डालने के लिए रामनाम जपो।

"इस तरह प्राकृत और संस्कृत दोनों प्रकार के मनुष्य रामनाम लेकर पवित्र होते हैं। परन्तु पावन होने के लिए रामनाम हृदय से लेना चाहिए, जीभ और हृदय को एक-रस करके रामनाम लेना चाहिए। मैं अपना अनुभव सुनाता हूँ। मैं संसार में यदि व्यभिचारी होने से बचा हूँ तो रामनाम की बदौलत। मैंने दावे तो बड़े-बड़े किये हैं परन्तु यदि मेरे पास रामनाम न होता तो स्त्रियों को मैं बहिन कहने के लायक न रहा होता। जब-जब मुझपर विकट प्रसंग आये हैं मैंने राम नाम लिया है और मैं बच गया हूँ। अनेक सङ्कटों से रामनाम ने मेरी रक्षा की है।..."

नवजीवन। हि० न० जी० ३०।४।'२५; पृष्ठ ३००-३०१]

× × ×

"......करोड़ों के हृदय का अनुसन्धान करने और उनमें ऐक्य भाव पैदा करने के लिए एक साथ रामनाम की धुन-जैसा दूसरा कोई सुन्दर और सबल साधन नहीं है। कई नौजवान इसपर एतराज करते हैं कि मुँह से रामनाम बोलने से क्या लाभ जब कि हृदय में जबर्दस्ती रामनाम की धुन जाग्रत की ही नहीं जा सकती। लेकिन जिस तरह गायनविद्या-विशारद जबतक सुर नहीं मिलते तबतक बराबर तार कसता रहता है और ऐसा करते हुए जैसे उसे अकस्मात् योग्य स्वर मिल जाता

है उसी तरह हम भी भावपूर्ण हृदय से रामनाम का उच्चारण करते रहे तो किसी न किसी वक्त अकस्मात् ही हृदय के छुपे हुए तार एकतान हो जायँगे। यह अनुभव मेरे अकेले का नहीं है; कई दूसरों का भी है। मैं खुद इस बात का साक्षी हूँ कि कई-एक नटखट लड़कों का तूफानी स्वभाव निरन्तर रामनाम के उच्चारण से दूर हो गया और वे रामभक्त बन गये हैं लेकिन इसकी एक शर्त है। मुँह से रामनाम बोलते समय वाणी को हृदय का सहयोग मिलना चाहिए क्योंकि भावनाशून्य शब्द ईश्वर के दरबार तक नहीं पहुँचते।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, ७।३।'२९; पृष्ठ २३०। कराची के एक प्रवचन से।]

ईश्वरीय नियमों का पालन ही जप है

"ईश्वर को नाम की जरूरत नहीं। वह और उसके नियम दोनों एक ही हैं। इसलिए ईश्वरीय नियमों का पालन ही ईश्वर का जप है। इसलिए केवल तात्विक दृष्टि से देखें तो जो ईश्वर की नीति के साथ तदाकार हो गया है उसे जप की जरूरत नहीं।"

—पूना, १०-३-'४६। 'ह० से०' २४।३'४६]

हृदयस्थ रामनाम

प्रश्न—दूसरे से बातचीत करते समय मस्तिष्क-द्वारा कठिन कार्य करते समय अथवा अचानक घबड़ाहट आदि के समय भी क्या हृदय में रामनाम का जप हो सकता है? अगर ऐसी दशा में भी लोग करते हैं तो कैसे करते हैं?"

उत्तर—अनुभव कहता है कि मनुष्य किसी भी हालत में हो, सोता भी क्यों न हो, अगर आदत हो गई है और नाम हृदयस्थ हो गया है

तो जबतक हृदय चलता है तबतक रामनाम हृदय में चलता ही रहना चाहिए। अन्यथा यह कहा जाय कि मनुष्य जो रामनाम लेता है वह उसके कंठ से ही निकलता है, अथवा कभी-कभी हृदय तक पहुँचता है लेकिन हृदय पर नाम का साम्राज्य स्थापित नहीं हुआ है। जब नाम ने हृदय का स्वामित्व पाया है तब जप कैसे करते हैं, यह सवाल पूछा ही न जाय क्योंकि जब नाम हृदय में स्थान ले लेता है तब उच्चारण की आवश्यकता ही नहीं है। यह कहना ठीक होगा कि इस तरह राम नाम जिनके हृदयस्थ हुआ है, ऐसे लोग कम होंगे। जो शक्ति राम नाम में मानी गई है उसके बारे में मुझे कोई शक नहीं है। हर एक आदमी इच्छामात्र से ही रामनाम को अपने हृदय में अंकित नहीं कर सकेगा। उसमें अनथक परिश्रम की आवश्यकता है, धीरज की भी है। पारस मणि को हासिल करने के लिए धीरज क्यों न हो? नाम तो उससे भी अधिक है।

× × ×

सेवाकार्य बनाम भगवद्भक्ति

प्रश्न—सेवाकार्य के कठिन अवसरों पर भगवद्भक्ति के नित्य नियम नहीं निभ पाते, तो क्या कोई हर्ज होता है? दोनों में किस को प्रधानता दी जाय, सेवाकार्य को अथवा माला-जप को?

उत्तर—कठिन सेवाकार्य हो या उससे भी कठिन अवसर हो तो भी भगवद्भक्ति यानी रामनाम बन्द हो ही नहीं सकता। उसका बाह्य रूप प्रसंगवशात् बदलता रहेगा। माला छूटने से रामनाम जो हृदय में अंकित हो चुका है, थोड़े ही छूट सकता है।

सेवाग्राम, ९-२-'४६; ह० सें० १७।२।४६]

सेवा बनाम उपासना

प्रश्न—मनुष्य ईश्वर-भजन में जितना समय लगाता है, अगर अपना उतना ही समय वह किसी गरीब की सेवा में लगावे, तो क्या यह भजन से अच्छा न होगा ? जो मनुष्य ऐसा करता है, क्या उसके लिए ईश्वर-भक्ति ज़रूरी है ?

उत्तर—"ऐसे सवाल में मुझे आलस्य की बू आती है। नास्तिकता की भी। बड़े कर्मयोगी कभी भजन या भक्ति नहीं छोड़ते। हां, सिद्धान्त रूप से यह कहा जा सकता है कि पारमार्थिक कर्म ही भक्ति है और ऐसे लोगों को भजन की ज़रूरत नहीं। मगर हकीकत में भजन वगैरा ऐसे कर्म के सहायक बनते हैं और ईश्वर की याद ताज़ा रखते हैं।"

—नई दिल्ली ५-१०-'४६ । ह० से० १३।१०।४६]

रामनाम मेरा बल है

"मेरे पास एक रामनाम के सिवा कोई ताक़त नहीं है। वही मेरा एक आसरा है।"

—पूना, ३०।६।'४६ हरिजन । ह० से० १४।७।'४६]

रामनाम का आचार

"सिर्फ़ मुँह से रामनाम रटने से कोई ताकत नहीं मिलती। ताक़त पाने के लिए ज़रूरी यह है कि सोच-समझकर नाम जपा जाय और जप की शर्तों का पालन-करते हुए ज़िंदगी बिताई जाय। ईश्वर का नाम लेने के लिए इन्सान को ईश्वरमय होना चाहिए।"

—पूना, ९।७।'४६। हरिजन। ह० से० १४।७।'४३]

प्रार्थना

"……प्रार्थना करना याचना करना नहीं है, वह तो आत्मा की

पुकार है।"

—यं० इं० । हिं० न० जी०, ३०।९।'२६; पृष्ठ ५२]

× × ×

"......हम जब अपनी असमर्थता खूब समझ लेते हैं और सब कुछ छोड़कर ईश्वर पर भरोसा करते हैं तो उसी भावना का फल प्रार्थना है।"

—यं० इं० । हिं० न० जी० २५।११।'२६; पृष्ठ ११४]

× × ×

"एक मनुष्य को हम पत्र लिखते हैं। उसका भला-बुरा उत्तर मिलता भी है और नहीं भी मिलता। वह पत्र आखिर कागज का टुकड़ा ही है। ईश्वर को पत्र लिखने में न कागज चाहिए, न कलम-दावात ही और न शब्द ही। ईश्वर को जो पत्र लिखा जाता है उसका उत्तर न मिले; यह सम्भव ही नहीं। उस पत्र का नाम पत्र नहीं, प्रार्थना है, पूजा है। मन्दिर में जाकर ऐसे पत्र करोड़ों लोग प्रतिदिन लिखते हैं और उन्हें श्रद्धा है कि उनके पत्र का उत्तर भगवान ने दे ही दिया है। यह निरपवाद सिद्धान्त है—भक्त भले ही उसका कोई बाह्य प्रमाण न दे सके। उसकी श्रद्धा ही उसका प्रमाण है। उत्तर प्रार्थना में ही सदा से रहा है, भगवान की ऐसी प्रतिज्ञा है।"

—ह० से०; ३१।३।'३३]

× × ×

"प्रार्थना का आमन्त्रण निश्चय ही आत्मा की व्याकुलता का द्योतक है। प्रार्थना पश्चात्ताप का एक चिह्न है। प्रार्थना हमारे

अधिक अच्छे, अधिक शुद्ध होने की आतुरता को सूचित करती है।"

—ह० से०; २१।६।'३५; पृष्ठ १४४]

प्रार्थना और हृदय का सम्बन्ध

"......प्रार्थना या भजन जीभ से नहीं हृदय से होता है। इसी से गूँगे, तुतले, मूढ़ भी प्रार्थना कर सकते हैं। जीभ पर अमृत हो और हृदय में हलाहल तो जीभ का अमृत किस काम का ? कागज के गुलाब से सुगन्ध कैसे निकल सकती है ?"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, २४।९।'२५; पृष्ठ ४४]

प्रार्थना

"...स्तुति, उपासना, प्रार्थना अन्ध-विश्वास नहीं, बल्कि उतनी अथवा उससे भी अधिक सच बातें हैं, जितना कि हम खाते हैं, पीते हैं, चलते हैं, बैठते हैं, ये सच हैं। बल्कि यों भी कहने में अत्युक्ति नहीं कि यही एक मात्र सच है; दूसरी सब बातें झूठ हैं, मिथ्या हैं।

"ऐसी उपासना, ऐसी प्रार्थना वाणी का वैभव नहीं है। उसका मूल कण्ठ नहीं, बल्कि हृदय है। अतएव यदि हम हृदय को निर्मल बना लें, उसके तारों का सुर मिला लें तो उसमें से जो सुर निकलता है वह गगनगामी हो जाता है। उसके लिए जीभ की आवश्यकता नहीं। यह तो स्वभावतः ही अद्भुत वस्तु है। विकार रूपी मल की शुद्धि के लिए हार्दिक उपासना एक जीवन-जड़ी है।..."

—हिन्दी आत्मकथा, भाग १, अध्याय २२; पृष्ठ ८२-८३, सस्ता संस्करण, १९३९]

प्रार्थना और उपवास

"अर्थहीन स्तोत्र-पाठ प्रार्थना नहीं है, न शरीर को भूखों मारना उपवास है। प्रार्थना तो उसी हृदय से निकलती है जिसे कि ईश्वर का श्रद्धापूर्वक ज्ञान है; और उपवास का अर्थ है बुरे या हानिकारक विचार, कर्म या आहार से परहेज रखना। मन तो विविध प्रकार के व्यञ्जनों की ओर दौड़ रहा है, और शरीर को भूखों मारा जा रहा है, तो ऐसा उपवास निरर्थक व्रत-उपवास से भी बुरा है।"

—ह० से० १०।४।'३७; पृष्ठ ६२]

प्रार्थना—हार्दिक

"प्रार्थना लाजिमी हो ही नहीं सकती। प्रार्थना तभी प्रार्थना है, जब वह अपने आप हृदय से निकलती है।..."

—नई दिल्ली, १।७।'४०; ह० से० ६-७-४०; पृष्ठ १७१]

आत्मबल का अस्तित्व

"...आत्मबल की सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण तो यही है कि इतने युद्धों के बावजूद दुनिया अभी कायम है। इससे यह स्पष्ट है कि युद्ध-बल के बजाय कोई और बल ही उसका आधार है।"

१९०८; 'हिन्द स्वराज्य']

हृदय की गुफा ही सच्ची गुफा है

"...संसार का ज्ञानमय त्याग ही मोक्ष-प्राप्ति है। संसार का सर्वथा त्याग हिमालय के शिखर पर भी नहीं है। हृदय की गुफा ही सच्ची गुफा है। मनुष्य को चाहिए कि वह उसमें छुपकर, सुरक्षित रहकर, संसार में रहते हुए भी उससे अलिप्त रहे और अनिवार्य कामों में प्रवृत्त होते

हुए विचरण करे।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० २०।८।'२५; पृष्ठ ३]

भ्रमात्मक वस्तुएँ

"...शरीर यदि मोक्ष में बाधक होता हो तो वह भ्रमात्मक है। इसी प्रकार आत्मा की गति को जितनी चीज़ें रोकती हैं, वे भ्रमात्मक हैं।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० २।११।'२४; पृष्ठ ९०। श्री रामचन्द्रन से बातचीत के सिलसिले में]

मृत्यु

"...सच पूछा जाय तो कहना होगा कि मौत ईश्वर की अमर देन है। काम करनेवाला शरीर चेतना-शून्य हो जाता है और उसमें रहने-वाला पंखी उड़ जाता है। जब तक इस पंखी की मौत नहीं आती तब तक शोक करने का सवाल ही नहीं उठता।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, ७।३।,२९; पृष्ठ २२६। अपने पोते रसिक की मृत्यु के सम्बन्ध में]

सच्चा हिमालय हृदय में है!

"...सच्चा हिमालय हमारे हृदयों में है। इस हृदय-रूपी गुफा में छिपकर उसमें शिवदर्शन करना ही सच्ची यात्रा है; यही पुरुषार्थ है।"

—नवजीवन। हिं० न० जीं० १८।७।'२९; पृष्ठ ३८३]

मानव जीवन का लक्ष्य

"......मनुष्य-जीवन का उद्देश्य आत्मदर्शन है और उसकी सिद्धि का मुख्य एवं एक मात्र उपाय पारमार्थिक भाव से जीवमात्र की सेवा करना है; उनमें तन्मयता तथा अद्वैत के दर्शन करना है।"

—हिं० न० जी० १५।८।'२९; पृष्ठ ४१२]

अन्तरात्मा का जागरण

"...अन्तरात्मा तो अभ्यास से जाग्रत होती है। वह मनुष्य-मात्र में स्वभावतः जाग्रत नहीं होती। इसके अभ्यास के लिए बहुत पवित्र वायुमण्डल की जरूरत रहती है; सतत प्रयत्न की जरूरत होती है। यह अत्यन्त नाजुक चीज़ है। ......अन्तःकरण क्या चीज़ है? परिपक्व बुद्धि के रास्ते हमारे अन्तरपट पर पड़नेवाली प्रतिध्वनि।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, २४।८।'२४; पृष्ठ ११]

अन्तर्नाद

"मैं मानता हूँ कि सत्य का तादृश ज्ञान, सत्य का साक्षात्कार ही अन्तर्नाद है।"

—ह० से०, १०।११।'३३]

आत्मशान्ति का उपाय

"...साधुजीवन से ही आत्म-शान्ति की प्राप्ति सम्भव है। यही इहलोक और परलोक, दोनों का, साधन है। साधु जीवन का अर्थ है, सत्य और अहिंसामय जीवन, संयमपूर्ण जीवन। भोग कभी धर्म नहीं बन सकता; धर्म की जड़ तो त्याग में ही है।"

—हिं० न० जी०, १५।८।'२९; पृष्ठ ४१२]

सब कुछ हमारे अन्दर है!

"...स्वर्ग और पृथिवी सब हमारे ही अन्दर है। हम पृथिवी से तो परिचित हैं पर अपने अन्दर के स्वर्ग से बिल्कुल अपरिचित हैं।"

—ह० से०। २६।९।'३६; पृष्ठ २५२–२५३]

मानव की तात्त्विक एकता

"धर्म तो सिखाता ही है कि जीवमात्र अन्त में एक ही हैं। अनेकता क्षणिक होने के कारण आभास मात्र है। लेकिन राष्ट्र-भावना भी हमें यही पाठ देती है।"

—ह० से० ४।७।'३६; पृष्ठ १५६]

---

*

: ४ :

हृद्गत भाव-तत्त्व

आशावाद

"आशावाद आस्तिकता है। सिर्फ नास्तिक ही निराशावादी हो सकता है। आशावादी ईश्वर का डर मानता है; विनयपूर्वक अपना अन्तरनाद सुनता है, उसके अनुसार बरतता है और मानता है कि 'ईश्वर जो करता है वह अच्छे के ही लिए करता है'।"

× × ×

आशावादी प्रेम में मगन रहता है। किसी को अपना दुश्मन नहीं मानता। इससे वह निडर होकर जङ्गलों और गाँवों में सैर करता है। भयानक जानवरों तथा ऐसे जानवरों-जैसे मनुष्यों से भी वह नहीं डरता क्योंकि उसकी आत्मा को न तो साँप काट सकता है और न पापी का खंजर ही छेद सकता है। शरीर की तो वह चिन्ता ही नहीं करता क्योंकि वह तो काया को काँच की बोतल समझता है। वह जानता है कि एक न एक दिन तो वह फूटने वाली ही है। इसलिए वह उसकी रक्षा के निमित्त संसार को पीड़ित नहीं करता...।

—नवजीवन। हिं० न० जी० २८।१०।'२१]

शान्ति पत्थर की नहीं, हृदय की

"मैं शान्ति-परायण मनुष्य हूँ। शान्ति में मेरा विश्वास है। लेकिन मैं चाहे जो कीमत देकर शान्ति नहीं खरीदना चाहता। आप पत्थर में जो शान्ति पाते हैं वह मुझे नहीं चाहिये। जिसे आप कब्र में देखते हैं वह शान्ति मैं नहीं चाहता। लेकिन मैं वह शान्ति अवश्य चाहता हूँ जो

मनुष्य के हृदय में सन्निहित है, और सारी दुनिया के वार करने के लिए उद्यत होते हुए भी सर्वशक्तिमान ईश्वर की शक्ति जिसकी रक्षा करती है।"

—सर्वोदय', एप्रिल, '३९; पृष्ठ ३७]

श्रद्धा का अर्थ

"...श्रद्धा का अर्थ है आत्म-विश्वास, और आत्म-विश्वास का अर्थ है ईश्वर पर विश्वास। जब चारों ओर काले बादल दिखाई देते हों, किनारा कहीं नजर न आता हो और ऐसा मालूम होता हो कि बस अब डूबे, तब भी जिसे यह विश्वास होता है कि मैं हर्गिज़ न डूबूँगा उसे कहते हैं श्रद्धावान।"

—पूना की सभा में। नवजीवन। हिं० न० जी०, १४।९।'२४; पृष्ठ ३८]

श्रद्धा

"...काशी विश्वनाथ की भव्य मूर्ति मौ० हसरत मोहानी के नज़दीक एक पत्थर का टुकड़ा हो पर मेरे लिए तो वह ईश्वर की प्रतिमा है। मेरा हृदय उसका दर्शन करके द्रवित होता है। यह श्रद्धा की बात है। जब मैं गाय का दर्शन करता हूँ तब मुझे किसी भक्ष्य पशु का दर्शन नहीं होता, उसमें मुझे एक करुण काव्य दिखाई देता है। मैं उसकी पूजा करूँगा और फिर करूँगा और यदि सारा जगत् मेरे खिलाफ़ उठ खड़ा हो तो उसका मुक़ाबला करूँगा। ईश्वर एक है पर वह मुझे पत्थर की पूजा करने की श्रद्धा प्रदान करता है।"

—हिं० न० जी०, ८।१'।२५; पृष्ठ १७८]

× × ×

"...मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि श्रद्धा और विश्वास न रहें तो क्षण भर में प्रलय हो जाय। सच्ची श्रद्धा के मानी हैं उन लोगों के

युक्तियुक्त अनुभवों का आदर करना जिनके विषय में हमारा विश्वास है कि उन्होंने तपस्या और भक्ति से पवित्र जीवन बिताया है। इसलिए प्राचीन काल के अवतारों या नबियों में विश्वास करना कुछ बेमतलब वहम नहीं है, बल्कि यह है आत्मा की आन्तरिक भूख की सन्तुष्टि।"

—यं० इं० । हिं० न० जी० १४।४।'२७; पृष्ठ २७६]

× × ×

..."श्रद्धा वह वस्तु है जिसकी केवल आशा ही की जाती है; उन वस्तुओं का प्रमाण है जो देखी नहीं जा सकती।"

—यं० इं० । हिं० न० जी० २६।१।'२८; पृष्ठ १८४]

श्रद्धा, अन्ध श्रद्धा नहीं

"...मेरी श्रद्धा तो ज्ञानमयी और विवेकपूर्ण है। जो बुद्धि का विषय है, वह श्रद्धा का विषय कदापि नहीं हो सकता। इसलिए अन्ध-श्रद्धा श्रद्धा ही नहीं।"

—हिं० न० जी०, २९।८।'२९; पृष्ठ १२]

श्रद्धा का महत्त्व

"जहाँ बड़े-बड़े बुद्धिमानों की बुद्धि काम नहीं करती, वहाँ एक श्रद्धावान की श्रद्धा काम कर जाती है। दूसरों की आँख जहाँ चकाचौंध में पड़ जाती है, वहाँ श्रद्धालु की आँख स्पष्ट रूप से दीपकवत् सब देख लेती है। जहाँ श्रद्धा है, वहाँ पराजय नहीं; श्रद्धालु का अकर्म भी कर्म हो जाता है।"

—ह० से०, २१।४।'३३]

भक्ति बुद्धि का विषय नहीं

"भक्ति-धारा लेखनी से नहीं बह सकती। वह बुद्धि का विषय नहीं

है। वह तो हृदय की गुफा में से ही निकल सकती है; और जब वहाँ से फूट निकलेगी, तब उसके प्रवाह को कोई भी शक्ति नहीं रोक सकेगी। गंगा के प्रबल प्रवाह को कौन रोक सकता है।"

—ह० से०, ५।५।'३३]

श्रद्धा का मर्म

श्रद्धा की कसौटी यह है कि अपना फ़र्ज़ अदा करने के बाद जो कुछ भी भला या बुरा नतीजा हो, इनसान उसे मान ले। सुख आये या दुःख आये, उसके लिए सब बराबर होना चाहिये।"

—पूना, ३०।६।'४६। हरिजन। ह० से० ७।६।'४६]

× × ×

"जो श्रद्धा अनुभव की भी अपेक्षा नहीं रखती, वही सच्ची श्रद्धा है।"

—पंचगनी, २५।७।'४६। ह० ब०। ह० से० ४।८।'४६]

बुद्धि कर्मानुसारिणी है

"......प्रथम हृदय है, और फिर बुद्धि। प्रथम सिद्धान्त और फिर प्रमाण। प्रथम स्फुरणा और फिर उसके अनुकूल तर्क। प्रथम कर्म और फिर बुद्धि। इसीलिए बुद्धि कर्मानुसारिणी कही गई है। मनुष्य जो भी करता है या करना चाहता है उसका समर्थन करने के लिए प्रमाण भी ढूँढ़ निकालता है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, १५।१०।'२५; पृष्ठ ६८]

बुद्धि की मर्यादा

"......बुद्धिवाद को तब भयङ्कर राक्षस का नाम देना चाहिए जब वह सर्वज्ञता का दावा करने लगे। बुद्धि को ही सर्वज्ञ मानना उतनी

ही बुरी मूर्ति-पूजा है जितनी ईंट-पत्थर को ही ईश्वर मानकर पूजा करना।"

—यं० इं० । हिं० न० जी०, १४।१०।'२६; पृष्ठ ६६]

× × ×

"......निरी व्यावहारिक बुद्धि तो सत्य का आवरण है। वह तो हिरण्मय पात्र है जो सत्य के रूप को ढक देता है। ऐसी बुद्धि मे तो हजारों चीजें पैदा हो जायँगी। उनसे एक ही चीज़ बचावेगी—श्रद्धा"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, डेलांग; २८।३।'३८]

बुद्धि बनाम श्रद्धा

"......मैं अपने उन पाठकों के सामने भी इसे (रामनाम) पेश करता हूँ जिनकी दृष्टि धुँधली न हुई हो और जिनकी श्रद्धा बहुत विद्वत्ता प्राप्त करने से मन्द न हो गई हो। विद्वत्ता हमें जीवन की अनेक अवस्थाओं मे सफलतापूर्वक निकाल ले जाती है पर सङ्कट और प्रलोभन के समय वह हमारा साथ बिल्कुल नहीं देती। उस हालत में अकेली श्रद्धा ही उबारती है। रामनाम उन लोगों के लिए नहीं है जो ईश्वर को हर तरह से फुसलाना चाहते हैं और हमेशा अपनी रक्षा की आशा उससे लगाये रहते हैं। यह उन लोगों के लिए है जो ईश्वर से डरकर चलते हैं, और जो संयमपूर्वक जीवन बिताना चाहते हैं पर अपनी निर्बलता के कारण उसका पालन नहीं कर पाते।"

—यं० इं० २२।१।'२५; पृष्ठ २७]

× × ×

"......जिस विषय में बुद्धि का प्रयोग किया जा सकता है वहाँ केवल श्रद्धा से हम नहीं चल सकते हैं। जो बातें बुद्धि से परे हैं उन्हीं

के लिए श्रद्धा का उपयोग है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, २४।६।'२६।; पृष्ठ ३५३]

× × ×

"......श्रद्धा और बुद्धि के क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं। श्रद्धा से अन्तर्ज्ञान, आत्मज्ञान की वृद्धि होती है, इसलिए अन्तःशुद्धि तो होती ही है। बुद्धि से बाह्य ज्ञान की, सृष्टि के ज्ञान की वृद्धि होती है परन्तु उसका अन्तःशुद्धि के साथ कार्यकारण-जैसा कोई सम्बन्ध नहीं रहता। अत्यन्त बुद्धिशाली लोग अत्यन्त चरित्रभ्रष्ट भी पाये जाते हैं मगर श्रद्धा के साथ चरित्रशून्यता असम्भव है।"

—हिं० न० जी०, १९।९।'२९। पृष्ठ ३६]

× × ×

"......जिसमें शुद्ध श्रद्धा है, उसकी बुद्धि तेजस्वी रहती है। वह स्वयं अपनी बुद्धि से जान लेता है कि जो वस्तु बुद्धि से भी अधिक है—परे है—वह श्रद्धा है। जहाँ बुद्धि नहीं पहुँचती वहाँ श्रद्धा पहुँच जाती है। बुद्धि की उत्पत्ति का स्थान मस्तिष्क है, श्रद्धा का हृदय। और यह तो जगत् का अविच्छिन्न अनुभव है कि बुद्धि-बल से हृदय-बल सहस्रशः अधिक है। श्रद्धा से जहाज़ चलते हैं, श्रद्धा से मनुष्य पुरुषार्थ करता है, श्रद्धा से वह पहाड़ों को हिला सकता है। श्रद्धावान को कोई परास्त नहीं कर सकता; बुद्धिमान को हमेशा पराजय का डर रहता है।"

—हिं० न० जी०, १९।९।'२९; पृष्ठ ३६]

× × ×

...प्रलोभनों के आगे बेचारी बुद्धि कुछ नहीं चलती। वहाँ तो श्रद्धा ही हमारी ढाल बन सकती है...बुद्धि तो उन्हीं लोगों का साथ

देती दीखती है, जो छूट से शराब पीते और व्यभिचार करते हैं। असल बात यह कि ऐसे अवसरों पर बुद्धि मारी जाती है। वह स्वभाव के पीछे पीछे चलनेवाली होती है। ·· प्रलोभन के हमले से बचने का एक मात्र प्रबल सहारा यही है कि मनुष्य अपनी सदाचार-नीति में दृढ़ विश्वास रखे।·········जो श्रद्धा बुद्धि से परे है वही अनन्तकाल से हमारा एक मात्र आधार रही है ······मेरी श्रद्धा ने मुझे कई बार गिरते-गिरते बचाया है और वही अब भी बचा रही है। इसने मुझे कभी धोखा नहीं दिया। इससे और भी किसी को धोखा हुआ हो ऐसा जानने में नहीं आया।"

—ह० से० ३०।१२।'३९; पृष्ठ ३६८]

प्रेम-तत्त्व

"···प्रेम-तत्व ही संसार पर शासन करता है। मृत्यु से घिरा रहते हुए भी जीवन अटल रहता है। विनाश के निरन्तर जारी रहते हुए भी यह विश्व बराबर चलता ही रहता है। असत्य पर सत्य सदा जय पाता है। प्रेम घृणा को जीत लेता है। ईश्वर शैतान पर सदैव विजय पाता है।"

—यं० इं०। हिं० न० जी०, २६।१०।'२४; पृष्ठ ८४]

प्रेम-बन्धन

"···हर एक धर्म पुकार-पुकारकर कहता है कि प्रेम की ग्रन्थि से ही जगत् बँधा हुआ है। विद्वान लोग यह सिखाते हैं कि यदि प्रेम बन्धन न हो तो पृथ्वी का एक-एक परमाणु अलग-अलग हो जाय और पानी में भी यदि स्नेह न हो तो उसका एक-एक बिन्दु अलग-अलग हो जाय। इसी प्रकार यदि मनुष्य-मनुष्य के बीच प्रेम न होगा तो हम

मृतप्राय ही होंगे ।"

—हिं० न० जी०, ५।३।'२५; पृष्ठ २४१, पोर बन्दर के व्याख्यान से]

प्रेम

"...प्रेम कभी दावा नहीं करता, वह तो हमेशा देता है। प्रेम हमेशा कष्ट सहता है। न कभी झुँझलाता है, न बदला लेता है।"

—यं० इं०। हिं० न० जी० ९।७।'२५; पृष्ठ ३८२]

शुद्ध बनाम विकृत प्रेम

"...जहाँ शुद्ध प्रेम होता है वहाँ अधीरता को स्थान ही नहीं होता। शुद्ध प्रेम देह का नहीं, आत्मा का ही सम्भव है। देह का प्रेम विषय ही है।...आत्म-प्रेम को कोई बन्धन बाधा-रूप नहीं होता है परन्तु उस प्रेम में तपश्चर्या होती है और धैर्य तो इतना होता है कि मृत्यु-पर्यन्त वियोग रहे तो भी क्या हुआ ?"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, ८।४।'२६; पृष्ठ २६७]

एकपक्षीय प्रेम

"...प्रेम यदि एक पक्षीय भी हो तो वहाँ सर्वांश में दुःख नहीं हो सकता।"

—आत्मकथा। सस्ता हिन्दी संस्करण १९३९, अध्याय ४; पृष्ठ १३]

शुद्ध प्रेम

"...शुद्ध प्रेम के लिए दुनिया में कोई बात असम्भव नहीं।"

—आत्मकथा। सस्ता हिन्दी संस्करण, १९३९; अध्याय ४; पृष्ठ १४]

प्रेम

"...प्रेम से भरा हृदय अपने प्रेमपात्र की भूल पर दया करता है

और खुद घायल हो जाने पर भी उससे प्यार करता है। अकेले सुख का साथी प्रेमी नहीं होता।"

—यं० इं० । हिं० न० जी०, २४।३०।'२९; पृष्ठ ७४]

हृदयगत प्रेम का स्वरूप

"...अगर हमारा प्रेम हृदयगत चीज है तो हमारा रास्ता तलवार का नहीं है। गाली का उत्तर हम गाली से नहीं दे सकते और न घूँसे का घूँसे से। प्रेम की सच्ची परीक्षा तो यह है कि हम मरकर दूसरों के अप्रेम का उत्तर दें।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, डेलांग, २६।३।'३८]

प्रेम सौदा नहीं है

"विश्वास के बदले विश्वास या प्रेम के जवाब में प्रेम विश्वास या प्रेम कहलाने लायक नहीं। सच्चा प्रेम वह है जो दुश्मन के सामने भी टिके।"

—पूना, २४-२-'४६ 'हरिजन'; ह० से० ३।३।'४६]

× × ×

"...जो प्रेम पशुवृत्ति की तृप्ति पर आश्रित है वह आखिर स्वार्थ ही है और थोड़े से भी दबाव से वह ठण्डा पड़ सकता है।"

—यं० इं० । हिं० न० जी०, १६।९।'२६; पृष्ठ ३६]

उन्मुक्त प्रेम

"गुप्त या खुले स्वतन्त्र प्रेम में मेरा विश्वास नहीं है। उन्मुक्त प्रेम को मैं कुत्तों का प्रेम समझता हूँ। और गुप्त प्रेम में तो, इसके अलावा कायरता भी है।"

—ह० से० ४।११।'३९; पृष्ठ ३०३]

वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि

"प्रेम की मेरी कल्पना यह है कि वह कुसुम से भी कोमल और वज्र से भी कठोर हो सकता है।"

—ह० से० १३।१।'४०; पृष्ठ ३८६]

प्रेम निर्भय है

"... तुम्हारे डर में भी तुम्हारा अभिमान है; इसमें हिंसा है। जहाँ प्रेम है, तहाँ डर को स्थान ही कहाँ है?"

—ह० से०, २७।७।'४०; पृष्ठ २०६; श्री प्यारेलाल के लेख से]

विकार

"...विकार आग की तरह है। वह मनुष्य को घास की तरह जलाता है। घास के ढेर में एक तिनके को सुलगा दीजिये, बस सारा ढेर सुलग जायगा। हर एक तिनके को अलहदा-अलहदा जलाने का कष्ट हमें नहीं उठाना पड़ता। एक के मन में विकार उत्पन्न हुआ तो उसका स्पर्श दूसरे को होता है। दम्पती में एक के विकार उत्पन्न होने पर जो दूसरा निर्विकार रह सकता हो उसे मैं हजार बार प्रणिपात करता हूँ।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, ९।७।'२४; पृष्ठ ३८५]

दुर्भावना

"दुर्भावना को मैं मनुष्यत्व का कलङ्क मानता हूँ।"

—यं० इं। हिं० न० जी०, १२।९।'२९; पृष्ठ २९]

क्रोध = शराब + अफ़ीम

"...क्रोध के लक्षण शराब और अफ़ीम दोनों से मिलते हैं। शराबी की भाँति क्रोधी मनुष्य भी पहले आवेशवश लाल-पीला होता

है। फिर आवेश के मन्द होने पर भी क्रोध न घटा तो वह अफ़ीम का काम करता है और मनुष्य की बुद्धि को मन्द बना देता है अफ़ीम की तरह वह दिमाग को कुरेद डालता है। क्रोध के लक्षण क्रमशः सम्मोह, स्मृति-भ्रंश, और बुद्धिनाश माने गये हैं।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० २४।१०।'२९; पृष्ठ ७७]

क्रोध

"गुस्सा एक प्रकार का क्षणिक पागलपन है। जो लोग जान बूझ कर या बिना जाने इसके वश में अपने को होने देते हैं उन्हीं को इसका नतीजा भुगतना पड़ता है।"

—शिमला जाते हुए ट्रेन में। २५-९-'४०; ह० से० ५।१०।'४०; पृष्ठ २७९]

झूठ

"...सबसे अच्छा तो यही है कि झूठ का कोई जवाब ही न दिया जाय। झूठ अपनी मौत मर जाता है। उसकी अपनी कोई शक्ति नहीं होती। विरोध पर वह फलता-फूलता है।..."

—ह० से०, २२।६।'४०; पृष्ठ १५३]

आतङ्क

"आतङ्क सबसे ज्यादा निःसत्व करने वाली अवस्था है जिसमें कोई हो सकता है।"

—सेवाग्राम, ४।६।'४०; ह० से ८।६।'४०; पृष्ठ १३७]



: ५ :

गांधी-प्रतिपादित मार्ग के व्रत

यज्ञमय जीवन

"हमें अपना जीवन यज्ञमय बनाना होगा। ऐसी कोई चीज नहीं, जिसे तपस्या के जरिये इंसान पा न सके।"

—नई दिल्ली। ह० से० १५।१०।'४६]

यज्ञ का मर्म

"......यज्ञ करनेवाला मनुष्य दूसरे की दया का भूखा नहीं होता। उसकी स्थिति दयाजनक नहीं,—स्तुत्य है। जो अनिच्छा या विषादपूर्वक किया जाता है वह यज्ञ नहीं। बलिदान के साथ तो उल्लास, हर्ष, उत्साह होता है। बलिदान करने वाला तो इच्छा करता है कि मुझे अधिक त्याग का सामर्थ्य प्राप्त है। वह त्याग से दुखी नहीं होता, क्योंकि उसके लिए त्याग में सुख है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, २३।११।'२४; पृष्ठ ११८]

संकल्प

"...... संकल्प तो संकल्पकर्ता रूपी नाविक के लिए दीपक रूप है। दीपक की ओर लक्ष्य रखे तो अनेक तूफानों में से गुजरते हुए भी मनुष्य उबर सकता है। परन्तु जिस प्रकार वह दीपक यद्यपि तूफान को शान्त नहीं कर सकता तो भी वह उस तूफान के बीच में उसके सुरक्षित रूप से निकल जाने की शक्ति प्रदान करता है उसी प्रकार मनुष्य का संकल्प हृदय रूपी समुद्र में उछाल भरती हुई तरंगों से बचानेवाली प्रचण्ड शक्ति है।"

—हिं० न० जी०, ५।८।'२६; पृष्ठ ४०६]

व्रत

"...... व्रत बन्धन नहीं, स्वतन्त्रता का द्वार है।......व्रत-बन्धन से पृथक रहकर मनुष्य मोह में पड़ता है। व्रत से अपने को बाँधना मानो व्यभिचार से छूटकर एक पत्नी से सम्बन्ध रखना है।"

—हिं० आ० क०। भाग ३, अध्याय ७; पृष्ठ २२७। सस्ता संस्करण,१९३९]

जीवन में प्रतिज्ञा का महत्व

"......प्रतिज्ञाहीन जीवन बिना नींव का घर है, अथवा यों कहिये कि कागज़ का जहाज़ है।.....प्रतिज्ञा के बल पर ही यह संसार टिका हुआ है।......प्रतिज्ञा न लेने का अर्थ अनिश्चित या डाँवाडोल रहना है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०,१५।८।'२९; पृष्ठ ४११]

शान्ति और ब्रह्मचर्य

"शान्ति भी एक सूक्ष्म वीर्य है। उसका सञ्चय करने वाला भी प्रौढ़ ब्रह्मचारी होता और तेजस्वी हो जाता है। हम लोगों ने ब्रह्मचर्य की व्याख्या को केवल स्थूल रूप दे दिया है और जो लोग प्रतिक्षण क्रोध करते रहते हैं उन्हें दोषी मानना छोड़ दिया है। जिस प्रकार स्थूल ब्रह्मचर्य का पालन शरीर-सुख के लिए आवश्यक है, उसी प्रकार आध्यात्मिक ब्रह्मचर्य की भी आवश्यकता है।"

—हिं० न० जी०। वर्ष १, अङ्क १।'२१]

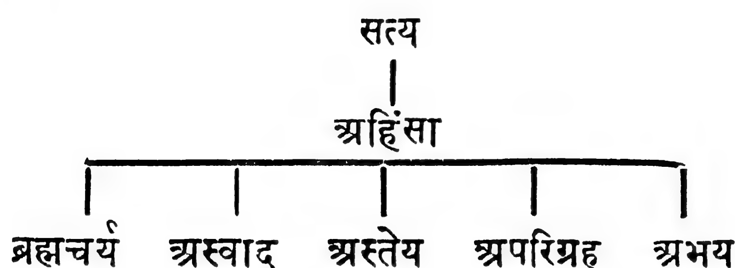
परम सत्य

"...परम सत्य अकेला खड़ा होता है। सत्य साध्य है; अहिंसा साधन है।"

—यरवदा जेल; १९।८।'३०]

सत्य व्रतों का मूल है

"...सभी व्रत...सत्य के गर्भ में स्थित हैं। वे इस प्रकार दिखाये जा सकते हैं:—



इत्यादि जितना बढ़ायें उतना।"

—यरवदा जेल; १९।८।'३०]

ब्रह्मचर्य

"......ब्रह्मचर्य का अर्थ है मन, वचन और काया से समस्त इन्द्रियों का संयम।......जबतक अपने विचारों पर इतना क़ब्ज़ा न हो जाय कि अपनी इच्छा के बिना एक भी विचार न आने पावे तबतक वह सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य नहीं। जितने भी विचार हैं वे सब एक तरह के विकार हैं। उनको वश में करने के मानी हैं मन को वश में करना। और मन को वश में करना वायु को वश में करने से भी कठिन है। इतना होते हुए भी यदि आत्मा कोई चीज है तो फिर यह भी साध्य होकर रहेगा।..."

—हिं० आ० क०: भाग ३, अध्याय ८; पृष्ठ २३१-२३२। सस्ता संस्करण। १९३९]

× × ×

"......ब्रह्मचर्यहीन जीवन मुझे शुष्क और पशुवत् मालूम होता है। पशु स्वभावतः निरङ्कुश है, परन्तु मनुष्यत्व इसी बात में है कि

मनुष्य स्वेच्छा से अपने को अङ्कुश में रक्खे। ब्रह्मचर्य की जो स्तुति धर्मग्रन्थों में की गई है उसमें पहले मुझे अत्युक्ति मालूम होती थी। परन्तु अब दिन-दिन यह अधिकाधिक स्पष्ट होता जाता है कि वह बहुत ही उचित और अनुभवसिद्ध है।"

—हिं० आ० क० भाग ४, अध्याय २५; पृष्ठ ३५५; स० संस्करण १९३५]

× × ×

"विषय मात्र का निरोध ही ब्रह्मचर्य है।"

—यरवदा जेल ५।८।'३०]

× × ×

"......सत्याग्रह-सेनापति के शब्द में ताक़त होनी चाहिये,—वह ताक़त नहीं जो असीमित अस्त्र-शस्त्रों से प्राप्त होती है, बल्कि वह जो जीवन की शुद्धता, दृढ़ जागरूकता और सतत आचरण से प्राप्त होती है। यह ब्रह्मचर्य का पालन किये बग़ैर असम्भव है। इसका इतना सम्पूर्ण होना आवश्यक है जितना कि मनुष्य के लिए सम्भव है। ब्रह्मचर्य का अर्थ यहाँ खाली दैहिक आत्म-संयम या निग्रह ही नहीं है। इसका तो इससे कहीं अधिक अर्थ है। इसका मतलब है सभी इन्द्रियों पर पूर्ण नियमन। इस प्रकार अशुद्ध विचार भी ब्रह्मचर्य का भङ्ग है, और यही हाल क्रोध का है। सारी शक्ति उस वीर्य-शक्ति की रक्षा और ऊर्ध्वगति से प्राप्त होती है जिससे कि जीवन का निर्माण होता है। अगर इस वीर्य-शक्ति का, नष्ट होने देने के बजाय, सञ्चय किया जाय, तो यह सर्वोत्तम सृजनशक्ति के रूप में परिणत हो जाता है। बुरे वा अस्त-व्यस्त, अव्य-वस्थित, अवाञ्छनीय विचारों से भी इस शक्ति का बराबर, और अज्ञात रूप से भी, क्षय होता रहता है। और चूँकि विचार ही सारी वाणी

और क्रियाओं का मूल है, इसलिए वे भी इसी का अनुसरण करती हैं। इसीलिए, पूर्णतः नियन्त्रित विचार खुद ही सर्वोच्च प्रकार की शक्ति है और स्वतः क्रियाशील बन सकता है। मूक रूप में की जानेवाली हार्दिक प्रार्थना का मुझे तो यही अर्थ मालूम पड़ता है। अगर मनुष्य ईश्वर की मूर्ति का उपासक है तो उसे अपने मर्यादित क्षेत्र के अन्दर किसी बात की इच्छा भर करने की देर है, जैसा वह चाहता है वैसा ही बन जाता है। जिस तरह चूनेवाले नल में भाफ़ रखने से कोई शक्ति पैदा नहीं होती उसी प्रकार जो अपनी शक्ति का किसी भी रूप में क्षय होने देता है उसमें इस शक्ति का होना असम्भव है।"

—ह० से०, २३।७।'३८; पृष्ठ १८०]

ब्रह्मचर्य का आचरण

"...ब्रह्मचारी रहने का यह अर्थ नहीं कि मैं किसी स्त्री को स्पर्श न करूँ, अपनी बहिन का स्पर्श न करूँ। ब्रह्मचारी होने का अर्थ यह है कि स्त्री का स्पर्श करने से किसी प्रकार का विकार न उत्पन्न हो जिस तरह कि कागज को स्पर्श करने से नहीं होता। मेरी बहिन बीमार हो और उसकी सेवा करते हुए, उसका स्पर्श करते हुए ब्रह्मचर्य के कारण मुझे हिचकना पड़े तो वह ब्रह्मचर्य तीन कौड़ी का है। जिस निर्विकार दशा का अनुभव हम मृत शरीर को स्पर्श करके कर सकते हैं उसी का अनुभव जब हम किसी सुन्दरी युवती का स्पर्श करके कर सकें तभी हम ब्रह्मचारी हैं।"

—हिं० न० जी० २६।२।'२५; पृष्ठ २३३, भादरण में एक अभिनन्दनपत्र के उत्तर में]

सेवा के लिए ब्रह्मचर्य

"......देश-सेवा के लिए जो लोग सत्याग्रही होना चाहते हैं उन्हें

ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए, सत्य का सेवन तो करना ही चाहिए और निर्भय बनना चाहिए।"

—१९०८; 'हिन्द स्वराज्य']

ब्रह्मचर्य और आस्तिकता

"मुझे यह बात कहनी ही होगी कि ब्रह्मचर्य-व्रत का तबतक पालन नहीं हो सकता जबतक कि ईश्वर में, जो कि जीता-जागता सत्य है, अटूट विश्वास न हो।"

—ह० से० २५।४।'३६; पृष्ठ ७६]

अस्वाद

"अस्वाद का अर्थ होता है स्वाद न लेना। स्वाद माने रस।... किसी भी वस्तु को स्वाद के लिए चखना (अस्वाद) व्रत का भङ्ग है।"

—यरवदा जेल, १२।८।'३०]

स्वाद का उद्गम

"स्वाद का सच्चा स्थान जीभ नहीं बल्कि मन है,"

—हिन्दी आत्मकथा, भाग १, अध्याय १७, पृष्ठ ६४, सस्ता संस्करण, १९३९]

अस्तेय

"जिस चीज की हमें जरूरत नहीं है, उसे जिसके अधिकार में वह हो उसके पास से उसकी आज्ञा लेकर भी लेना चोरी है। अनावश्यक एक भी वस्तु न लेनी चाहिए।......मन में हमने किसी की वस्तु प्राप्त करने की इच्छा की या उसपर जूठी नज़र डाली तो वह चोरी है।"

—यरवदा जेल १९।८।'३४]

अपरिग्रह : आत्यन्तिक

"......आदर्श आत्यन्तिक अपरिग्रह तो उसी का होगा जो मन से

और कर्म से दिगम्बर है। मतलब, वह पक्षी की भाँति बिना घर के, बिना वस्त्रों के और बिना अन्न के विचरण करेगा।……इस अवधूत अवस्था को तो विरले ही पहुँच सकते हैं।"

—यरवदा जेल; २६।८।'३०]

अपरिग्रह : सच्ची सभ्यता का लक्षण

"सच्चे सुधार का, सच्ची सभ्यता का लक्षण परिग्रह बढ़ाना नहीं है, बल्कि उसका विचार और इच्छापूर्वक घटाना है। ज्यों-ज्यों परिग्रह घटाइए, त्यों-त्यों सच्चा सुख और सच्चा सन्तोष बढ़ता है, सेवा-शक्ति बढ़ती है।"

—यरवदा जेल; २६।८।'३०]

परिग्रह

"……वास्तव में परिग्रह मानसिक वस्तु है। मेरे पास घड़ी है, रस्सी है और कच्छ (लँगोटी) है। इनके अभाव में यदि मुझे क्लेश होता है तो मैं परिग्रही हूँ। यदि किसी को बड़े कम्बल की जरूरत हो तो वह उसे रक्खे, पर खो जाने पर क्लेश न करे तो वह अपरिग्रही है।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, सावली ३ मार्च,' ३६]

सत्यान्वेषी के लिए अपरिग्रह अनिवार्य है

"परिग्रह का अर्थ है भविष्य के लिए प्रबन्ध करना। सत्यान्वेषी, प्रेमधर्म का अनुयायी, कल के लिए किसी चीज़ का संग्रह नहीं कर सकता।"

—सर्वोदय : नवम्बर,'३८; पृष्ठ ५ के नीचे उद्धरण]

अभय

"अभय व्रत का सर्वथा पालन लगभग अशक्य है। भय मात्र

से मुक्ति तो, जिसे आत्मसाक्षात्कार हुआ हो वही पा सकता है। अभय मोह-रहित अवस्था की पराकाष्ठा है।"

—यरवदा जेल; २।९।'३०]

स्वदेशी

"......स्वदेशी तो शाश्वत धर्म है।...स्वदेशी आत्मा है, खादी इस युग के लिए उसका शरीर।......स्वदेशी एक सेवा-धर्म है।... स्वदेशी में स्वार्थ नहीं, शुद्ध परमार्थ है... ।"

—नवजीवन। हिं० न० जी, २३।६।'२७; पृष्ठ ३५७]

× × ×

"स्वदेशी यह नहीं है कि अपने गढ़े में डूब मरें, किन्तु स्वदेशी के मानी हैं अपने गढ़े को सार्वजनिक समुद्र में होम करना..."

—नवजीवन। हिं० न० जी०, २।२।'२८; पृष्ठ १९०]

स्वदेशी : आत्यन्तिक

"आत्मा के लिए स्वदेशी का अन्तिम अर्थ सारे स्थूल सम्बन्धों से आत्यन्तिक मुक्ति है। देह भी उसके लिए परदेशी है।"

—यरवदा जेल; ७।१०।'३०]

नम्रता

"नम्रता का अर्थ है अहम्भाव का आत्यन्तिक क्षय।"

—यरवदा जेल; ७।१०।'३०]

शरीर-श्रम

"कायिक श्रम मनुष्य मात्र के लिए अनिवार्य है...। रोटी के लिए प्रत्येक मनुष्य को हाथ-पैर हिलाने चाहिएँ, यह ईश्वरीय नियम है।... मालिक मजदूर का भेद सर्वव्यापक हो गया है और गरीब अमीर से ईर्ष्या करता है। यदि सब अपनी रोटी के लिए खुद मिहनत करें तो

ऊँच नीच का भेद दूर हो जाय।......जिसे अहिंसा का पालन करना है, सत्य की आराधना करनी है, ब्रह्मचर्य को स्वाभाविक बनाना है उसके लिए तो कायिक श्रम रामबाण है।"

—यरवदा जेल; ६।९।'३०]

आलस्य

"....जो सत्य और अहिंसा का उपासक है, भारत और जीवमात्र की सेवा करना चाहता है वह सुस्त नहीं रह सकता। जो समय का नाश करता है वह सत्य, अहिंसा और सेवा का भी नाश करता है।...."

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, सावली, ३ मार्च,'३६]

× × ×

"आलस्य एक प्रकार की हिंसा है।"

—तृतीय गांधी सेवा संघ सम्मेलन, हुदली, १७ अप्रैल, '३७]

अस्पृश्यता

"....अस्पृश्यता स्वयं एक असत्य है। असत्य का समर्थन कभी सत्य से नहीं हुआ, जैसे कि सत्य का समर्थन असत्य से नहीं हो सकता। अगर होता है तो वह स्वयं असत्य हो जाता है।"

—ह० से० २३।९।'३९; पृष्ठ २५४]

धार्मिक सहिष्णुता

"......इस समय आवश्यकता इस बात की नहीं है कि सब का धर्म एक बना दिया जाय बल्कि इस बात की है कि भिन्न-भिन्न धर्मों के अनुयायी और प्रेमी परस्पर आदर भाव और सहिष्णुता रखें। हम सब धर्मों को मृतवत् एक सतह पर लाना नहीं चाहते। बल्कि चाहते हैं विविधता में एकता। पूर्व परम्परा तथा आनुवंशिक संस्कार, जलवायु और दूसरी आसपास की बातों के प्रभाव को उन्मूलित करने का प्रयत्न

केवल असफल ही नहीं बल्कि अधर्म्य होगा। आत्मा सब धर्मों की एक है, हाँ वह भिन्न-भिन्न आकृतियों में मूर्तिमान होती है। और यह काल के अन्त तक कायम रहेगी। इसलिए जो बुद्धिमान हैं वे तो ऊपरी कलेवर पर ध्यान न देकर भिन्न-भिन्न आकृतियों में उसी एक आत्मा का दर्शन करेंगे।"

—१९।९।२।४। यं० इं०। हिं० न० जी० २८।९।'२४; पृष्ठ ५३-५४]

सर्वधर्म सम भाव

"...सभी धर्म ईश्वरदत्त हैं परन्तु वे मनुष्य-कल्पित होने के कारण ...अपूर्ण हैं। ईश्वरदत्त धर्म अगम्य है। मनुष्य उसे भाषा में प्रकट करता है। उसका अर्थ भी मनुष्य लगाता है। किसका अर्थ सच्चा माना जाय? सब अपनी-अपनी दृष्टि से, जब तक वह दृष्टि बनी रहे, सच्चे हैं। परन्तु सभी का झूठ होना भी असम्भव नहीं है। इसीलिए हमें सब धर्मों के प्रति समभाव रखना चाहिए। इससे अपने धर्म के प्रति उदासीनता नहीं उत्पन्न होती, परन्तु स्वधर्म-विषयक प्रेम अन्ध प्रेम न रहकर ज्ञानमय हो जाता है।...सब धर्मों के प्रति समभाव आनेपर ही हमारे दिव्य चक्षु खुल सकते हैं। धर्मान्धता और दिव्यदर्शन में उत्तर-दक्षिण जितना अन्तर है।"

—यरवदा जेल; २३।९।'३०]

परस्पर-सहिष्णुता: आचार-धर्म का सुवर्ण सूत्र

"आचारधर्म का सुवर्णसूत्र है परस्पर-सहिष्णुता। क्योंकि यह असम्भव है कि हम सब एक ही तरह विचार करें। हम तो अपने विभिन्न दृष्टिकोणों से सत्य को अंशतः ही देख सकते हैं। सद्सद्विवेक-बुद्धि सबके लिए एक ही वस्तु नहीं होती। इसलिए वह व्यक्तिगत

आचरण के लिए बहुत अच्छा पथप्रदर्शक ज़रूर है। लेकिन उस आचार को बलपूर्वक सब लोगों पर लादना व्यक्तिमात्र के बुद्धि-स्वातन्त्र्य में अक्षम्य और असह्य हस्तक्षेप है।"

—'सर्वोदय', नवम्बर, '।३८।; पृष्ठ २२ के नीचे का उद्धरण]

उपवास का रहस्य

"···मैं जानता हूँ कि मानसिक अवस्था ही सब कुछ है। जैसे, प्रार्थना किसी पक्षी के कलरव की तरह भक्तिशून्य हो सकती है वैसे ही उपवास भी शारीरिक कष्ट के अतिरिक्त कुछ नहीं हो सकता। ··· ·· जैसे प्रार्थना के केवल गायन से कण्ठ अच्छा हो सकता है वैसे ही उपवास से भी देह-शुद्धि हो सकती है। किन्तु आत्मा पर तो दोनों का असर कुछ नहीं होगा।

"किन्तु जब पूर्ण आत्म-प्रकाशन के हेतु उपवास किया जाता है, जब शरीर पर आत्मा का प्रभुत्व प्रस्थापित करने के हेतु उपवास काम में लाया जाता है तब उसका मनुष्य की प्रगति में अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग हो जाता है।"

—यं० इं० । हिं न० जीं० १५।२।'२२; पृष्ठ २१५]

उपवास

"उपवास सत्याग्रह के शस्त्रागार में एक महान् शक्तिशाली अस्त्र है। इसे हर कोई नहीं चला सकता। केवल शारीरिक योग्यता इसके लिए कोई योग्यता नहीं। ईश्वर में जीती-जागती श्रद्धा न हो तो दूसरी योग्यताएँ बिल्कुल निरुपयोगी हैं। विचार-रहित मनोदशा या निरी अनुकरण वृत्ति से वह कभी नहीं होना चाहिए। वह तो अपनी अन्तरात्मा की गहराई में से उठना चाहिए।"

—ह० से०; २५।३।'३९; पृष्ठ ४४]

: ६ :

साधना-पथ

साध्य-साधन सम्बन्ध

"...साधन बीज है और साध्य वृक्ष। इसलिए जो सम्बन्ध बीज और वृक्ष में है, वही सम्बन्ध साधन और साध्य में है। शैतान की उपासना करके मैं ईश्वर-भजन का फल नहीं पा सकता।"

—१९०८, 'हिंद स्वराज्य']

साधनों में क्रान्ति

"...कुछ लोग मुझे अपने जमाने का सबसे बड़ा क्रान्तिकारी मानते हैं। शायद यह गलत भी हो, लेकिन फिर भी मैं अपने आपको एक क्रान्तिकारक—शान्तिपरायण क्रान्तिकारक तो मानता ही हूँ। कहा जाता है कि आखिर साधन तो साधन ही है। मैं कहूँगा कि अन्त में साधन ही सब कुछ है। जैसा साधन तैसा साध्य। साध्य और साधन में कोई अभेद्य दीवार नहीं है। जिस अनुपात में साधन का अनुष्ठान होगा ठीक उसी अनुपात में ध्येय-प्राप्ति होगी। यह नियम निरपवाद है।"

—'सर्वोदय'; अक्तूबर,'३८, अन्तिम कवर का उद्धरण]

साध्य-साधन का अभेद

"अहिंसा सत्य की गवेषणा का अधिष्ठान है। अहिंसा और सत्य एक दूसरे के साथ इस तरह गुथे हुए हैं कि उनको खोलकर अलग-अलग करना बहुत मुश्किल है। वे सिक्के की दो बाजुओं के समान हैं, बल्कि यों कहिये कि वे एक धातु की गोल, चिकनी और बिना छाप-वाली चक्री की दो बाजुएँ हैं। कौन कह सकता है कि उनमें से कौन-सी सीधी और कौन-सी उलटी है? फिर भी अहिंसा साधन है और

सत्य साध्य। साधन का साधनत्व इसी में है कि वह अव्यवहार्य न हो। इसलिए अहिंसा हमारा परम धर्म है। यदि हम साधन की रक्षा करें तो आज नहीं तो कल हम साध्य को प्राप्त कर ही लेंगे।…"

—'सर्वोदय', नवम्बर, '३८; पहले कवर का उद्धरण]

दिव्य जीवन-धर्म

"मेरा यह अनुभव है कि विनाश के बीच भी जीवन कायम रहता है। इसलिए विनाश से बढ़कर कोई कुदरती कानून जरूर है। ऐसे कानून के आधार पर ही सुव्यवस्थित समाज का अस्तित्व समझ में आ सकता है, और जीवन सुसह्य हो सकता है। ज्यों ज्यों मैं इस कानून पर अमल करता हूँ, त्यों-त्यों मुझे जिन्दगी में मजा आता है, सृष्टि की रचना में आनन्द आता है। उससे मुझे जो शान्ति मिलती है, और प्रकृति के गूढ़ भाव समझने की जो शक्ति प्राप्त होती है, उसका वर्णन करना मेरी शक्ति से परे है।…

जगत् का नियमन प्रेम-धर्म करता है। मृत्यु के होते हुए भी जीवन मौजूद ही है। प्रति क्षण विध्वंस चल रहा है। परन्तु फिर भी विश्व तो विद्यमान ही है। सत्य असत्य पर विजय प्राप्त करता है, प्रेम द्वेष को परास्त करता है, ईश्वर निरन्तर शैतान के दाँत खट्टे करता है।

—'सर्वोदय'; वर्ष १, अङ्क ८, चतुर्थ आवरण पृष्ठ]

आध्यात्मिक उन्नति : व्यक्तिगत और सार्वजनिक

"मेरा यह विश्वास ही नहीं है जब कि उसके पड़ोसी दुःख में डूबे हुए हैं किसी एक व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है। मनुष्य मात्र की—अतएव प्राणि मात्र की—मूलभूत एकता में मेरा विश्वास है। इसलिए मैं तो यह मानता हूँ कि अगर एक मनुष्य की

आध्यात्मिक उन्नति होती है तो उसके साथ सारी दुनिया की उन्नति होती है, और एक व्यक्ति का पतन होता है तो उस अंश में संसार का भी पतन होता है। सारी मनुष्य जाति एक है। ईश्वर की दृष्टि में सभी मनुष्य समान हैं।"

—सर्वोदय, वर्ष १ अङ्क ७; पृष्ठ ३१]

मनुष्य और पशु में अन्तर

"... हमारा मानव अवतार इसलिए हुआ कि हमारे अन्तर में जो ईश्वर बसता है, उसका साक्षात्कार हम कर सकें। पशुओं में और हममें असली अन्तर यही है।...मनुष्य के शरीर के साथ हमें मनुष्य का बल यानी अहिंसा का बल भी मिला है। हम आत्मा की गूढ़ शक्तियों का दर्शन कर सकते हैं। इसी में हमारी मनुष्यता है। मनुष्य का स्वभाव अहिंसक है।...ईश्वर का साक्षात्कार करने का अर्थ यह है कि हम भूतमात्र में उसे देखें अर्थात् भूतमात्र के साथ हम ऐक्य-साधन करें। यह मनुष्य का विशेष अधिकार है, और यही मनुष्य और पशु के बीच भेद है।..."

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, डेलांग; २५ मार्च,' ३८]

दीन-सेवा में ईश्वर-दर्शन

"...दृश्य ईश्वर क्या है? गरीब की सेवा।"

—हिं० न० जी० ५।२।'२५; पृष्ठ २०९। महिला परिषद् के भाषण से]

सेवा और सत्ता

"...अपनी शुद्ध सेवा के बल पर जो पद और सत्ता हमें मिलती है वह हमारे हृदय को उच्च बनाती है। जो सत्ता सेवा के नाम पर केवल बहुमत के बल पर प्राप्त की जाती है, वह केवल भ्रमजाल है।"

—यं० इं०। हिं० न० जी०, १४।९।'२४; पृष्ठ ३८]

"....सेवेच्छु के लिए न सत्ता, न पद, न शान दरकार होती है।"

—यं० इं०। हिं० न० जी०, २६।१०।'२४; पृष्ठ ८४]

सेवा मेरा धर्म-सिद्धान्त है

"मेरा धर्म-सिद्धान्त है ईश्वर की, और इसलिए मनुष्य जाति की सेवा। पर एक भारतवासी के नाते मैं भारत की और एक हिन्दू के नाते भारतीय मुसलमानों की सेवा न करूँ तो न ईश्वर की सेवा कर सकता हूँ, न मनुष्य जाति की। ऐच्छिक सेवा का अर्थ है शुद्ध प्रेम।"

—यं० इं०। हिं० न० जी०, २६।१०।'२४; पृष्ठ ८४]

अधिकार और कर्तव्य

"....प्रत्येक धर्मपालन के गर्भ में अधिकार रहता है, और प्रत्येक अधिकार के प्रयोग से कर्तव्य पैदा होता है। इस तरह अधिकार और धर्म—कर्तव्य का चक्र चलता ही रहता है।"

—नवजीवन, हिं० न० जी० २९।८।'२९: पृष्ठ १३]

व्यक्तिगत सेवा की मर्यादा

[प्रश्न—सेवकों की अपनी व्यक्तिगत सेवा की मर्यादा क्या हो ?]

"इसका बड़ा अच्छा नियम तो 'त्यजदेकं कुलस्यार्थे'* इस श्लोक में मिल जाता है। व्यक्ति की सेवा वहीं तक करें, जहाँ तक समाज की सेवा का विरोध न हो। मेरा लड़का बीमार है, माँ बीमार है, या पत्नी बीमार है, और मुझे लखनऊ प्रमुख बनने जाना है। तो मैं लड़के को, माता को, और पत्नी को भाई आदि के सुपुर्द करके चला जाऊँगा।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, सावली, ४ मार्च, '३६]

*त्यजदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत॥

सेवा में विवेक

"...सेवा भी उसकी करो जिसे सेवा की जरूरत है। जिसे सेवा की ज़रूरत नहीं है उसकी सेवा करना ढोंग है। वह तो दम्भ है।"

सर्वग्राही सेवा

"लोग चाहे जो कहें, सेवा का कोई सम्प्रदाय नहीं बन सकता। वह तो सब के लिए है।...हम तो तीस कोटि के साथ अद्वैत सिद्ध करना चाहते हैं।..."

—गां० से० सं० सम्मेलन, मालिकान्दा (बंगाल) २१।२।'४०]

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः

"जो जीवन का लोभ छोड़कर जाता है, वही जीवित रहता है।"

—सेवाग्राम २३।२।'४२। 'ह० बं०'। ह० से०, १।३।'४२; पृष्ठ ६०]

विचार और आचार

"...मैं मानसिक पहलू को ज्यादा महत्व देता हूँ। आदमी जैसा सोचता है, वैसा बनता है। विचार जबतक आचरण के रूप में प्रकट नहीं होता, वह कभी पूर्ण नहीं बनता। आचरण आदमी के विचार को मर्यादित करता है। जहाँ विचार और आचार के बीच पूरा-पूरा मेल होता है वहीं जीवन भी पूर्ण और स्वाभाविक बनता है।"

—'हरिजन'। ह० से० ७।४।'४६]

मानव सभ्यता की समस्या

"...लोगों के चाल-चलन में खराबी पैदा हुई है, जब कि उनके विचारों में बहुत तरक्की हुई है। आचरण विचार की बराबरी में खड़ा नहीं हो सकता क्योंकि उसकी गति विचार की गति से मन्द है। आज इन्सान यह कहने लगा है कि 'यह ग़लत है, वह गैरवाजिब है।' पहले ऐसा नहीं था। उस वक्त तो मनुष्य अपने आचरण का बचाव करता

था। आज वह अपने या अपने पड़ोसी के आचरण का बचाव नहीं करता। जो गलत है, उसको वह सुधारना चाहता है लेकिन वह नहीं जानता कि उसका आचरण ही उसे धोखा दे रहा है। आचार और विचार के बीच का यह विरोध ही उसे जकड़े हुए है। उसका आचरण शुद्ध तर्क के अनुसार नहीं होता।"

—'हरिजन'। ह० से० ७।१।'४६]

विचार की शक्ति

"विचार दो तरह के होते हैं—निकम्मे और सक्रिय। इन्सान के दिमाग़ में सैकड़ों निकम्मे विचार घूमते रह सकते हैं। मगर उनकी कोई कीमत नहीं। वे अंडे के कभी न फलने वाले बीज की तरह हैं। लेकिन एक शुद्ध सक्रिय विचार, जो दिल की गहराई से और इन्सान की अपनी समूची ताक़त के साथ बाहर निकलता है बहुत पुरअसर बन जाता है और एक फलनेवाले बीज की तरह काम करता है।"

—नई दिल्ली २८।१०।'४६। ह० से० १०।११।'४६]

आचरण का बल

"......आचरण का बल क्या है? रामनाम तो एक ही है लेकिन एक आदमी रामनाम निकालता है तो असर पड़ता है, दूसरे का नहीं इसका क्या कारण है? एक ने उसे अपनाया, दूसरा सितार या दिलरुबे की तरह केवल ध्वनि निकालता रहता है। तोते के कण्ठ से भी रामनाम निकलता है। पर वह उसके हृदय तक थोड़े ही पहुँचता है। वह तो उसके महत्व को समझता ही नहीं।....."

—तृतीय गांधी सेवा संघ सम्मेलन, हुदली, १७ अप्रैल, '३७]

शास्त्र का उच्चारण नहीं, आचरण

"......शास्त्र का मुख से उच्चारण करने में कोई लाभ नहीं है,

उसपर अमल करने में ही लाभ है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० १५।९।'२७; पृष्ठ २७, मैसूर से विदा होते समय स्वयंसेवकों के समक्ष दिये गये प्रवचन से]

क्या किसी भी हालत में झूठ बोलना ठीक है?

प्रश्न—मशहूर अंग्रेज लेखक मि० बरट्रेंड रसेल के नीचे लिखे बयान के बारे में आपकी क्या राय है? "एक दफा देहात की तरफ़ घूमते हुए मैंने देखा कि एक थकी हुई लोमड़ी लस्त-पस्त होने की हालत में भी ज़बरदस्ती दौड़ी चली जा रही थी। इसके कुछ ही मिनट बाद मुझे शिकारियों की एक टोली दिखाई पड़ गई। उन्होंने मुझसे पूछा 'क्या आपने लोमड़ी देखी है?' और मैंने कहा: 'हाँ, देखी है। उन्होंने फिर पूछा: 'किधर गई है?' और मैं उनसे झूठ बोल गया। मैं नहीं समझता कि उनसे सच बात कहकर मैं ज़्यादा भला आदमी बन गया होता।"

उत्तर—मि० बरट्रेंड रसेल एक बड़े लेखक और फिलासफ़र हैं। उनकी पूरी पूरी इज़्ज़त करते हुए भी मुझे ऊपर दी गई उनकी राय से अपनी नाइत्तिफ़ाकी ज़ाहिर करनी चाहिए। शुरू में ही उन्होंने यह कहकर ग़लती की कि उनने लोमड़ी देखी है। पहले सवाल का जवाब देना उनके लिए लाज़मी नहीं था। अगर वह शिकारियों को जानबूझ कर ग़लत रास्ते चढ़ाना नहीं चाहते थे तो वे दूसरे सवाल का जवाब देने से भी इन्कार कर सकते थे। मैं हमेशा से यह मानता और कहता आया हूँ कि हमें पूछे जाने वाले सब सवालों का जवाब देना हमेशा ही लाज़िमी नहीं होता। सच बात कहने में अपवाद की कोई गुंजाइश नहीं।

—मसूरी, ३१-५-'४६। 'हरिजन'। ह० से० ९।६।'४६]

विवाह बन्धनों को जकड़नेवाला है

"......मोक्ष ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है। हिन्दू होने से मैं यह मानता हूँ कि मोक्ष का अर्थ है जीवन-मरण से मुक्ति—ईश्वर-साक्षात्कार। मोक्ष पाने के लिए शरीर के बन्धन टूटना आवश्यक है। शरीर के बन्धन तोड़नेवाली प्रत्येक वस्तु पथ्य है, शेष सब अपथ्य। विवाह बन्धन को तोड़ने के बजाय उसे और अधिक जकड़ देता है। केवल एक ब्रह्मचर्य ही मनुष्य के बन्धनों को मर्यादित करके उसे ईश्वरार्पित जीवन बिताने के लिए शक्ति प्रदान करता है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० २।११।'२४; पृष्ठ ९१]

सच्चा भक्त

"...जो भक्त स्तुति का या पूजा का भूखा है, जो मान न मिलने से चिढ़ जाता है, वह भक्त नहीं है। भक्त की सच्ची सेवा आप भक्त बनने में है।..."

—नव जीवन। हि न० जी० १४।६।'२८: पृष्ठ ६४१]

तपस्या जीवन की सब से बड़ी कला

"...तपस्या जीवन की सबसे बड़ी कला है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० १०।२।'२४; पृष्ठ २१२]

तप के साथ श्रद्धा की आवश्यकता

"...यदि तपादि के साथ श्रद्धा, भक्ति, नम्रता न हो तो तप एक मिथ्या कष्ट है। वह दम्भ भी हो सकता है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० १२।१०।'२४; पृष्ठ ६५]

तपश्चर्या और श्रद्धा

"शुद्ध तपश्चर्या के बल से अकेला एक आदमी भी सारे जगत

को कँपा सकता है, मगर इसके लिए अटूट श्रद्धा की आवश्यकता है।"

—नवजीवन । हिं० न० जी० ३।१०।'२९; पृष्ठ ५४]

सच्ची साधुता

"....मैं मानता हूँ कि साधुता का दावा ही नहीं किया जा सकता। साधुता स्वयंसिद्ध होती है! सबूत और दावे की अपेक्षा रखनेवाली साधुता साधुता नहीं।"

—नवजीवन । हिं० न० जी० ९।७।'३१; पृष्ठ १९२]

मनुष्य की मानसिक स्थिति

"अपनी हर एक इच्छा को हमें आवश्यकता का नाम नहीं देना चाहिये। मनुष्य की स्थिति तो एक प्रकार से प्रयोगात्मक है। इस बीच आसुरी और दैवी दोनों प्रकार की शक्तियाँ अपने खेल खेलती हैं। किसी भी समय वह प्रलोभन का शिकार हो सकता है। अतः प्रलोभनों से लड़ते हुए उनका शिकार न बनने के रूप में उसे अपना पुरुषार्थ सिद्ध करना चाहिये।"

—ह० से० ४।४।'३६; पृष्ठ ५३]

सन्तोष में ही सुख है

"देखने में आता है कि जिन्दगी की ज़रूरतों को बढ़ाने से मनुष्य आचार-विचार में पीछे रह जाता है। इतिहास यही बताता है। सन्तोष में ही मनुष्य को सुख मिलता है। चाहिए जितना मिलने पर भी जिस मनुष्य को असन्तोष रहता है उसे तो अपनी आदतों का गुलाम ही समझना चाहिये। अपनी वृत्ति की गुलामी से बढ़कर कोई दूसरी गुलामी आज तक नहीं देखी। सब ज्ञानियों ने, और अनुभवी मानसशास्त्रियों ने, पुकार-पुकार कर कहा कि मनुष्य स्वयं अपना शत्रु है, और वह चाहे तो अपना मित्र भी बन सकता है। बन्धन और मुक्ति मनुष्य के

अपने हाथ में हैं। जैसे यह बात एक के लिए सच्ची है वैसे ही अनेक के लिए भी सच्ची है। यह युक्ति केवल सादे और शुद्ध जीवन से ही मिल सकती है।"

—सेवाग्राम ९।१०।'४० । ह० से० १९।१०।'४०; पृष्ठ ३०१]

नम्रता शक्ति है

"...आम का पेड़ ज्यों-ज्यों बढ़ता है त्यों-त्यों झुकता है। उसी तरह बलवान का बल ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है त्यों-त्यों वह नम्र होता जाता है और त्यों ही त्यों वह ईश्वर का डर अधिक रखता जाता है।"

—नवजीवन । हिं० न० जी० । ८।६।'२४; पृष्ठ २४९]

आन्तरिक गुणों पर जोर

"...मेरा स्वभाव ही ऐसा बना हुआ है कि मैंने अपने सारे जीवन भर भीतर शक्तियों और गुणों की बढ़ती का ही विचार किया है। यदि भीतरी शक्तियों का प्रभाव न हो तो बाहरी बातों का प्रयोग बिल्कुल निरर्थक है..."

—यं० इं० । हिं० न० जी० ७।९।'२४; पृष्ठ २५]

श्रद्धा की कसौटी

"...जिसे अपने कार्य और सिद्धान्त पर अविचल श्रद्धा है वह दूसरे की अश्रद्धा से या दूसरे के हट जाने से क्यों डरने लगा ?...जो श्रद्धावान होता है वह तो दूसरे की अश्रद्धा देखकर उलटा दुगना दृढ़ होता है।...श्रद्धावान मनुष्य अपने साथियों को भागता देखकर स्वयं सुदृढ़ होता है और सिंह की तरह अकेला लड़ता है और पहाड़ की तरह अटल हो जाता है।"

—नवजीवन । हिं० न० जी० । २३।११।'२४; पृष्ठ ११८]

मेरी हलचल ईश्वर के नाम पर है

"...मैं जो कुछ कह सकता हूँ वह यह है कि मेरी हलचल नास्तिक नहीं है। वह ईश्वर का इन्कार नहीं करती। वह तो उसी के नाम पर शुरू की गई है और निरन्तर उसकी प्रार्थना करते हुए चल रही है। हाँ, वह जनता के हित के लिए जरूर शुरू की गई है; परन्तु वह जनता तक उसके हृदय के द्वारा, उसकी सत्प्रवृत्ति के द्वारा ही पहुँचना चाहती है।"

—यं० इं०। हिं० न० जी०, २४।८।'२४; पृष्ठ १२]

स्वाभाविक त्याग

"...त्याग को बड़ा स्वरूप देने की आवश्यकता नहीं होती। स्वाभाविक त्याग प्रवेश करने के पहले बाजे नहीं बजाता। वह अदृश्य रूप से आता है और किसी को खबर तक नहीं होने देता। वह त्याग शोभित होता है और कायम रहता है। वह त्याग किसी को भारभूत नहीं होता और संक्रामक साबित होता है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० ९।४।'२५। पृष्ठ २८०]

त्याग

"...प्रेम जिस न्याय को प्रदान करता है वह है त्याग; और कानून जिस न्याय को प्रदान करता है वह है सज़ा। प्रेमी की दी हुई वस्तु न्याय की मर्यादा को लाँघ जाती है और फिर भी हमेशा उससे कम होती है जितनी कि वह देना चाहता है क्योंकि वह इस बात के लिए उत्सुक रहता है कि और दूँ और अफसोस करता है कि अब ज्यादा नहीं है।"

—यं० इं०। हिं० न० जी० ९।७'२५; पृष्ठ ३८२]

धर्म सेवा है, अधिकार नहीं

"...धर्म तो कहता है—'मैं सेवा हूँ; मुझे विधाता ने अधिकार

दिया ही नहीं है' ।"

—नवजीवन । हिं०न०जी० १५।१०।'२५; पृष्ठ ७२]

शुद्धतम प्रायश्चित्त

"...जो मनुष्य अधिकारी व्यक्ति के सामने स्वेच्छापूर्वक अपने दोष शुद्ध हृदय से कह देता है और फिर कभी न करने की प्रतिज्ञा करता है, वह मानो शुद्धतम प्रायश्चित्त करता है...।"

—हिन्दी आत्मकथा । सस्ता संस्करण १९३४, भाग १, अध्याय ८; पृष्ठ ३१]

क्षमा का रहस्य

"...क्रोध का कारण उपस्थित होने पर भी चुप्पी मार लेना, मार खा लेना, मार खाकर भी कुछ न बोलना—इसी मान्यता ने हिन्दुस्तान की जड़ खोद फेंकी है। बुद्ध भगवान् ने जब कहा था—'अक्कोधेन जिने कोधं' अर्थात् अक्रोध से क्रोध को जीतना चाहिए), तब क्या उनके मन में यही धारणा होगी कि अक्रोध के मानी हैं कुछ नहीं करना, हाथ पर हाथ धरकर बैठे रहना ? मुझे तो नहीं जान पड़ता है। कहा है—'क्षमा वीरस्य भूषणम् ।' तब क्या यह क्षमा केवल निष्क्रिय क्षमा होगी ? नहीं ; यह अक्रोध, यह क्षमा जब दया के रूप में बदलती है, प्रेम का रूप धारण करती है, तभी यह शुद्ध क्षमा होती है।...अहिंसा कुछ आलस्य नहीं, प्रमाद नहीं, अशक्ति नहीं, सक्रियता है ।"

—नवजीवन । हिं० न०जी० १९।१ '२८; पृष्ठ १७५]

मृत्यु शोक मिथ्या है

"...पुत्र मरे या पति मरे, उसका शोक मिथ्या है और अज्ञान है।"

—नवजीवन । हिं० न० जी० ११।६।'३१; पृष्ठ १५८]

दीक्षा

"...दीक्षा का अर्थ आत्म-सर्पण है। आत्म-सर्पण बाहरी आड-

म्बर से नहीं होता। यह मानसिक वस्तु है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, १।९।'२७; पृष्ठ ११]

श्रद्धा और चरित्र

"हमें जिस बात की आवश्यकता है, वह है अपरिमित श्रद्धा और उसे अनुप्राणित करनेवाला निष्कलङ्क चरित्र।"

—ह० से०, २५।८।'३३]

सेवा का मोह

"सेवा का भी मोह हो सकता है। मोह-मात्र छोड़ने से ही सच्ची सेवा हो सकती है। क्या अपङ्ग आदमी भक्ति नहीं कर सकते? मन से भी सेवा की जा सकती है।"

—ह० से०, १०।११।'३३]

गजेन्द्र-मोक्ष

"...गजेन्द्र-मोक्ष कोरा काव्य नहीं है। हमारे-जैसों के लिए वह एक आश्वासन है, रक्षा की बाड़ है।"

—ह० से०; १२।१२।'३६; पृष्ठ ३३८]

आध्यात्मिकता दुकान से खरीदने की चीज़ नहीं

"...आध्यात्मिकता ऐसी चीज नहीं है कि गांधी की दुकान पर गये और पुड़िया लेकर चले।"

—गां० से०सं० सम्मेलन, मालिकान्दा (बंगाल), २१।२।'४०]

दूसरों के दोष नहीं, गुण देखो !

"...विरोधी के स्वभाव की त्रुटियों को रजकण-सा गिनकर उसकी खूबियों को ही देखना और पर-गुण परमाणु जितना भी हो, तो उसे पर्वत करके बताने में ही दया और प्रेम की कला है।"

—ह० से० २७।७।'४०; पृष्ठ २०६। श्रीप्यारेलाल के लेख से]

: ७ :

इन्द्रिय-संयम

विकारों का दमन

"इन्द्रिय-उपयोग धर्म नहीं है; इन्द्रिय-दमन धर्म है। ज्ञान और इच्छापूर्वक हुए इन्द्रिय-दमन से आत्मा का लाभ होता है, हानि नहीं। विषयेन्द्रिय का उपयोग केवल सन्तति की उत्पत्ति के लिए ही स्वीकार किया गया है। पर जो सन्तति का मोह छोड़ देता है उसकी शास्त्र भी वन्दना करते हैं। इस युग में विकारों की महिमा इतनी बढ़ गई है कि अधर्म को ही लोग धर्म मानने लग गये हैं। विकारों की वृद्धि अथवा तृप्ति में ही जगत् का कल्याण है ऐसी कल्पना करना महा दोषमय है, ऐसा मेरा विश्वास है।......यही शास्त्र भी कहते हैं और यही आत्मदर्शियों का स्वच्छ अनुभव है। विकार रोके नहीं जा सकते अथवा उन्हें रोकने में नुकसान है, यह कथन ही अत्यन्त अहितकर है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० ८।१०।'२५; पृष्ठ ६४]

संयम ही एक मार्ग है !

"...हमारे ऋषि-मुनियों ने कहा है कि अन्तर्नाद सुनने के लिए अन्तःकर्ण भी चाहिए, अन्तश्चक्षु चाहिए और उन्हें प्राप्त करने के लिए संयम की अवश्यकता है। इसलिए पातञ्जल योगदर्शन में योगाभ्यास करने वाले के लिए, आत्म-दर्शन की इच्छा रखने वालों के लिए पहला पाठ यम-नियम पालन करने का बताया है। सिवाय संयम के मेरे, तुम्हारे या अन्य किसी के पास कोई दूसरा मार्ग ही नहीं है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, २०।९।'२८, पृष्ठ ३९, टालसटाय की जन्मशताब्दि पर दिये भाषण से]

युवक और अङ्कुश

"...जब भाप अपने-आपको एक मज़बूत लेकिन छोटे से पात्र में क़ैद कर लेती है तो वह महान शक्तिशालिनी बन जाती है और बाद में एक नपे-तुले छोटे रास्ते से निकलकर एक ऐसी प्रचण्ड गति उत्पन्न कर देती है कि उसके द्वारा बड़े-बड़े जहाज़ और भारी वज़नदार मालगाड़ियाँ चलाई जा सकती हैं। इसी तरह देश के नवजवानों को भी स्वेच्छा से अपनी अखूट शक्ति को एक सीमा में आबद्ध कर लेने और उसे अङ्कुश में रखने की ज़रूरत है जिससे मौका पड़ने पर वे उसका उचित परिमाण में आवश्यक उपयोग कर सकें।"

—यं० इं० । हिं० न० जी०, ३।१०।'२९; पृष्ठ ५२-५३]

संयमहीन जीवन

"संयमहीन स्त्री या पुरुष तो गया-बीता समझिए। इन्द्रियों को निरङ्कुश छोड़ देनेवाले का जीवन कर्णधारहीन नाव के समान है, जो निश्चय पहली चट्टान से ही टकराकर चूर-चूर हो जायगी।"

× × ×

"मुझे संन्यासी कहना गलत होगा। मेरे जीवन के नियामक आदर्श तो सारी मानवता के ग्रहण करने योग्य हैं। मैंने उन्हें धीरे-धीरे, ज्यों-ज्यों मेरा जीवन-विकास होता गया, प्राप्त किया है।"

× × ×

"मुझे तो इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है कि मैंने जो साध्य किया है उसे हर पुरुष स्त्री साध्य कर सकते हैं, बशर्ते कि वे भी उसी प्रयास, आशा और श्रद्धा से चलें। श्रद्धाहीन कार्य अतल खाईं की थाह लेने का प्रयत्न करने की तरह है।"

—ह० से० ३।१०।'३६; पृष्ठ २६०-२६१]

कामदेव की विजय-यात्रा

"...क्या गुजरात में और क्या दूसरे प्रान्तों में सब जगह कामदेव मामूल के माफिक विजय प्राप्त कर रहे हैं। आजकल की उनकी विजय में एक विशेषता यह है कि उनके शरणागत नर-नारी गण उसको धर्म मानते हुए दिखाई देते हैं। जब कोई गुलाम अपनी बेड़ी को शृङ्गार समझकर पुलकित होता है तब कहना चाहिए कि उसके सरदार की पूरी विजय हो गई। इस तरह कामदेव की विजय देखते हुए भी मुझे इतना विश्वास है कि यह विजय क्षणिक है, तुच्छ है और अन्त में डङ्क-कटे बिच्छू की तरह निस्तेज हो जानेवाली है।......आजकल हमारा बाह्याचार, हमारा वाचन, हमारा विचारक्षेत्र सब काम की विजय सूचित कर रहे हैं। उसके पाश से मुक्त होने का प्रयत्न करना है।"

—ह० से०; २८।११।'३६; पृष्ठ ३२३]

असत्य और व्यभिचार

"......मैं तो असत्य को सब पापों की जड़ मानता हूँ। और जिस संस्था में झूठ को बर्दाश्त किया जाता है, वह संस्था कभी समाज-सेवा नहीं कर सकती; न उसकी हस्ती भी ज्यादा दिनों तक रह सकती है।......व्यभिचारी तीन दोष करता है। झूठ का दोष करता ही है क्योंकि अपने पाप को छुपाता है। व्यभिचार को दोष मानता ही है। और दूसरे व्यक्ति का भी पतन करता है।"

—ह० से०, २७।२।'३७; पृष्ठ १४]

सन्तानोत्पत्ति या विषय-वासना की पूर्ति ?

"विवाह की पवित्रता तो तभी लुप्त हो जाती है जब उसके स्वाभाविक परिणाम सन्तानोत्पत्ति को छोड़ कर महज़ अपनी पाशविक विषय-

वासना की पूर्ति ही उसका सबसे बड़ा उपयोग मान लिया जाता है।"

—ह० से० २८।३।'३६; पृष्ठ ४५]

विवाह और विषय-संयम

"अनगिनत लोग स्वाद की ख़ातिर खाते हैं। इससे स्वाद इनसान का धर्म नहीं बन जाता। थोड़े ही लोग ऐसे हैं जो जिन्दा रहने के लिए खाते हैं। वे ही खाने का धर्म जानते हैं। इसी तरह थोड़े ही लोग औरत और मर्द के पवित्र रिश्ते का स्वाद लेने के लिए, ईश्वर को पहचानने के लिए शादी करते हैं।"

—३०-६-'४६। ह० बं०। ह० से० ७।७।'४६]

"......आज हम जिसे विवाह कहते हैं वह विवाह नहीं, उसका आडम्बर है। जिसे हम भोग कहते हैं वह भ्रष्टाचार है।"

× × ×

"......पशु जीवन में दूसरी बात हो सकती है लेकिन मनुष्य के विवाहित जीवन का यह नियम होना चाहिए कि कोई भी पति-पत्नी बिना आवश्यकता के प्रजोत्पत्ति न करें और बिना प्रजोत्पादन के हेतु के सम्भोग न करें।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, सावली, ६ मार्च,' ३६]

विवाह-बन्धन में शिथिलता

"......देखता हूँ, इधर विवाह की बड़ी अवगणना होने लगी है। समाज के पोषक बन्धनों को ढीला करना आसान ज़रूर है, लेकिन वह उतना ही घातक भी है। व्यक्तियों को भले इसका अनुभव न हो, लेकिन अन्त में समाज को तो इससे हानि ही पहुँचती है। सभी व्यवस्थाएँ बन्धन-रूप होती हैं। बिना व्यवस्था या विधान के किसी समाज का

सङ्गठन नहीं किया जा सकता।"

—२६।३।'४२; दिल्ली जाते हुए]

एक के कृत्यों का सबपर असर

"......मैं अद्वैत में विश्वास करता हूँ। मैं मनुष्य की परम आवश्यक एकता में भी विश्वास करता हूँ, इसीलिए मैं सभी जीवधारियों की एकता में विश्वास करता हूँ। इसी कारण मुझे तो ऐसा यक़ीन है कि एक मनुष्य के आध्यात्मिक लाभ के साथ सारी दुनिया का लाभ होता है। उसी तरह एक मनुष्य के अधःपतन के साथ उस हद तक सारे संसार की अधोगति होती है।"

—यं० इं० । हिं० न० जी०, ७।१२।'२४; पृष्ठ १३२]

भूल का सुधार

"भूल करना मनुष्य का स्वभाव है; की हुई भूल को मान लेना और इस तरह आचरण रखना कि जिससे वह भूल फिर न होने पावे—यह मर्दानगी है।

—ह० से० १९।४।'३७; पृष्ठ ६३]

त्याग बनाम भोग

"...मनुष्य की देह भोग के लिए हर्गिज़ नहीं है, मात्र सेवा के लिए है। त्याग में रहस्य है, जीवन है; भोग में मृत्यु है।"

—सेवाग्राम, ११-२-'४६, ह० ब०, ह० सेवक २४।२।'४६]

: ८ :

धर्म-प्रकरण

[धर्म, हिन्दूधर्म, उसके व्याख्याता]

धर्म एक महावृक्ष है

"....धर्म सीधी लकीर नहीं, बल्कि विशाल वृक्ष है। उसके करोड़ों पत्ते हैं जिनमें दो पत्ते भी एक-से नहीं हैं। प्रत्येक टहनी जुदी-जुदी है। उसकी एक भी आकृति रेखागणित की आकृति की तरह नपी हुई नहीं होती। ऐसा होते हुए भी हम जानते हैं कि बीज, टहनी या पत्ते एक ही हैं। रेखागणित की आकृति के सदृश उनमें कोई बात नहीं है। फिर भी वृक्ष की शोभा के साथ रेखागणित की आकृति की तुलना तक नहीं हो सकती। धर्म जिस प्रकार सीधी लकीर नहीं उसी प्रकार टेढ़ी भी नहीं। वह सीधी लकीर से परे है क्योंकि वह बुद्धि के परे है। वह अनुभव से जाना जाता है।"

— नवजीवन। हिं० न० जी०, १०।८।'२४; पृष्ठ ४१८

धर्म की व्यापकता

"....मैं ऐसा मानता हूँ कि धर्म-मात्र में आर्थिक, राजनीतिक इत्यादि विषयों का समावेश है। जो धर्म शुद्ध अर्थ का विरोधी है वह धर्म नहीं है। जो धर्म राजनीति का विरोधी है वह धर्म नहीं है। धर्म-रहित अर्थ त्याज्य है। धर्म-रहित राज्यसत्ता राक्षसी है। अर्थ आदि से अलग धर्म नाम की कोई वस्तु नहीं है। व्यक्ति अथवा समाज धर्म से जीवित रहते हैं और अधर्म से नष्ट होते हैं। सत्य के अव-लम्बन के द्वारा किया अर्थ-संग्रह अर्थात् व्यापार प्रजा का पोषण करता है। सत्यासत्य के विचार से रहित व्यापार प्रजा का नाश करता है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० १०।९।'२५; पृष्ठ २८]

धर्म

"...धर्म कुछ सङ्कुचित सम्प्रदाय नहीं है, केवल बाह्याचार नहीं है। विशाल, व्यापक धर्म है ईश्वरत्व के विषय में हमारी अचल श्रद्धा, पुनर्जन्म में अविचल श्रद्धा, सत्य और अहिंसा में हमारी सम्पूर्ण श्रद्धा।..."

—नवजीवन। हिं० न० जी० ३०।८।'२८; पृष्ठ १४। अहमदाबाद प्रार्थना समाज के भाषण से]

मेरा धर्म

"आप मेरी सारी ज़िन्दगी को गौर से देखिए; मैं कैसे रहता हूँ, कैसे खाता हूँ, कैसे बैठता हूँ, कैसे बात-चीत करता हूँ, और आम तौर पर मेरा बर्ताव कैसा रहता है, सो सब आप पूरी तरह देखिए। इन सब को मिलाकर जो छाप आप पर पड़े, वही मेरा धर्म है।"

—ह० से०, ६।१०।'४६]

भावी युग और धर्म

"आने वाले जमाने पर सब से ज़्यादा असर धर्म का रहेगा। आज भी उसका वैसा ही असर पड़ सकता है, और पड़ना चाहिए, लेकिन पड़ता नहीं। क्योंकि वह शनीचर और इतवार की छुट्टी के दिनों में फुरसत से याद करने की एक चीज बना दिया गया है। सच पूछा जाय तो धर्म ज़िन्दगी की हर एक सांस के साथ अमल में लाने की चीज़ है। जब ऐसा धर्म प्रकट होगा तब सारी दुनिया में उसका बोल-बाला हो जायगा।"

—ह० से० ६।१०।'४६]

आध्यात्मिक सम्बन्ध-विहीन लौकिक सम्बन्ध

"...आध्यात्मिक सम्बन्ध से हीन लौकिक सम्बन्ध प्राणहीन शरीर के समान है।"

—हिं० आ० क०, भाग ५, अध्याय ६, पृष्ठ ४३३। स० संस्करण' ३९]

धर्म उत्कट श्रद्धा का नाम है

"...धर्म तो उत्कट श्रद्धा का नाम है। धर्म का निचोड़, उसका दूसरा नाम, अहिंसा है। उसमें यह ताकत है कि अंग्रेज के हाथ से उसकी तलवार गिर जाय; मुसलमान का गुण्डापन धरा रह जाय। पतञ्जलि ने कहा है—अहिंसा के सामने हिंसा निकम्मी हो जाती है। अगर आज तक ऐसा नहीं हुआ है तो उसका कारण यह है कि हमारी अहिंसा दुर्बलों और भीरुओं की थी।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, डेलांग ३०।३।'३८]

विविध धर्म एक दूसरे के पूरक

"मेरा हिन्दू-धर्म सर्वव्यापक है। उसमें न तो किसी धर्म के प्रति द्वेष है, न अवगणना। समस्त धर्म एक दूसरे के साथ ओत-प्रोत हैं। प्रत्येक धर्म में कई विशेषताएँ हैं, किन्तु एक धर्म दूसरे धर्म से श्रेष्ठ नहीं। जो एक में है वह दूसरे में नहीं है। इसलिए एक धर्म दूसरे धर्म का पूरक है। अतः एक धर्म की विशेषता दूसरे धर्म की विशेषता के प्रतिकूल नहीं हो सकती, जगत् के सर्वमान्य सिद्धान्तों की विरोधी नहीं हो सकती।"

—ह० से० ३१।३।'३३; पृष्ठ ३]

धर्मों के एकीकरण की चाबी

"...जितना सम्भव था उतना विविध धर्मों का अध्ययन करने के

बाद मैं इस निर्णय पर आया हूँ कि सब धर्मों का एकीकरण करना यदि उचित और आवश्यक है, तो उन सबकी एक महाचाबी होनी चाहिये। यह चाबी सत्य और अहिंसा है। इस चाबी से जब मैं किसी धर्म की पेटी खोलता हूँ तो मुझे एक धर्म का दूसरे धर्म से ऐक्य करने में ज़रा भी कठिनाई नहीं आती। यद्यपि वृक्ष के पत्तों की तरह सब धर्म अलग-अलग नज़र आते हैं, मगर जड़ को देखा जाय तो सब एक ही दिखाई देते हैं।…"

—ह० से० १३।७।'४०; पृष्ठ १७९]

हिन्दू धर्म विकासमान है

"…यदि मुझे हिन्दू धर्म का कुछ भी ज्ञान है तो वह समावेशक—व्यापक, सदा-वर्धमान और परिस्थिति के अनुरूप नवीन रूप धारण करने वाला है।"

—१९।९।'२४। यं० इं०। हिं० न० जी० २७।९।'२४; पृष्ठ ५३]

हिन्दू धर्म की विशेषता

"…मेरी राय में हिन्दू धर्म की खूबी उसकी सर्वव्यापकता और सर्वसंग्राहकता है।"

—यं० इं०। हिं० न० जी०, १७।९।'२५, पृष्ठ ३४]

हिन्दू-धर्म

"…हिन्दू धर्म जीवित धर्म है। उसमें भरती और खोट आती ही रहती है। वह संसार के नियमों का ही अनुसरण करता है। मूल रूप से तो वह एक ही है लेकिन वृक्ष रूप से वह विविध प्रकार का है। उस पर ऋतुओं का असर होता है। उसका वसन्त भी होता है और पतझड़ भी। उसकी शरद ऋतु भी होती है और उष्ण ऋतु भी। वर्षा से भी

वह वंचित नहीं रहता है ! उसके लिए शास्त्र है भी और नहीं भी है। उसका एक ही पुस्तक पर आधार नहीं है। गीता सर्वमान्य है लेकिन वह केवल मार्गदर्शक है।...हिन्दू धर्म गंगा का प्रवाह है। मूल में वह शुद्ध है। मार्ग में उसपर मैल चढ़ता है। फिर भी जिस प्रकार गङ्गा की प्रवृत्ति अन्त में पोषक है उसी प्रकार हिन्दू धर्म भी है।"

—नवजीवन। हिं न० जी०, १२।२।'२६, पृष्ठ २०८]

× × ×

"...हिन्दू वह है जो ईश्वर मे विश्वास करता है, आत्मा की अनश्वरता, पुनर्जन्म, कर्म-सिद्धान्त और मोक्ष में विश्वास करता है और अपने दैनिक जीवन में सत्य और अहिंसा का अभ्यास करने का प्रयत्न करता है और इसलिए अत्यन्त व्यापक अर्थ में गोरक्षा करता है, और वर्णाश्रम धर्म को समझता है और उसपर चलने का प्रयत्न करता है।"

—यं० इं०, १४।१०।'२६]

× × ×

"...वर्णाश्रम धर्म संसार को हिन्दू धर्म की अपूर्व भेंट है। हिन्दू-धर्म ने हमें भय से बचा लिया है। अगर हिन्दू धर्म मेरे सहारे को नहीं आता तो मेरे लिए आत्म-हत्या के सिवाय और कोई चारा नहीं होता। मैं हिन्दू इसलिए हूँ कि हिन्दू धर्म ही वह चीज़ है जो संसार को रहने लायक बनाता है।"

—यं० इं०। हिं० न० जी० १।१२।'२७; पृष्ठ १२०]

× × ×

"...हिन्दू धर्म की प्रतिष्ठा सत्य और अहिंसा पर निर्भर है और इस कारण हिन्दू धर्म किसी धर्म का विरोधी हो नहीं सकता है। हिन्दू

धर्मों की नित्य प्रदक्षिणा यह होनी चाहिए कि जगत् के सर्वप्रतिष्ठित धर्मों की उन्नति हो और उसके द्वारा सारे संसार की।"

—ह० से० २५।३।'३९, पृष्ठ ४२ । श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर, नई दिल्ली का उद्घाटन करते हुए]

ब्राह्मण धर्म हिन्दू धर्म का दूसरा नाम है

"मेरी दृष्टि में ब्राह्मण धर्म का दूसरा नाम हिन्दू धर्म है। ब्राह्मण धर्म का अर्थ है 'ब्रह्म-ज्ञान' इसलिए ब्राह्मणधर्म उस ज्ञान का नाम है, जिसके द्वारा मनुष्य को ईश्वर-दर्शन अथवा आत्म-दर्शन होता है। यदि मेरा यह आशय न होता, तो मैं हिन्दू-धर्म का आश्रयी कभी न रहता।"

—ह० से० ७।४।'३३]

वर्ण-धर्म

"....जैसे-जैसे साल पर साल बीतते जाते हैं मेरा विश्वास बढ़ता जाता है कि वर्ण-धर्म ही मनुष्य का जीवन-धर्म है।..."

—यं० इं० । हिं० न० जी० ३।११।'२७; पृष्ठ ८७। त्रिवेन्द्रम के भाषण में]

'जन्मना' वर्ण-विभाग

"मैं 'जन्मना' वर्ण-विभाग में विश्वास रखता हूँ। यदि ऐसा न होता, तो वर्ण-व्यवस्था का कुछ अर्थ ही न रहता, वर्ण-व्यवस्था का कुछ उपयोग ही न रहता। तब तो केवल शब्द-जाल मात्र रह जाता।"

—ह० से०, १४।४।'३३]

वर्ण-धर्म का सच्चा अर्थ

"वर्ण असल में धर्म है, अधिकार नहीं। इसलिए वर्ण का अस्तित्व केवल सेवा के लिए ही हो सकता है, स्वार्थ के लिए नहीं। इसी कारण

न तो कोई उच्च है, न कोई नीच। ज्ञानी होते हुए भी जो अपने को दूसरों से उच्च मानेगा, वह मूर्ख से भी बदतर है। उच्चता के अभिमान से वह वर्ण-च्युत हो जाता है। यहाँ यह भी समझ लेना आवश्यक है, कि वर्ण-धर्म में ऐसी कोई बात नहीं कि शूद्र ज्ञान का सञ्चय अथवा राष्ट्र की रक्षा न करे। हाँ, शूद्र अपने ज्ञान के विनिमय को अथवा राष्ट्र-रक्षा को अपनी अजीविका का साधन न बना ले। ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय परिचर्या न करे, यह भी बात नहीं है। परन्तु परिचर्या के द्वारा आजीविका न चलावे। इस सहज-स्वाभाविक धर्म का यदि सर्वथा पालन किया जाय, तो समाज में जो उपद्रव आज हो रहे हैं, एक दूसरे के प्रति जो द्वेषपूर्ण प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है, धन इकट्ठा करने के जो कष्ट उठाये जा रहे हैं, असत्य का जो प्रचार हो रहा है और जो युद्ध के साधन तैयार किये जा रहे हैं वे सब शान्त हो जायँ। इस नीति का पालन सारा संसार करे अथवा न करे, सभी हिन्दू करें या न करें, पर जितने लोग इस व्यवस्था पर चलेंगे, उतना लाभ तो संसार को होगा ही। मेरा विश्वास बढ़ता ही जाता है, कि वर्ण-धर्म से ही जगत् का उद्धार होगा। वर्ण-धर्म का सच्चा अर्थ सेवा-धर्म है। जो कुछ किया जाय वह सेवा-भाव से ही किया जाय। सेवा में सौदा कहाँ ?"

—ह० से० २१।४।'३३]

जात-पाँत रूपी घुन

"जब पानी से ज़मीन कटने लगती है तो अच्छी ज़मीन भी बरबाद हो जाती है। यह काफी बुरी चीज है। मगर जात-पाँत रूपी घुन उससे भी बुरा है। वह आदमियों को बरबाद कर देता है और उन्हें एक-

दूसरे से अलग करता है।"

—नई दिल्ली, २९-४-'४६ । हरिजन । ह० से० ५।५।'४६]

धर्म वचन की परख

"ऐसे हर एक वचन को, जिसके लिए धर्मशास्त्र का वचन होने का दावा किया गया हो, सत्य की निहाई पर दया रूपी हथौड़े से पीटकर देख लेना चाहिए। अगर वह पक्का मालूम हो और टूट न जाय तो ठीक समझना चाहिए; नहीं तो हज़ारों शास्त्रवादियों के रहते हुए भी 'नेति-नेति' कहते रहना चाहिए।"

—ह०से०,९।६।'३३]

हिन्दू धर्म की परीक्षा

"इस भूमि के निवासियों से कहता हूँ कि हिन्दू-धर्म आज तराज़ू पर चढ़ा हुआ है और संसार के समस्त धर्मों के साथ आज उसकी तुलना हो रही है। जो बात बुद्धि के बाहर होगी, दया धर्म के बाहर होगी उसका समावेश यदि हिन्दू-धर्म में होगा, तो उसका नाश निश्चित समझना।"

—ह०से०,२३।६।'३३]

भागवत धर्म

"हृदय-परिवर्तन एक मात्र भागवत-धर्म से ही हो सकता है। यह धर्म संक्रामक है। प्रकट होने के बाद किसी को यह अछूता नहीं छोड़ता। जब हममें से किसी में सचमुच यह प्रकट हो जायगा, तब हरि-जन और सनातनी अपने आप ही इसे पहिचान लेंगे।"

—ह० से० ५।५।'३३]

शास्त्रार्थ अन्धा कुआँ है!

"शास्त्रार्थ का पेशा वकीलों के पेशे की तरह है। शास्त्रार्थवादी

स्याह का सफेद और सफेद का स्याह करके दिखा सकता है। किसे इस बात का अनुभव नहीं होता? बहुत से वेद-वादरत प्राणी वेदों से अनेक बातें साबित करते हैं। और वैसे ही नाम धारण करनेवाले दूसरे कितने ही लोग उनके विरुद्ध बातें उतने ही ज़ोर के साथ उनमें से सिद्ध करते हैं। मैं अपने जैसे प्राकृत मनुष्यों का एक आसान तरीका बताता हूँ जिसका अनुभव मैंने किया है। मैंने हर एक धर्म का विचार करके उसका लघुत्तम निकाल रखा है। कितने ही सिद्धान्त अचलवत् मालूम होते हैं। भक्त तुलसीदास ने आधे दोहे में कह दिया है—"दया धरम को मूल है।" 'सत्य के सिवा दूसरा धर्म नहीं'। यह सनातन वचन है। किसी भी धर्म ने इन सूत्रों को अस्वीकार नहीं किया है। ऐसे हर एक वचन को, जिसके लिए धर्म-शास्त्र के वचन होने का दावा किया गया हो, सत्य की निहाई पर दयारूपी हथौड़े से पीटकर देख लेना चाहिये। अगर वह पक्का मालूम हो और टूट न जाय तो ठीक समझना चाहिए; नहीं तो हज़ारों शास्त्रवादियों के रहते हुए भी 'नेति' 'नेति' कहते रहना चाहिए। अखा (एक गुजराती भक्त कवि) की अनुभव-वाणी में शास्त्रार्थ एक अन्धा कुआँ है। जो उसमें गिरता है वही मरता है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० २९।६।'२४; पृष्ठ २६९]

गीता

..."गीता मेरे लिए शाश्वत मार्ग-दर्शिका है। अपने हर कार्य के लिए मैं गीता में से आधार खोजता हूँ और यदि नहीं मिलता है तो उस कार्य को करते हुए रुक जाता हूँ या अनिश्चित रहता हूँ।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, ३०।७।'२५; पृष्ठ ४०३। देशबन्धु के प्रथम श्राद्ध दिवस पर दिये गये प्रवचन से]

× × ×

"...अब तो तत्वज्ञान के लिए उसे (गीता को) मैं सर्वोत्तम ग्रन्थ मानता हूँ।"

—हिन्दी आत्मकथा : भाग १, अध्याय २०, पृष्ठ ७७, १९३९]

× × ×

"मेरे लिए तो गीता आचार की एक प्रौढ़ मार्ग-दर्शिका बन गई है। वह मेरा धार्मिक कोष हो गई है।..."

—हिं० आ० क०, भाग ४, अध्याय ५, पृष्ठ २९१। स० संस्करण, १९३९]

× × ×

"गीता रत्नों की खान है।"

—यं० इं०। हिं० न० जी०, २।२।'२८; पृष्ठ १९२]

× × ×

"मेरे लिए तो गीता ही संसार के सब धर्मग्रन्थों की कुञ्जी हो गई है। संसार के सब धर्मग्रन्थों में गहरे से गहरे जो रहस्य भरे हुए हैं उन सबको यह मेरे लिए खोलकर रख देती है।"

—ह० से०; १८।४'३६; पृष्ठ ६९]

गीता और रामायण

"भगवद्गीता और तुलसीदास की रामायण से मुझे अत्यधिक शान्ति मिलती है। मैं खुल्लमखुल्ला कबूल करता हूँ कि कुरान, बाइबिल तथा दुनिया के अन्यान्य धर्मों के प्रति मेरा अति आदर भाव होते हुए भी मेरे हृदय पर उनका उतना असर नहीं होता जितना कि श्रीकृष्ण की गीता और तुलसीदास की रामायण का होता है।"

—१९।१।'२४; यं० इं०। हिं० न० जी० २८।१।'२४; पृष्ठ ५३]

रामायण

"आज मैं तुलसीदास की रामायण को भक्तिमार्ग का सर्वोत्तम ग्रन्थ मानता हूँ।"

—हिन्दी आत्म-कथा, भाग १, अध्याय १०; पृष्ठ ३६, स० संस्करण; '३९]

× × ×

"रामचरितमानस विचार-रत्नों का भाण्डार है।"

—हिं० न० जी० ५।९।'२९; पृष्ठ २०]

× × ×

"......रामचरित मानस के लिए यह दावा अवश्य है कि उससे लाखों मनुष्यों को शान्ति मिली है; जो लोग ईश्वर-विमुख थे वे ईश्वर के सम्मुख गये हैं और आज भी जा रहे हैं। मानस का प्रत्येक पृष्ठ भक्ति से भरपूर है। मानस अनुभवजन्य ज्ञान का भाण्डार है।"

—हिं० न० जी०, १०।१०।'२९; पृष्ठ ६०]

महाभारत

"..... महाभारत मेरे नज़दीक एक गहन धार्मिक ग्रन्थ है। वह अधिकांश में एक रूपक है। इतिहास के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं। उसमें तो उस शाश्वत युद्ध का वर्णन है जो हमारे अन्दर निरन्तर होता रहता है।"

—यं० इं०। हिं० न० जी०, ८।१०।'२५; पृष्ठ ६०]

× × ×

"महाभारत तो रत्नों की एक खान है, जिसमें गीता केवल एक, किन्तु सब से अधिक दैदीप्यमान, रत्न है।"

× × ×

"मनुष्य को अगर एक अमर प्राणी समझा जाय तो महाभारत उसका एक आध्यात्मिक इतिहास है।"

× × ×

"हमारे हृदयों में सत् और असत् के बीच जो सनातन संघर्ष चल रहा है, महाभारतकार उसे इस कथानक के द्वारा, एक अमर काव्य के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करता है।"

—ह० से०, ५।९।'३६; पृष्ठ २२८]

तुलसीदास : भारतीय सभ्यता के रक्षक

"......भारत की सभ्यता की रक्षा करने में तुलसीदासजी ने बहुत अधिक भाग लिया है। तुलसीदास के चेतनामय रामचरित मानस के अभाव में किसानों का जीवन जड़वत् और शुष्क बन जाता।...तुलसीदास की भाषा में जो प्राणप्रद शक्ति है वह दूसरों की भाषा में नहीं पाई जाती।"

—हिं० न० जी०, ५।९।'२९; पृष्ठ २०]

रामायण और महाभारत के प्रणेता

"......रामायण और महाभारत कवि-कल्पना से भरे हैं लेकिन उनके रचयिता कोरे कवि न थे, अथवा वे सच्चे कवि यानी ऋषि थे। वे शब्दों के चित्रकार नहीं, मानव-स्वभाव के चित्रकार थे।"

—सेवाग्राम, २३।२।'४२। 'हरिजन बन्धु'। ह० से० १।३।'४२; पृष्ठ ६०]

अस्पृश्यता

"ब्राह्मण धर्म को जो अद्वितीय स्थान प्राप्त हुआ है उसका कारण है ज्ञान से प्रदीप्त निस्पृहता, अन्तःकरण की शुद्धि और तीव्र तपस्या।...

हमारी आन्तरिक परीक्षा का समय है। हम मोह में लिप्त हैं। घोर से घोर अस्पृश्य और पापपूर्ण विचारों का प्रवाह हमें स्पर्श कर रहा है और अपवित्र बना रहा है। ऐसी दशा में हम अपनी पवित्रता के घमण्ड में मस्त होकर अपने उन भाइयों के स्पर्श के प्रभाव को तिल का ताड़ न बनावें जिन्हें हम अक्सर अपने अज्ञानवश, और उससे भी अधिक अपने बड़प्पन की ठसक से, अपने से नीच समझते हैं।"

—यं० इं० । हिं० न० जी०, ८।१।'२२]

अन्त्यज पङ्खहीन हैं

"...अन्त्यजों के तो हमने पर काट डाले हैं, उनकी सद्भावनाओं को दबा दिया है।"

—नवजीवन । हिं० न० जी० २५ ५।'२४; पृष्ठ ३३२]

अन्त्यज आपके देव हैं !

"...गीता कहती है कि देवों को सन्तुष्ट रखना चाहिए।...देवता आस्मान पर नहीं हैं। आपके देव अन्त्यज हैं। आपके देव दूसरे अस्पृश्य हैं। हिन्दुस्तान के देव कंगाल लोग हैं। दयाधर्म से हीन धर्म पाखण्ड है। दया ही धर्म का मूल है। और उसका त्याग करनेवाला ईश्वर का त्याग करता है। रंक का त्याग करनेवाला सबका त्याग करता है।"

—हिं० न० जी०, ५।२।'२५; पृष्ठ २०९, किसान परिषद् के भाषण से]

अस्पृश्यता

"...जिस प्रकार एक रत्ती संखिया से लोटाभर दूध बिगड़ जाता है उसी प्रकार अस्पृश्यता से हिन्दूधर्म चौपट हो रहा है।"

—यं० इं० । हिं० न० जी०, ३।११।'२७; पृष्ठ ८३, किलोन के भाषण से]

धार्मिक संग्राम

"अस्पृश्यता के साथ संग्राम एक धार्मिक संग्राम है। यह संग्राम मानव-सम्मान की रक्षा के लिए है। यह संग्राम हिन्दूधर्म में बहुत ही बलवान सुधार के निमित्त है। यह संग्राम सनातनियों के खाईंदार गढ़ों के विरुद्ध है।"

—ह० से०, २।६।'३३]

दलित जातियों से आत्मीयता न छोड़ूँगा

"चाहे मैं टुकड़े-टुकड़े कर दिया जाऊँ, पर दलित जातियों से आत्मीयता न छोड़ूँगा।"

—ह० से०, २।६।'३३]

असत्य, पाखण्ड का मैल

"मेरी अल्प बुद्धि के अनुसार तो भंगी पर जो मैल चढ़ता है, वह शारीरिक है और वह तुरन्त दूर हो सकता है। किन्तु जिनपर असत्य पाखण्ड का मैल चढ़ गया है, वह इतना सूक्ष्म है कि दूर करना बड़ा कठिन है। किसी को अस्पृश्य गिन सकते हैं तो असत्य और पाखण्ड से भरे हुए लोगों को।"

—ह० से०, २।६।'३३]

× × ×

"जिस प्रथा की बदौलत हिन्दुओं का एक बड़ा भाग पशु से भी बदतर हालत को जा पहुँचा है उसके लिए मेरे रोम-रोम में घृणा व्याप्त हो रही है।"

—ह० से०, ९।६।'३३]

बंगाल के हिन्दुओं से

"दुःख की बात यह नहीं कि इतने सारे मुसलमान पागल बन गये

बल्कि दुःख यह है कि पूरबी बंगाल के इतने हिन्दू इन सब बातों को देखते रहे। अगर पूरबी बंगाल का एक-एक हिन्दू मार डाला जाता तो भी मैंने उसकी परवा न की होती। क्या आप जानते हैं कि ऐसे वक्त राजपूत क्या किया करते थे? लड़ाई के मैदान में अपनी कुर्बानी करने के लिए रवाना होने से पहले वे अपनी औरतों को मार डाला करते थे। जो बच जाती थीं वे किले के दुश्मन के हाथ में जाने से पहले चिता पर चढ़कर अपनी बलि दे देती थीं, ताकि दुश्मन उन्हें पकड़कर उनकी बेइज़्ज़ती न कर सके। हज़ारों मुसलमान मिलकर अपने बीच रहने वाले मुट्ठी भर हिन्दुओं को कत्ल कर डालें तो उसमें कोई बहादुरी नहीं। लेकिन यह देखकर दिल फटता है कि अपनी बुज़दिली की वजह से हिन्दू इतने नीचे गिर गये कि उनके देखते उनकी औरतें भगाई गईं, बेइज़्ज़त की गईं, जबरन् उनका धर्म बदला गया और मुसलमानों के साथ ज़बर्दस्ती उनकी शादियाँ की गईं, और वे कुछ न कर सके।"

—चाँदपुर में हिंदू कार्यकर्ताओं के प्रतिनिधि-मण्डल से। ह० से० ८। ११।'४६; पृष्ठ ४२१]

× × ×

"अगर पूर्वी बंगाल में एक ही हिन्दू रह जाय, तो भी मैं चाहूँगा कि वह हिम्मत के साथ मुसलमानों के बीच जाकर रहे, और उसे मरना ही पड़े तो बहादुर की तरह मरे। उसे गुलाम की तरह रहने और जीने से साफ इन्कार कर देना चाहिए।"

—क़ाज़ीरखिल (पूर्व बंगाल)। १७-११-'४६]

: ९ :

कला, काव्य, साहित्य और संस्कृति

कला

"...मैं कला के दो भेद करता हूँ—आन्तर और बाह्य। और इनमें तुम किस पर अधिक जोर देते हो, यही सवाल है। मेरे नजदीक तो बाह्य की कीमत तबतक कुछ नहीं है जबतक अन्तर का विकास न हो।"

× × ×

"समस्त कला अन्तर के विकास का आविर्भाव ही है।"

× × ×

"...जो कला आत्मा को आत्म-दर्शन करने की शिक्षा नहीं देती वह कला ही नहीं है।"

× × ×

"जो अन्तर को देखता है बाह्य को नहीं, वही सच्चा कलाकार है।"

—नवजीवन। हिं०न०जी० २।११।'२४; पृष्ठ ८९; श्री रामचन्द्रन से बातचीत के सिलसिले में]

कला का स्वरूप

"...सर्वोत्कृष्ट कला व्यक्तिभोग्या न होगी, सर्वभोग्या होगी और कला जब बाह्य साधनों से अधिक से अधिक मुक्त होगी तभी वह सर्व-भोग्या बन सकेगी।......इस निर्दोष, सर्वभोग्या कला का मनुष्य के आध्यात्मिक विकास में बहुत बड़ा स्थान है..."

× × ×

"बाह्य साधनों पर अथवा इन्द्रिय-ज्ञान पर आधार रखनेवाली कला में जितनी आत्मा होती है उतने ही अंशों में वह अमृतकला के समान

बनती है। जिसमें आत्मा का बिल्कुल ही अभाव होगा, वह कला न होगी किन्तु केवल कृति ही बन जायगी और क्षणभङ्गुर होगी। उस अमृत कला का अंश जिसमें अधिक है, वह मोक्षदायी है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, ४।३।'२६]

जीवन समस्त कलाओं से श्रेष्ठ है

"...जीवन समस्त कलाओं से श्रेष्ठ है। मैं तो समझता हूँ कि जो अच्छी तरह जीना जानता है वही सच्चा कलाकार है। उत्तम जीवन की भूमिका के बिना कला किस प्रकार चित्रित की जा सकती है? कला के मूल्य का आधार है जीवन को उन्नत बनाना। जीवन ही कला है। कला जीवन की दासी है और उसका काम यही है कि वह जीवन की सेवा करे। ...कला विश्व के प्रति जाग्रत होनी चाहिये।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०। १०।२।'२४; पृष्ठ २१२, दिलीपकुमार राय से बातचीत के सिलसिले में]

कला

"...मेरा ध्येय हमेशा है कल्याण। कला मुझे उसी अंश तक स्वीकार्य है जिस अंश तक वह कल्याणकारी है, मङ्गलकारी है। मैं उसे युरोप की दृष्टि से नहीं देख सकता। ..."

× × ×

"...भारतीय कलाकार ने अपनी कला को मन्दिरों में और गुफाओं में प्रकट करके सार्वजनिक कर दिया है।"

× × ×

"कलाकार जब कला को कल्याणकारी बनावेंगे और जनसाधारण के लिए उसे सुलभ कर देंगे तभी उस कला को जीवन में स्थान रहेगा।

जब कला सब लोगों की न रहकर थोड़े लोगों की रह जाती है तब मैं मानता हूँ कि उसका महत्व कम हो जाता है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० २३।११।'२४; पृष्ठ १२०]

भारतीय और यूरोपीय कला

हिन्दुस्तान की कला में कल्पना भरी हुई है; यूरोप की कला में प्रकृति का अनुकरण है। इस कारण शायद पश्चिम की कला समझने में आसान हो सकती है लेकिन समझ में आने पर वह हमें पृथिवी से ही जकड़नेवाली होगी; और हिन्दुस्तान की कला जैसे-जैसे हमारी समझ में आयेगी, वैसे-वैसे हमें ऊपर उठाती जायगी।"

—यरवदा मन्दिर, २५।१।'३२; एक निजी पत्र में]

काव्य

"…काल के अन्त तक कल्पना शक्ति अर्थात् काव्य मनुष्य के विकास में अपना उपयोगी और आवश्यक काम जरूर करेगा।"

—यं० इं०। हिं० न०जी १७।९।'२५; पृष्ठ ३४]

कवि और काव्य

"……कवि जिस ग्रन्थ की रचना करता है उसके सब अर्थों की कल्पना नहीं कर लेता है। काव्य की यही खूबी है कि वह कवि से भी बढ़ जाता है। जिस सत्य का वह अपनी तन्मयता में उच्चारण करता है वही सत्य उसके जीवन में अक्सर नहीं पाया जाता।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० १५।१०।'२५; पृष्ठ ६९]

कवि

"…हमारी अन्तःस्थ सुप्त भावनाओं को जाग्रत करने का सामर्थ्य

जिसमें होता है, वह कवि है।…"

—हिं० आ० का०, भाग ४, अध्याय १८, पृष्ठ ३३३। सस्तासंस्करण,१९३९]

काव्य-साहित्य

"…वही काव्य और वही साहित्य चिरञ्जीवी रहेगा जिसे लोग सुगमता से पा सकेंगे, जिसे वे आसानी से पचा सकेंगे।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, २३।११।'२४; पृष्ठ १२०, श्री दिलीप-कुमार राय के साथ बातचीत के सिलसिले में]

संगीत

"……संगीत जानने के मानी जीवन को संगीतमय बना देना है। हमारा जीवन सुरीला नहीं है इसी से तो आज हमारी दशा दयाजनक बनी हुई है।"

—हिं० न० जी०, ८।४।'२६; पृष्ठ २६५, अहमदाबाद राष्ट्रीय संगीत मण्डल के दूसरे वार्षिकोत्सव पर दिये गये भाषण से]

गन्दा साहित्य

"……कोई देश और कोई भाषा गन्दे साहित्य से मुक्त नहीं है। जबतक स्वार्थी और व्यभिचारी लोग दुनिया में रहेंगे तबतक गन्दा साहित्य प्रकट करनेवाले और पढ़नेवाले भी रहेंगे। लेकिन जब ऐसे साहित्य का प्रचार प्रतिष्ठित माने जानेवाले अख़बारों के द्वारा होता है, और उसका प्रचार कला या सेवा के नाम पर किया जाता है, तब वह भयङ्कर स्वरूप धारण करता है।"

—हिं० न० जी०, ६।३।'३०; पृष्ठ २२८]

आधुनिक साहित्य की प्रवृत्ति

"अत्यन्त आधुनिक साहित्य तो प्रायः यही शिक्षा देता है कि विषय-

भोग ही कर्त्तव्य है और पूर्ण संयम एक पाप है।"

—ह० से० २१।३।'३६; पृष्ठ ३७]

अखबार के कर्तव्य

"......किसी भी अखबार का पहला काम है, लोगों के भावों को समझकर प्रकट करना; दूसरा काम है, लोगों में जिन भावनाओं की ज़रूरत हो उन्हें जाग्रत करना; और तीसरा काम है, लोगों में अगर कोई ऐब हो तो उन्हें किसी भी मुसीबत की परवाह न कर बेधड़क सब के सामने रख देना।"

—१९०८ ई०; 'हिन्द स्वराज्य' से]

समाचारपत्र

"...समाचारपत्रों का सञ्चालन सेवा-भाव से ही होना चाहिए। समाचारपत्र एक भारी शक्ति है; परन्तु जिस प्रकार निरङ्कुश जल-प्रवाह कई गाँवों को डुबा देता और फसल को नष्ट-भ्रष्ट कर देता है, उसी प्रकार निरङ्कुश कलम की धारा भी सत्यानाश कर देती है। यह अङ्कुश यदि बाहरी हो तो वह इस निरङ्कुशता से भी अधिक जहरीला साबित होता है। अतः लाभदायक तो अन्दर का ही अङ्कुश हो सकता है।"

—हिं० आ० क० भाग ४, अध्याय १३; पृष्ठ ३१८। सस्ता संस्करण, १९३९]

संस्कृत का ज्ञान आवश्यक

"...उच्च कोटि की गुजराती, हिन्दी, बँगला, मराठी जाननेवाले के लिए संस्कृत जानना जरूरी है।"

× × ×

उर्दू स्वतन्त्र भाषा नहीं

"...उर्दू को मैंने पृथक भाषा नहीं माना, क्योंकि उसके व्याकरण

का समावेश हिन्दी में होता है।...”

—आत्मकथा: भाग १.अध्याय ५,पृष्ठ २०:सस्ता मंडल,सस्ता संस्करण १९३९]

भारतीय बनाम पाश्चात्य सभ्यता

“सब लोगों में सम्पूर्णता तो दुनिया के किसी भी देश में किसी भी सभ्यता के अन्दर नहीं आई, लेकिन यह तय है कि भारतीय सभ्यता की प्रवृत्ति नैतिकता के विकास की ओर है, जब कि पश्चिमी सभ्यता अनैतिकता को प्रोत्साहन देती है और इसीलिए मैंने उसे असभ्यता कहा है। पश्चिमी सभ्यता नास्तिक है, भारतीय सभ्यता आस्तिक। हिन्दुस्तान के हितैषियों को चाहिये कि इस बात को समझकर उसी श्रद्धा के साथ भारतीय सभ्यता से चिपटे रहें जिस तरह कि बच्चा अपनी माँ की छाती से चिपका रहता है।”

—१९०८; ‘हिन्द स्वराज्य’]

हमारी संस्कृति का भाण्डार

“मेरा तो यह निश्चित मत है कि दुनिया में किसी संस्कृति का भाण्डार इतना भरा-पूरा नहीं है जितना हमारी संस्कृति का है। हमने उसे जाना नहीं है, हम उसके अध्ययन से दूर रखे गये हैं और उसके गुणों को जानने और मानने का मौका हमें नहीं दिया गया है। हमने तो उसके अनुसार चलना करीब-करीब त्याग दिया है। बिना आचार के कोरा बौद्धिक ज्ञान वैसा ही है जैसा कि खुशबूदार मसाला लगाया हुआ मुर्दा।”

—यं० इं० । हिं० न० २।९।’२१]

भारतीय किसानों की सभ्यता

“...सब इतिहासकारों ने गवाही दी है कि जो सभ्यता भारत के

किसानों में पाई जाती है, दुनिया के और किन्हीं किसानों में नहीं पाई जाती।”

—हिं० न० जी०, ५।९।’२९; पृष्ठ २०]

भारतीय संस्कृति की गंगा

“लोकमान्य तिलक के हिसाब से हमारी सभ्यता दस हजार बरस पुरानी है। बाद के कई पुरातत्वशास्त्रियों ने उसे इससे भी पुरानी बताया है। इस सभ्यता में अहिंसा को परमधर्म माना गया है। इसलिए इसका एक नतीजा तो यह होना चाहिए कि हम किसी को अपना दुश्मन न समझें। वेदों के समय से हमारी यह सभ्यता चली आ रही है। जिस तरह गंगाजी में अनेक नदियाँ आकर मिली हैं, उसी तरह इस देश की संस्कृति-गंगा में भी अनेक संस्कृति रूपी सहायक नदियाँ आकर मिली हैं। इन सब का कोई सन्देश हमारे लिए हो सकता है तो यही कि हम सारी दुनिया को अपनायें और किसी को अपना दुश्मन न समझें।”

—हिं० विश्वविद्यालय, काशी; २१।१।४२; ह० से० १।२।’४२; पृष्ठ १९]

आधुनिक तृष्णा का मूल

“जहाँ आधुनिक सभ्यता का सब से प्रधान लक्षण मनुष्य का अपनी आवश्यकताओं को बेहद बढ़ा देना है, तहाँ प्राचीन पूर्वी सभ्यता का मुख्य लक्षण है इन आवश्यकताओं या कामनाओं को रोकना तथा उन पर कठोर नियंत्रण रखना। इस आधुनिक या पश्चिमी तृष्णा का खास कारण है भविष्य और ईश्वरीय शक्ति में सजीव श्रद्धा का अभाव। पूर्वी और प्राचीन सभ्यता के संयम की जड़ उस श्रद्धा और विश्वास में है जो कई बार लाचार होकर भी हमें मांगल्य और ईश्वरीय शक्ति के अस्तित्व में करना पड़ता है।”

—यं० इं०। हिं० न० जी०; २।६।’२७; पृष्ठ २३४]

———

: १० :

सत्याग्रह-विज्ञान

सत्याग्रह

"...सत्याग्रह एक ऐसी तलवार है जिसके सब ओर धार है। उसे जैसे चाहो वैसे काम में लाया जा सकता है। उसे काम में लानेवाला और जिसपर वह काम में लाई जाती है, दोनों सुखी होते हैं। खून न बहाकर भी वह बड़ी कारगर होती है। उसपर न तो कभी ज़ंग लगता है, और न कोई उसे चुरा ही सकता है।..."

—१९०८; 'हिन्द स्वराज्य']

× × ×

"मेरे लिए सत्याग्रह का नियम, प्रेम का नियम एक शाश्वत नियम है।"

× × ×

"इसका मूलार्थ सत्य को ग्रहण करना है। इससे यह सत्य-शक्ति है। मैंने इसे प्रेम-शक्ति या आत्म-शक्ति भी कहा है। सत्याग्रह का प्रयोग करने में, बिल्कुल प्रारम्भिक अवस्था में ही, मैंने यह देख लिया कि सत्य के अनुगमन में विरोधी के प्रति हिंसा करने की कोई गुंजाइश नहीं है; उसकी गलती तो धैर्य और सहानुभूति के द्वारा ही दूर करनी पड़ेगी। क्योंकि जो एक को सत्य जान पड़ता है वही दूसरे को गलत जान पड़ सकता है। धैर्य का अर्थ स्वयं कष्ट उठाना है। इसलिए सत्याग्रह का यह अर्थ लिया गया कि विरोधी को पीड़ा देकर नहीं बल्कि स्वयं कष्ट उठाकर सत्य की रक्षा करना।..."

—यं० इं०, १४ जनवरी,' २०]

"...आत्यन्तिक रूप में, यह शक्ति किसी भी प्रकार की आर्थिक या

दूसरी किसी भौतिक सहायता से स्वतन्त्र है; और शरीर-बल या हिंसा से तो अपने प्रारम्भिक रूप में भी यह बिल्कुल स्वतन्त्र है। हिंसा तो इस महती आध्यात्मिक शक्ति का तिरोभाव है।.........यह ऐसी शक्ति है जिसका प्रयोग व्यक्ति और समाज दोनों के द्वारा किया जा सकता है। राजनीतिक और घरेलू मामलों में एक समान इसका प्रयोग किया जा सकता है। सार्वदेशिक रूप से इसके प्रयोग का सम्भव होना इसके स्थायित्व और इसकी अजेय शक्ति का द्योतक है। पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे सब इसपर अमल कर सकते हैं। यह कहना बिल्कुल गलत है कि यह ऐसी शक्ति है जो दुर्बलों के द्वारा तभी तक काम में लाई जाती है जब तक वे हिंसा का सामना हिंसा से करने में असमर्थ होते हैं। जो अपने को दुर्बल समझते हैं उनके लिए तो इस शक्ति का प्रयोग करना असम्भव ही है। सफल सत्याग्रही केवल वे ही हो सकते हैं जो यह अनुभव करते हैं कि मनुष्य में कोई ऐसी चीज़ अवश्य है जो उसकी पशुवृत्ति से महान् है और उसकी पशुता उस महती शक्ति के सामने सदैव पराजित होती है। यह शक्ति हिंसा, या सब प्रकार के अत्याचार और अनीति, के लिए ठीक वही काम करती है जो प्रकाश अन्धकार के प्रति करता है। राजनीति में इसका प्रयोग इस अचल सिद्धान्त पर आश्रित है कि जनता की सरकार तभी तक सम्भव है जबतक लोग स्वेच्छापूर्वक या अनजाने शासित होने की स्वीकृति देते हैं।"

—'इंडियन ओपीनियन', गोल्डेन नम्बर से]

× × ×

"इसलिए जनता की ओर की लड़ाई प्रायः अन्यायपूर्ण कानूनों के रूप में, दूषण का विरोध करने में, व्यक्त होती है। जब आवेदन—

निवेदन के द्वारा तुम कानून बनाने वाले को उसकी ग़लती का अनुभव न करा सको और उस ग़लती के आगे सिर भी न झुकाना चाहो तो तुम्हारे लिए दो ही उपाय बच जाते हैं—एक शरीर-बल-द्वारा उसको अपनी बात मानने को मजबूर करना, दूसरा उसके क़ानूनों का भंग करने के दण्ड को निमन्त्रित करके स्वयं कष्ट सहन करना। इसीलिए सर्वसाधारण को सत्याग्रह मुख्यतः सविनय अवज्ञा या सविनय प्रतिरोध मालूम पड़ता है। यह सविनय ('सिविल') इस अर्थ में है कि यह अपराधमूलक ('क्रिमिनल') नहीं है।"

× × ×

"साधारण क़ानून तोड़नेवाला धोखे या छल से भंग करता है और उसके दण्ड से बचने की चेष्टा करता है; सत्याग्रही ऐसा नहीं करता। वह जिस राष्ट्र में रहता है उसके क़ानूनों को भय से नहीं बल्कि इसलिए मानता है कि वह उन्हें समाज के कल्याण के लिए हितकारी समझता है। पर कभी कभी ऐसे अवसर आ जाते हैं, यद्यपि साधारणतः ऐसे अवसर कम ही आते हैं—जब कुछ क़ानूनों को वह इतना अनीतिपूर्ण समझता है कि उनको मानना बेगैरती मालूम पड़ती है। तब वह खुले तौर पर, विनयपूर्वक, उनको भंग करता है और इस के लिए शान्ति के साथ दण्ड सहन करता है। कानून-निर्माताओं की कार्रवाई के विरुद्ध अपना विरोध प्रकट करने के लिए वह चाहे तो ऐसे और क़ानूनों का भंग करके राज्य से अपना सहयोग हटा लेने की उसे छूट है, जिनके तोड़ने में नैतिक दोष न होते हों।"

—'यंग इंडिया,' जनवरी १४, १९२० ई०]

× × ×

"अपने पूर्ण रूप में, विशुद्ध आत्मबल के प्रयोग से, तुरन्त कार्य-सिद्धि होती है। पर इस प्रयोग के लिए व्यक्तिगत आत्मा की दीर्घकालिक साधना नितान्त आवश्यक है—यहाँ तक कि एक पूर्ण सत्याग्रही को, यदि पूर्णतः नहीं तो लगभग एक पूर्ण मनुष्य तो होना ही चाहिए। इस दृष्टि से देखें तो सत्याग्रह सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च शिक्षण है। हम सब एका-एक ऐसे आदमी नहीं बन सकते। यदि मेरी बात ठीक है—और मैं जानता हूँ कि यह ठीक है—तो हममें सत्याग्रह की भावना जितनी ही अधिक होगी उतने ही अच्छे आदमी हम होते जायँगे। इसलिए, मैं समझता हूँ कि इसकी उपयोगिता विवाद से परे है, और यह एक ऐसी शक्ति है, जो सार्वदेशिक हो गई तो सामाजिक आदर्शों में क्रान्ति कर देगी और उस अनियन्त्रित शासन-क्रम और दिन-दिन बढ़ते हुए सैनिक-वाद का अन्त कर देगी जिसके नीचे पश्चिम के राष्ट्र कराह रहे और कुचले जाकर मृत्यु-मुख में जा रहे हैं, और जो पूर्व के राष्ट्रों को भी आत्मसात् करने के लक्षण प्रदर्शित कर रहा है।"

—'इंडियन ओपीनियन', गोल्डेन नम्बर]

अनोखी लड़ाई

"जिस सुधार की मुझे ज़रूरत है,······वह सुधार यदि ऊपर होगा तो व्यर्थ जायगा। वह अन्दर पैठना चाहिए। लोगों का हृदय बदल जाना चाहिए। भीतियुक्त शान्ति का स्वाँग नहीं, बल्कि ज्ञानपूर्वक उस का पालन होना चाहिए। खादी का दिखावा नहीं बल्कि उसका शौक पैदा होना चाहिए। चरखे की पूजा नहीं, बल्कि हर घर में धर्म मान-कर उसका उपयोग होना चाहिए। तभी हमारी जीत होगी। मन में गुलामी का सेवन करते रहेंगे तो स्वतन्त्रता कभी नहीं मिलने की।"

× × ×

यह सत्याग्रह की अर्थात् सत्य के आग्रह की कसौटी है। जगत् में किसी राष्ट्र ने आजतक केवल सत्य का दावा करके स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त की है। जिस तरह बन पड़ा उसी तरह स्वतन्त्रता, नहीं दूसरों पर अपनी सत्ता, प्राप्त करली है। इंग्लैण्ड स्वतन्त्र नहीं; वह तो सत्तावान है। उसने हमें गुलाम बनाया है। गुलाम को अपना मालिक स्वतन्त्र-सा ही मालूम पड़ता है और वह गुलाम भी उसी के जैसा होने का प्रयत्न करता है —अर्थात् दूसरों को गुलाम बनाने में दिलचस्पी लेता है। यह गुलाम स्वतन्त्र नहीं हो सकता। बल्कि हमेशा जबरदस्त का गुलाम बनता है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० ४।१२।'२१]

धर्मयुद्ध की खूबी

"· सत्याग्रह की यही खूबी है। वह खुद हमारे पास चला आता है। हमें उसे खोजने नहीं जाना पड़ता। यह गुण उसके सिद्धान्त में ही समाया हुआ है। जिसमें कोई बात छिपाई नहीं जाती, किसी तरह की चालाकी नहीं रहती और जिसमें असत्य की तो गुञ्जाइश ही नहीं, ऐसा धर्म-युद्ध अनायास ही आता है और धर्मनिष्ठ मनुष्य उसके स्वागत के लिए हमेशा तैयार रहता है। पहले से जिसकी रचना करनी पड़े वह धर्म-युद्ध नहीं। उसकी रचना और सञ्चालन करनेवाला तो ईश्वर है।"

—२ अप्रैल, १९२४ : 'दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह' की भूमिका से]

सत्याग्रही निर्भय पर नम्र होता है

"···सत्याग्रही हमेशा बलवान तो होता ही है, पर उसमें भीरुता की गन्ध तक नहीं आती परन्तु निर्भयता के हिसाब से उसकी नम्रता भी बढ़नी चाहिए। विवेकशून्य की निर्भयता उसे घमण्डी और उद्दण्ड

बनाती है। गर्व और सत्याग्रही के बीच तो समुद्र लहराता है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, २५।५।'२४; पृष्ठ ३३१]

सत्याग्रह की साधना

"......आत्मत्याग और अपनी प्रच्छन्न शक्तियों के ज्ञान के बहुत दिनों के अभ्यास से ही सत्याग्रह का भाव उदय हो सकता है। इससे मनुष्य की सारी जीवन-दृष्टि ही बदल जाती है।......जब एक बार इस शक्ति को वेग मिल गया और यदि वह काफी तीव्र हुआ तो यह सारे संसार में व्याप्त हो जा सकता है। आत्मा का यह अधिक से अधिक प्रकटीकरण है, इसलिए यह सर्वोत्तम शक्ति है।

—यं० इं०। हिं० न० जी०, २३।९'२६, पृष्ठ ४५]

सत्याग्रही और विनय

"...सत्याग्रही के लिए अविनयी होना तो दूध में जहर पड़ने के समान है।......विनय सत्याग्रह का सबसे कठिन अंश है। विनय का अर्थ यहाँ पर केवल मान के साथ वचन बोलना-भर ही नहीं है। विनय है विरोधी के प्रति भी मन में आदर रखना, सरल भाव से उसके हित की इच्छा करना और उसी के अनुसार अपना बर्ताव रखना।"

—हिं० आ० क०। भाग ५, अध्याय २४ : पृष्ठ ४८७। सस्तासंस्करण १९३९]

सत्याग्रह

"सत्याग्रह शब्द का निर्माता होने की हैसियत से मैं कह सकता हूँ कि प्रत्यक्ष या परोक्ष, गुप्त या प्रकट, अथवा मन, वचन और कर्म, किसी भी प्रकार से इसमें हिंसा का समावेश नहीं है। विरोधी का बुरा चाहना या उसे दुखाने के इरादे से उसके प्रति कठोर वचन निकालना, इसमें सत्याग्रह की मर्यादा का उल्लंघन होता है। क्षणिक आवेश में आकर शारी-

रिक हिंसा करना और दूसरे ही क्षण उसके लिए पछताना और फिर गई बात भूल जाना, इसकी अपेक्षा बुरा विचार अथवा कटुवचन सत्याग्रह की दृष्टि में कहीं अधिक भयङ्कर है। सत्याग्रह में नम्रता होती है। सत्याग्रही कभी किसी पर प्रहार नहीं करता। सत्याग्रह क्रोध या द्वेष का परिणाम नहीं होना चाहिये। उसमें धाँधली, अधीरता अथवा वाचालता नहीं हो सकती। सत्याग्रह तो बल-प्रयोग के सर्वथा विपरीत होता है। हिंसा के सम्पूर्ण त्याग में ही सत्याग्रह की कल्पना की गई है।"

—ह० से० । २८।४।'३३]

× × ×

"सत्याग्रह के सिवा सर्वोदय असम्भव है। यहाँ सत्याग्रह का धात्वर्थ लेना चाहिए। सत्य का आग्रह बगैर अहिंसा के हो नहीं सकता है। इसलिए सर्वोदय की सिद्धि अहिंसा की सिद्धि पर निर्भर है। अहिंसा की सिद्धि तपश्चर्या पर निर्भर है। तपश्चर्या सात्विक होनी चाहिये। उसमें अविश्रान्त उद्यम, विवेक इत्यादि समाविष्ट हैं। शुद्ध तप में शुद्ध ज्ञान होता है।"

—सर्वोदय; अगस्त, १९३८]

सत्याग्रह और कष्ट-सहन

"...यह याद रखना चाहिए कि सत्याग्रह अगर संसार की सब से बड़ी ताकत है तो इसके लिए दिल में क्रोध और दुर्भाव रखे बगैर अधिक से अधिक कष्ट-सहन की क्षमता भी आवश्यक है। अत्याचारी की करतूतों की खबरें अखबारों में प्रकाशित करना तो ठीक है, लेकिन अपार कष्ट-सहन की शाश्वत सान्त्वना के साथ सत्य की अन्तिम सफलता की ज्वलन्त श्रद्धा का भी होना आवश्यक है।"

—ह० से०, ४।३।'३९; पृष्ठ २२]

आवश्यक योग्यताएँ

१. ईश्वर में उसकी सजीव श्रद्धा होनी चाहिए, क्योंकि वही उसका आधार है।

२. वह सत्य और अहिंसा को धर्म मानता हो, और इसलिए उसे मनुष्य-स्वभाव की सुप्त सात्विकता में विश्वास होना चाहिए। अपनी तपश्चर्या के रूप में प्रदर्शित सत्व और प्रेम के द्वारा वह उस सात्विकता को जाग्रत करना चाहता है।

३. वह चरित्रवान हो और अपने लक्ष्य के लिए जान और माल कुरबान करने के लिए तैयार हो।

४. वह आदतन खादीधारी हो और कातता हो। हिन्दुस्तान के लिए यह लाजिमी है।

५. वह निर्व्यसनी हो, जिससे उसकी बुद्धि हमेशा स्वच्छ और स्थिर रहे।

६. अनुशासन के नियमों का पालन करने में हमेशा तत्पर रहता हो।

७. उसे जेल के नियमों का, जो कि खास तौर पर आत्म-सम्मान को भंग करने के लिए न बनाये गये हों, पालन करना चाहिए।

—ह० से०, २५।३।'३९; पृष्ठ ४४]

सत्याग्रह बनाम निःशस्त्र प्रतिकार

"सत्याग्रह और निःशस्त्र प्रतिकार में उतना ही अन्तर है जितना उत्तर और दक्षिण ध्रुव में हैं। निःशस्त्र प्रतिकार की मूल कल्पना ही यह है कि वह दुर्बलों का अस्त्र है। अपना उद्देश हासिल करने के लिए उसे शारीरिक बल या हिंसा से परहेज नहीं है। लेकिन सत्याग्रह की मूलभूत कल्पना यह है कि वह बलिष्ठों का अस्त्र है। उसमें किसी भी रूप या

प्रकार की हिंसा के लिए गुंजाइश नहीं है।"

—'सर्वोदय', अप्रैल' ३९]

सत्याग्रह का बल ईश्वर में श्रद्धा है

"सत्याग्रही का बल संख्या में नहीं, आत्मा में है। दूसरे शब्दों में ईश्वर में है।......उसकी ईश्वर में जिन्दा श्रद्धा होनी चाहिये। सत्याग्रही का दूसरा कोई नहीं है। ईश्वर का बल तभी आता है जब उसमें अनन्त श्रद्धा हो।"

अन्तःसाधन पर निर्भरता

"सत्याग्रही जानता है कि वह बाह्य साधन पर निर्भर नहीं रह सकता। वह अन्तःसाधन पर ही निर्भर रहता है। जिसकी ईश्वर पर अनन्य श्रद्धा है वह अपने पर श्रद्धा रखकर चलेगा।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, वृन्दावन (विहार) ३।५।'३९]

× × ×

"सत्याग्रही का बल ईश्वर ही है।...वह बाहरी बल पर भरोसा नहीं रखता। ईश्वर पर विश्वास भीतरी शक्ति है। इसलिए जो उसे नहीं मानते उनके लिए सत्याग्रह का मार्ग बन्द है।...जो ईश्वर को नहीं मानता, वह अन्त में हारेगा।...ईश्वर में विश्वास ही अहिंसा का बल है।

—गां० से० सं० सम्मेलन, वृन्दावन (विहार); ६।५।'३९]

× × ×

"...जब तक सत्याग्रही ऐसा न माने कि मेरे पीछे एक प्रचण्ड सूक्ष्म शक्ति है जो हर हालत में मुझे बल देगी तब तक वह जुल्म, क्लेश और अपमान सहकर अपनी अहिंसा कायम नहीं रख सकता। आज तो हमें ऐसा कोई कष्ट होता ही नहीं जिसे हम 'टार्चर' कह सकें। कोई हमें अङ्गार में थोड़े ही फेंक देता है या हमेशा थोड़े ही सुई भोंक कर

रखता है ? यह तो पराकाष्टा की निर्दयता हुई। इतने क्लेश सहकर भी जालिम के लिए हमारे मन में द्वेष न रहे, यह अहिंसा है। ऐसी पराकाष्ठा की अहिंसा, यन्त्रणाओं को सहते हुए भी मनुष्य अपने पुरुषार्थ से नहीं रख सकता। जब तक किसी तत्व में उसकी इतनी श्रद्धा न हो और वह ऐसा महसूस न करे कि मेरे पीछे एक प्रचण्ड शक्ति खड़ी है तबतक उसे ऐसी निर्दयता शान्ति से सहने में बल नहीं मिलेगा। यह शक्ति जो मदद देती है उसी का नाम ईश्वर है। ऐसे मौके पर जालिम पर दिल में भी रोष न करना इसी का नाम ईश्वर-निष्ठा है।"

—गां० से० सं० सम्मेलन, वृन्दावन (विहार); ६।५।'३९]

सत्याग्रही का शस्त्र

"सत्याग्रही का शस्त्र एक मात्र ईश्वर ही है, फिर चाहे उसे किसी नाम से पहचानें। उसके बिना वह राक्षसी शस्त्र धारण करने वालों के समान निर्बल-सा प्राणी है।"

—शिमला, २९.९।'४०; ह० से० १२।१०।'४०; पृष्ठ २९१]

× × ×

सत्याग्रह

".. अहिंसा के भक्तों की प्रार्थना व्यर्थ नहीं जा सकती। सत्याग्रह स्वयं आर्त्त हृदय की एक मूक और अचूक प्रार्थना है।"

—सेवाग्राम, १०।२।'४२, ह० से० १५।२।'४२; पृष्ठ ४०]

× × ×

सत्याग्रह जीने और मरने की कला

"सत्याग्रह की जड़ प्रार्थना में है। पाशवी शक्ति के अत्याचारों से बचने के लिए सत्याग्रही ईश्वर पर भरोसा रखता है। ऐसी हालत में आपको हमेशा इस बात का डर क्यों रहना चाहिए कि अंग्रेज या दूसरा कोई आप को धोखा देगा—ठग लेगा ? अगर कोई आप को ठगता है

तो नुक़सान उसी का है। सत्याग्रह की लड़ाई तो आत्मवीरों के लिए है, डरपोकों या अश्रद्धालुओं के लिए नहीं। सत्याग्रह तो हमको जीने और मरने की कला सिखाता है। मनुष्यों की दुनिया में लोगों का पैदा होना और मरना तो लाज़िमी है। मनुष्य को पशु से अलग करनेवाली चीज़ तो उसकी वह सजग चेष्टा है जिसके द्वारा वह अपनी आत्मा का साक्षात्कार किया चाहता है। गीता के दूसरे अध्याय के अठारह श्लोकों में, जो प्रार्थना के समय पढ़े जाते हैं, जीवन की कला का सार समाया हुआ है। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन के सवाल का जवाब देते हुए इन श्लोकों में स्थितप्रज्ञ, यानी सत्याग्रही, का वर्णन किया है।

"जीवन की कला के परिपाक रूप में मरण की कला भी आती है। मनुष्य मात्र को मरना तो है ही। आदमी बिजली के गिरने से मर सकता है, दिल की धड़कन के रुक जाने से मर सकता है या साँस रुँधने से भी मर सकता है, लेकिन कोई सत्याग्रही अपने लिए ऐसी मौत की न तो कामना करता है, न प्रार्थना। सत्याग्रही के लिए मरने की खूबी—कला—इस बात में है कि वह अपने कर्तव्य का पालन करते हुए हँसते—हँसते मौत का सामना करे...अपने दुश्मन को न मारने या उसको चोट न पहुँचाने की चाह रखना ही काफ़ी नहीं है। अगर आपका दुश्मन मारा जा रहा है और आप चुपचाप, तटस्थभाव से खड़े, इस चीज़ को देख रहे हैं, तो कहना होगा कि आप सत्याग्रही नहीं हैं। आपका धर्म है कि आप अपनी जान देकर भी उसे बचायें। अगर हिन्दुस्तान के हज़ारों लोग इस कला को सीख लें तो हिन्दुस्तान का सारा नक़शा ही बदल जाय...।"

—उरुली, २४-३-'४६। 'हरिजन' । ह० से० ७।४।'४६]

: ११ :

असहयोग-तत्त्व

कोई शत्रु नहीं

"हम मनुष्यों का विनाश करने को नहीं उठे हैं। हम किसी को शत्रु नहीं मानते। पृथिवी पर किसी भी प्राणी के प्रति हमारी दुर्भावना नहीं है। हम स्वयं अपने कष्ट-सहन से परिवर्तन लाना चाहते हैं···।"

—यं० इं० २७ मई, '२०]

× × ×

"असहयोग कोई निष्क्रिय (passive) स्थिति नहीं है; यह अत्यन्त सक्रिय स्थिति है—शारीरिक प्रतिरोध या हिंसा से कहीं अधिक क्रियाशील। मैं जिस अर्थ में असहयोग शब्द का प्रयोग करता हूँ उसमें उसे निश्चित रूप से अहिंसात्मक होना चाहिए, और इसीलिए न तो उसे दण्डात्मक और न प्रतिहिंसात्मक होना चाहिए, न द्वेष-दुर्भाव या घृणा पर आश्रित होना चाहिए। ·····"

—यं० इं०, २५ अगस्त, '२०]

× × ×

"असहयोग अनुशासन और उत्सर्ग का कार्य है, और इसमें विरोधी विचारों के प्रति धैर्य और आदर रखने की आवश्यकता पड़ती है। अगर हम अपने से बिल्कुल विरोधी विचारों के लिए पारस्परिक सहिष्णुता की भावना न विकसित कर सकें तो असहयोग असम्भव हो जायगा। मैंने कड़ुए अनुभवों के द्वारा अपने क्रोध पर क़ाबू रखने का महान् सबक़ सीखा है। जैसे सुरक्षित और नियन्त्रित ताप सूक्ष्म शक्ति (energy)

में बदल जाता है; इसी प्रकार अगर हम अपने क्रोध पर क़ाबू रख सकें तो उसमें ऐसी शक्ति पैदा हो सकती है जो दुनिया को हिला दे।"

—यं० इं०, १५ सितम्बर, '२०]

× × ×

"मेरा सदा यह दिखाने का तात्पर्य रहा है कि असम्मानपूर्ण उपायों द्वारा कोई सम्मानपूर्ण परिणाम नहीं निकल सकता। मैं स्वीकार करता हूँ कि सब असहयोगियों की प्रेरणाशक्ति प्रेम नहीं है बल्कि एक अर्थ-हीन घृणा है। मैं इसे अर्थहीन -व्यर्थ--कहता हूँ क्योंकि इन बहुतेरे असहयोगियों की घृणा का असहयोग की योजना में कोई अर्थ नहीं है। कोई आदमी घृणा के वश आत्मोत्सर्ग नहीं करता। वह अपने कल्पित शत्रु पर निस्सहाय-रूप से चोट पहुँचाने का प्रयत्न करता है। असहयोग में प्राप्य परिणाम दण्ड देना नहीं बल्कि न्याय प्राप्त करना है। घृणा का अन्त कभी न्याय में नहीं होता, प्रतिहिंसा में होता है: घृणा एक प्रकार का अन्ध उन्माद है।......"

—यं० इं०, ५ जनवरी, '२१]

× × ×

"हमारा असहयोग न अंग्रेजों से है, न पश्चिम से है; हमारा असहयोग इस प्रणाली से है......भौतिक सभ्यता और तत्सम्बन्धी लोभ और दुर्बलों के उत्पीड़न से है।"

—यं० इं०, १३ अक्तूबर, '२१]

प्रेम की चाबी

"जिस असहयोग में प्रेम नहीं वह राक्षसी है; जिसमें प्रेम है वह ईश्वरी है।...हमारे असहयोग के मूल में भी प्रेम है। उसके बिना सब

फीका, सब खाली है। प्रेम केवल मुख्य चाबी ही नहीं बल्कि केवल एक ही चाबी है।.. जो हमारे मत को न माने उन्हें प्रेम से जीतना तो धार्मिक वृत्ति है; और उनपर रोष करना राक्षसी, नास्तिक, वृत्ति है।"

× × +

"हमें शरम के साथ कबूल करना चाहिए कि हमारे त्याग में कुछ न कुछ रोष और ज़हर बाकी रहा है, और इसी से यह त्याग पूरी तरह फबा नहीं और फला भी नहीं। जितने आदमियों ने त्याग किया है उन्होंने यदि त्याग न करने वालों का द्वेष न किया होता तो हमारी हालत आज बहुत ही अच्छी होती और हम स्वराज-स्थापना की अवस्था में होते।"

"अतएव हमारा बड़े से बड़ा काम यही है कि चारों ओर प्रेम का छिड़काव करदें।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० ४।१२।' २१]

असहयोग जीवन-विधि भी है

प्रश्न – आप असहयोग को जीवन का एक सिद्धान्त मानते हैं या संग्राम की एक विधि? गांधीजी का उत्तर—"दोनों"।

––नवजीवन। हिं० न० जी० २४।८।'२४, पृष्ठ १४]

× × ×

"असहयोग और सविनय अवज्ञा सत्याग्रह रूपी एक ही वृक्ष की विभिन्न शाखाएँ हैं। यह मेरा कल्पद्रुम है...। सत्याग्रह सत्य का शोध है; और ईश्वर सत्य है। अहिंसा वह प्रकाश है जो मुझे सत्य को प्रकट करता है। मेरे लिए स्वराज उसी सत्य का एक अङ्ग है...।"

—'यं० इं०', २६ दिसम्बर, '२४]

'नहीं' कहने की शक्ति

"अंग्रेजी में एक बड़ा ज़बरदस्त शब्द है, आपकी फरांसीसी भाषामें भी वह है, दुनिया की सभी भाषाओं में है। वह शब्द है 'नहीं।' जो रहस्य हमारे हाथ में आ गया है वह यह है कि जब पूँजीशाही मजदूरों से 'हाँ' कराना चाहे और मज़दूरों के दिलों में 'ना' हो, तो उन्हें बुलन्द आवाज से 'नहीं' की गर्जना करनी चाहिए। जिस क्षण मजदूरों की समझ में यह आ जायगा कि वे जब 'हाँ' कहना चाहें तब 'हाँ' कहने के लिए और जब 'ना' कहना चाहें तब 'ना' कहने के लिए स्वतन्त्र हैं, उसी दिन वे पूँजीशाही की गुलामी से आजाद हो जायँगे, और पूँजीशाही को उनकी मन्नतें करनी होंगी। पूँजीशाही के पास तोपें और ज़हरीली हवाएँ भले ही हों, वे किसी काम की नहीं साबित होंगी। अगर मजदूर केवल 'नहीं' कहकर ही सन्तोष न मानें किन्तु अपने 'नहीं' को आचार में परिणत कर अपनी मान-रक्षा पर तुल जायँ तो पूंजीशाही मजबूर हो जायगी।"

—'सर्वोदय', जनवरी, ३९; पृष्ठ '३१; नीचे का उद्धरण]

असहयोग सहयोग का मङ्गलाचरण है!

"...यद्यपि असहयोग मेरे जीवन-सिद्धान्त का अङ्ग है, तथापि वह सहयोग का मङ्गलाचरण मात्र है। मैं काम करने के तरीकों, पद्धतियों और प्रणालियों से असहयोग करता हूँ, मनुष्यों से कदापि नहीं।"

—यं० ... इं० न० जी०, १२।१।'२२; पृष्ठ २९]

× × ×

असहयोग का रहस्य

"...मुझे पता नहीं, आपको कोबे नगर के तीन बन्दरों की मूर्ति

का हाल मालूम है या नहीं। उसमें तीन बन्दर हैं। एक अपना मुँह बन्द किये हुए, दूसरा आँखें बन्द किये हुए और तीसरा कान बन्द किये हुए हैं। वे संसार को यह उपदेश दे रहे हैं कि मुँह से बुरे वचन न निकालो, आँखों से बुरी बातें न देखो और कानों से गन्दी बातें मत सुनो। असहयोग का यही रहस्य है।"

—गांधी से० सं० सम्मेलन, मालिकान्दा (बंगाल), २१।२।'४०]

: १२ :

सर्वोदय का आर्थिक पक्ष

सर्वोदय

"सच तो यह है कि अहिंसा का पुजारी—'अधिक से अधिक लोगों का अधिक से अधिक सुख' वाले—उपयोगितावादी सिद्धान्त को तो मान ही नहीं सकता। वह तो सबके अधिक से अधिक हित के लिए कोशिश करेगा और अपने ध्येय को प्राप्त करने के प्रयास में मर मिटेगा। वह दूसरों को जिलाने के लिए खुद मरने को सदा तत्पर रहेगा। इस तरह मरने से वह दूसरों की ही नहीं, बल्कि अपनी भी सेवा करेगा। सबके सर्वोच्च हित में ज्यादा लोगों का अधिकतम सुख तो आ ही जाता है। इसलिए एक हद तक वह और उपयोगितावादी सहयात्री भले ही रहें। लेकिन एक दिन ऐसा आने ही वाला है, कि जब उन दोनों को एक दूसरे का साथ छोड़ना पड़ेगा। यही नहीं, शायद एक दूसरे से विरुद्ध दिशा में भी काम करना पड़े।

"उपयोगितावादी के सिद्धान्त में स्वयं अपनी आहुति दे देने की गुंजाइश बिल्कुल नहीं। लेकिन ब्रह्मवादी तो अपना भी बलिदान कर देगा।"

—'सर्वोदय,' सितम्बर,' ३८, प्रथम कवर का उद्धरण]

धनवान ही साम्राज्य के स्तम्भ हैं !

"...अमेरिका के राकफेलर से भारतीय राकफेलर अच्छा होगा, यह समझना भूल है। सच तो यह है कि गरीब हिन्दुस्तान स्वतन्त्र हो सकता है लेकिन चरित खोकर धनी बने हुए हिदुस्तान का स्वतन्त्र होना मुश्किल है।

"...अंग्रेज़ी राज को क़ायम रखनेवाले ये धनी ही हैं, क्योंकि उनका स्वार्थ इसी में है। पैसा आदमी को रङ्क बना देता है...।"

—१९०८ ; 'हिन्द स्वराज्य']

स्वालम्बन की मर्यादा

"...हर बात में हमें 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' के सिद्धान्त का प्रयोग कर देखना चाहिए क्योंकि मध्यम मार्ग ही सच्चा मार्ग है। स्वावलम्बन स्वमान और परमार्थ की पूर्ति के लिए जरूरी है। अगर वह इससे आगे बढ़ता है तो दोष रूप बनता है। ईश्वर का साम्राज्य कबूल करने के लिए मनुष्य को नम्रता, और आत्महित की साधना के लिए सम्मान-पूर्ण परावलम्बन दोनों आवश्यक हैं। यही सुवर्ण मध्यम मार्ग है। जो इसे छोड़ता है वह 'अतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्ट' हो जाता है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, ७।३।'२९; पृष्ठ २२६]

सच्चा अर्थशास्त्र

"...अर्थ दो प्रकार के हैं; परम और स्व। परम अर्थ ग्राह्य है, धर्म का अविरोधी है; स्व अर्थ त्याज्य है, धर्म का विरोधी है। खादी-शास्त्र परमार्थ का शास्त्र है, और इसी कारण सच्चा अर्थशास्त्र भी है।"

—हिं० न० जी०, १२।९।'२९; पृष्ठ २९]

आजीविका का अधिकार, धनोपार्जन का नहीं

"...प्रत्येक उद्यमी मनुष्य को आजीविका पाने का अधिकार है, मगर धनोपार्जन का अधिकार किसी को नहीं। सच कहें तो धनोपार्जन स्तेय है, चोरी है। जो आजीविका से अधिक धन लेता है, वह जान में हो या अनजान में, दूसरों की आजीविका छीनता है।"

—हिं० न० जी० १२।९।' २९; पृष्ठ २९]

दान नहीं, काम

"जो भूखे और बेकार हैं उन्हें भगवान् केवल एक ही विभूति के रूप में दर्शन देने की हिम्मत कर सकते हैं; वह विभूति है काम और अन्न के रूप में वेतन का आश्वासन।"

× × ×

"नंगों को जिनकी ज़रूरत नहीं है, ऐसे कपड़े देकर मैं उनका अपमान नहीं करना चाहता। मैं उसके बदले उन्हें काम दूँगा क्योंकि उसी की उन्हें सख्त जरूरत है। मैं उनका आश्रयदाता बनने का पाप कभी नहीं करूँगा। लेकिन यह महसूस करने पर कि उनको तबाह करने में मेरा भी हाथ रहा है, मैं उन्हें समाज में सम्मान का स्थान दूँगा। उन्हें जूठन या उतरन तो हर्गिज़ न दूँगा। मैं उन्हें अपने अच्छे से अच्छे खाने और कपड़े में हिस्सेदार बनाऊँगा और उनके परिश्रम में खुद योग दूँगा।"

× × ×

"बिना प्रामाणिक परिश्रम के किसी भी चंगे मनुष्य को मुफ्त में खाना देना मेरी अहिंसा बर्दाश्त ही नहीं कर सकती। अगर मेरा वश चले तो जहाँ मुफ्त खाना मिलता है ऐसा प्रत्येक 'सदावर्त' या 'अन्न-छत्र' मैं बन्द करा दूँ। उनकी बदौलत राष्ट्र का पतन हुआ है, और आलस्य, सुस्ती, दम्भ तथा गुनहगारी को बढ़ावा मिला है।"

—'सर्वोदय', दिसम्बर,' ३८ के प्रथम कवर का उद्धरण]

अन्नब्रह्म

"……करोड़ों लोग बेकारी के कारण उत्तरोत्तर अधिकाधिक पतित हो रहे हैं, उनकी आत्म-मर्यादा नष्ट हो चुकी है, और उनमें ईश्वर के प्रति कोई श्रद्धा नहीं रह गई है। कल्पना कीजिए, यह कैसा भयानक सङ्कट है। उन्हें ईश्वर का सन्देश सुनाने की हिम्मत मैं नहीं

कर सकता। सामने यह जो कुत्ता बैठा है उसे ईश्वर का सन्देश सुनाना और जिनकी आँखों में रोशनी नहीं है, रोटी का एक टुकड़ा ही जिनका देवता है, उन्हें ईश्वर का सन्देश सुनाना एक-सा ही है। मैं पवित्र परिश्रम का पैगाम लेकर ही ईश्वर का सन्देश उन्हें सुनाने जा सकता हूँ। सवेरे मजेदार कलेवा करके सुग्रास भोजन की प्रतीक्षा में बैठे हुए हम-जैसे लोगों के लिए ईश्वर के विषय में वार्तालाप करना आसान है, लेकिन जिन्हें दोनों जून भूखे रहना पड़ता है उनसे मैं ईश्वर की चर्चा कैसे करूँ? उनके सामने तो परमात्मा केवल दाल-रोटी के ही रूप में प्रकट हो सकते हैं।"

—१५।१०।'३१; 'सर्वोदय', वर्ष १, अङ्क ८, मुखपृष्ठ]

आर्थिक सङ्गठन

"मेरी राय में हिन्दुस्तान की और सारे संसार की अर्थ-व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि उसमें बिना खाने और कपड़े के कोई भी रहने न पावे। दूसरे शब्दों में हर एक को अपनी गुज़र-बसर के लिए काफ़ी काम मिलना ही चाहिए। यह आदर्श तभी सिद्ध होगा जब कि जीवन की प्राथमिक आवश्यकताएँ पूरी करने के साधनों पर जनता का अधिकार रहेगा। जिस प्रकार भगवान की पैदा की हुई हवा और पानी सबको मुफ्त मयस्सर होता है, या होना चाहिए, उसी तरह ये साधन भी सबको बे रोक-टोक के मिलने चाहिएँ। उन्हें दूसरों को लूटने के लिए लेन-देन की चीज़ हरगिज़ नहीं बनने देना चाहिए।"

—'सर्वोदय', जनवरी,' ३९ : अन्तिम कवर पर उद्धरण]

माँग और पूर्ति का आर्थिक सिद्धान्त

"......सस्ते महँगे का प्रश्न झूठा है। माँग और पूर्ति का कानून

मानवी नहीं, राक्षसी है।"

"......सच्चा अर्थशास्त्र वही है जो नीति से चलेगा। इसमें निष्फल हों तो भी माना कि सफल हुए।"

—गांधी सेवासंघ सम्मेलन, सावली, ५ मार्च,' ३६]

धन का विषम विभाजन

"......जनता की आर्थिक स्थिति में समानता पैदा की जाय। मौजूदा वक्त में जो घोर असमानताएँ हैं, उनका एक गहरा सामाजिक बुराई के रूप में मुकाबला किया जाना चाहिए। किसी स्वस्थ समाज के अन्दर चन्द आदमियों में धन का केन्द्रित हो जाना और लाखों का बेकार होना एक महान् सामाजिक अपराध या रोग है, जिसका इलाज अवश्य होना चाहिए।"

—सेवाग्राम ४।६।'४०;ह० से० ८।६'४०; पृष्ठ १३८]

वैभव की मर्यादा

"...कम से कम मेहनत करके दुनिया के सब लोग एक समान व अच्छा से अच्छा जीवन बितावें, इस आदर्श के लिए यत्न करना मानों आकाश के फूल तोड़ना है। अच्छे से अच्छा यानी ज़्यादा से ज़्यादा अच्छा अर्थात् वैभवशाली जीवन। समष्टि के लिए ऐसे अमर्यादित जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। जब सब मर्यादा छोड़ दी जाय तो आदमी ठहरेगा कहाँ जाकर ? इसीलिए वेद वाक्य इससे ठीक उलटा है—उच्च विचार और सादा जीवन। यही सच्चा मन्त्र है।... हिन्दुस्तान के करोड़ों लोगों के लिए हम आमदनी की एक ऐसी हद बाँध सकते हैं कि कम से कम इतना तो सब को मिल जाय। इस आदर्श तक पहुँचने की कल्पना की जा सकती है। पर इस आदर्श

को प्राप्त करने के लिए यत्न आवश्यक है।"

—सेवाग्राम ९।१०।'४०, ह०सें०, १९।१०।'४०; पृष्ठ ३४१]

आर्थिक समानता

"...यह चीज़ अहिंसक स्वतन्त्रता की मानो गुरु-कुञ्जी है। आर्थिक समानता के प्रयत्न के माने पूँजी और श्रम के शाश्वत विरोध का परिहार करना है। उसके मानी ये हैं कि एक तरफ से जिन मुट्ठी-भर धनाढ्यों के हाथ में राष्ट्र की सम्पत्ति का अधिकांश इकट्ठा हुआ है, वे नीचे को उतरें, और जो करोड़ों लोग भूखे और नंगे हैं, उनकी भूमिका ऊँची उठे। जबतक मालदार लोगों और भूखी जनता के बीच यह चौड़ी खाई मौजूद है तबतक अहिंसक राज्य-पद्धति सर्वथा असम्भव है। नई दिल्ली के राजमहलों और गरीब मजदूर की झोपड़ियों में जो विषमता है वह स्वतन्त्र भारत में एक दिन भी नहीं टिक सकती क्योंकि उस समय गरीबों को उतना ही अधिकार होगा जितना कि धनवान को। अगर सम्पत्ति का और सम्पत्ति से होने वाली सत्ता का खुशी से त्याग नहीं किया जायगा और सार्वजनिक हित के लिए उनका संविभाग नहीं किया जायगा, तो हिंसक क्रान्ति और रक्तपात अवश्यम्भावी है। मेरे ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का जो मखौल किया गया है उसके बावजूद भी मैं उस पर कायम हूँ। यह सच है कि उसे कार्यान्वित करना मुश्किल है। परन्तु अहिंसा की सिद्धि भी तो उतनी ही मुश्किल है।..."

—बारडोली, १३।१२।'४१]

आर्थिक समानता का अर्थ

"आर्थिक समानता की मेरी कल्पना का यह अर्थ नहीं कि हर

एक को शब्दशः एक ही एक रक़म दी जाय। उसका सीधा-सादा मतलब यह है कि हर एक स्त्री या पुरुष को उसकी ज़रूरत की रक़म मिलनी ही चाहिए। मसलन, सर्दियों में मुझे दुशाले की ज़रूरत पड़ती है, जबकि मेरे भतीजे के लड़के कनु गांधी को, जो मेरे पुत्र के समान है, एक भी गरम कपड़े की ज़रूरत नहीं पड़ती। मुझे बकरी के दूध, संतरे और दूसरे फलों की जरूरत होती है। कनु का काम मामूली खूराक से चल जाता है। मुझे कनु से ईर्ष्या होती है, मगर उसका कोई मतलब नहीं। कनु नौजवान है; मैं ७६ साल का बूढ़ा हूँ। मेरे खाने का खर्च कनु से ज्यादा आता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हम दोनों में आर्थिक असमानता है। हाथी को चींटी से हजारगुना ज्यादा खाना लगता है, मगर यह असमानता का सूचक नहीं। इसलिए आर्थिक असमानता का सच्चा अर्थ है—'हर एक को उसकी ज़रूरत के माफिक दिया जाय।' मार्क्स की व्याख्या भी यही है। अगर कोई अकेला आदमी एक औरत और चार बच्चों वाले आदमी के बराबर की माँग करता है, तो इसको आर्थिक समानता के सिद्धान्त का भंग कहा जायगा।

"किसी को भी उच्चवर्ग और आम जनता के, राजा और रंक के बीच के बड़े भारी भेद को यह कहकर उचित नहीं मान लेना चाहिए कि पहले की ज़रूरतें दूसरे से बढ़ी हुई हैं। यह बेकार की दलील और मेरे तर्क मज़ाक का उड़ाना होगा। आज के अमीर और गरीब के भेद से दिल को बड़ी चोट पहुँचती है। विदेशी नौकरशाही और देश के रहनेवाले—शहरी लोग—गाँव के गरीबों का शोषण करते हैं। गाँव वाले अन्न पैदा करते हैं और खुद भूखों मरते हैं। वे दूध पैदा करते हैं

और उनके बच्चों को दूध की एक बूंद मयस्सर नहीं होती। यह कितना शर्मनाक है। हर एक को पौष्टिक भोजन, रहने के लिए उम्दा मकान, बच्चों की तालीम के लिए हर तरह के सुभीते और दवा-दारू की मदद मिलनी चाहिए।"

—पूना, ४–२–'४६। 'हरिजन'। ह० से०, ३१।३।'४६]

वर्ग-युद्ध

"....यह कहना सही नहीं है कि 'मैं वर्ग-युद्ध के अस्तित्व में विश्वास नहीं करता।' जिस चीज में मैं विश्वास नहीं करता वह है वर्ग-युद्ध को उकसाना या उत्तेजना देना और उसे जारी रखना। दिन-दिन मेरा यह विश्वास बढ़ता ही जाता है कि वर्ग-युद्ध को न होने देना पूर्णतया सम्भव है।...श्रमजीवियों के अपने श्रम की प्रतिष्ठा पहचानते ही रुपया-पैसा अपने उचित स्थान पर आ जायगा,...क्योंकि रुपये-पैसे में श्रम का मूल्य अधिक है।"

—ह० से०, अक्तूबर,' ३५। 'यह पैबन्दगीरी नहीं है' लेख से]

समाजवाद और गांधी-सिद्धान्त

[प्रश्न—आप के मत में और समाजवाद में कौनसी समानता और भेद है]

"समानता तो काफी है। 'सबै भूमि गोपाल की' बन जाय, यह तो मैं भी चाहता हूँ। सब सम्पत्ति प्रजा की है, यह भी मैं मानता ही हूँ। भेद यह है कि वे लोग मानते हैं कि इसका प्रारम्भ हम सब एक साथ करें। मैं कहता हूँ, अपने व्यक्तिगत आचार में तो इसका प्रारम्भ हमें तुरन्त कर देना चाहिये। यदि हमारी ऐसी श्रद्धा है, तो कम से कम हम अपनी निजी जायदाद तो समाज को अर्पण कर दें। एक भी कौड़ी जबतक कोई रक्खेगा, तबतक वह समाजवादी नहीं है। वे कानून से

काम लेना चाहते हैं। कानून में दबाव होगा। आज वे यह सब जो कहते नहीं हैं, इसका कारण तो यह है कि यह उनके बस की बात नहीं है—असमर्थ साधु हैं। कम्यूनिस्ट—समाजवादी—जबर्दस्ती करना चाहते हैं। पर वे लाचार हैं। हम डेमोक्रैट—जनसत्तावादी—हैं।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, सावली, ४ मार्च,' ३६]

समाजवाद और गांधीवाद का अन्तर

"...समाजवादी और मुझमें यह बड़ा भारी भेद है। उसका सिद्धान्त यह है कि पहले सारी दुनिया को अपने ख्याल की बना लें, और फिर सब लोग यह करें। एक एक के आचरण करने की कोई बात उनकी योजना में नहीं है। अहिंसा मार्ग यह नहीं है। उसका प्रारम्भ व्यक्तिगत आचार से हो सकता है।..."

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, डेलांग, २६।३।'३८]

× × ×

गांधी जी का समाजवाद

"मेरे समाजवाद का अर्थ है—'सर्वोदय।' मैं गूँगों, बहरों और अंधों को मिटाकर उठना नहीं चाहता। उनके समाजवाद में शायद इनके लिए कोई जगह नहीं है। भौतिक उन्नति ही उनका एक मात्र मक़सद है। मैं अपने व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए आज़ादी चाहता हूँ।...दूसरी क़िस्म के समाजवाद में व्यक्तिगत आज़ादी नहीं है। वहाँ आपका कुछ नहीं है। आपका शरीर भी आपका नहीं।"

—पंचगनी २७।७।'४६। हरिजन। ह० से० ४।८।'४६]

मानव समाज में यन्त्रों का स्थान

[प्रश्न—आप यन्त्रों के सर्वथा विरुद्ध हैं न ?]

"....कैसे हो सकता हूँ ? जब मैं समझता हूँ कि मेरा शरीर ही एक बड़ा नाजुक यन्त्र है तब यन्त्रों के खिलाफ होकर मैं कहाँ रह सकता हूँ ?...मेरा विरोध यन्त्रों के सम्बन्ध में फैले दीवानेपन के साथ है, यन्त्रों के साथ नहीं। परिश्रम का बचाव करनेवाले यन्त्रों के सम्बन्ध में लोगों का जो दीवानापन है उसी से मेरा विरोध है। परिश्रम की बचत इस हद तक की जाती है कि हजारों को, आखिर,भूखों मरना पड़ता है, और उन्हें बदन ढकने तक को कुछ नहीं मिलता। मुझे भी समय और परिश्रम का बचाव अवश्य करना है, लेकिन वह मुट्ठी भर आदमियों के लिए नहीं, बल्कि समस्त मानव जाति के लिए। समय और परिश्रम का बचाव करके मुट्ठी भर आदमी धनाढ्य हो बैठें, यह मेरे लिए असह्य है। मैं तो चाहता हूँ, हर एक का समय और परिश्रम बच जाय, सबको खाना मिल सके, सब पहन-ओढ़ सकें, सर्वोदय हो ! यही मेरी अभिलाषा है। आज यन्त्रों के कारण लाखों की पीठ पर मुट्ठी भर आदमी सवार हो बैठे हैं और उन्हें सता रहे हैं। क्योंकि इन यन्त्रों के चलाने के मूल में लोभ है, धनतृष्णा है; जन-कल्याण की भावना नहीं है।"

× × ×

[प्रश्न—तो, बापू जी, आप यन्त्रों के दुरुपयोग के विरुद्ध हैं, सदुपयोग के विरुद्ध नहीं ?]

..."हाँ, लेकिन इसको भी ठीक-ठीक समझ लो। ये धन-प्राप्ति के साधन पहले दूर करने होंगे, तभी यन्त्रों का सदुपयोग हो सकेगा।

तब कारीगरों के ऊपर असह्य बोझ न रहेगा। तब वे केवल काम करनेवाले ही न रहकर मनुष्य बन जायँगे। यन्त्र भले ही कल्याण-साधक बने रहें मैं उनका सर्वथा नाश नहीं चाहता। मैं केवल उनकी मर्यादा बाँधना चाहता हूँ।"

× × ×

[प्रश्न—क्या इस विषय के अन्त तक जाने पर यह न कहना पड़ेगा कि सभी यन्त्र अनिष्टकारी हैं?"]

"शायद कहना पड़े। किन्तु जबतक यन्त्र मनुष्य पर हमला नहीं करता तबतक उसे सहन कर सकते हैं। मनुष्य को जब तक पंगु नहीं बना देता है, तबतक भी वह सहन किया जा सकता है। कुछ यन्त्र तो उपयोगी रहेंगे ही। सिंगर की सीने की मशीन को ही लो। बड़ी उपकारक वस्तुओं में से यह भी एक है। कैसे प्रेमशौर्य की कथा इसकी खोज के सम्बन्ध में है। सिंगर ने देखा कि उसकी पत्नी सारे दिन कपड़ों पर झुक-झुककर, आँखों पर ज़ोर देकर, आहिस्ता-आहिस्ता टाँके मारती है और बिल्कुल थक जाती है। उसके दिल में यह बात चुभ गई। और अन्त में अपने प्रेम के बल पर उसने सीने की ही मशीन खोज निकाली। इससे उसने केवल अपनी पत्नी की ही मेहनत नहीं बचाई है बल्कि हरएक शख्स की, जो उसे खरीद सकता है, मेहनत बचाई है।"

× × ×

[प्रश्न—किन्तु यदि हम ऐसी मशीनों को स्वीकार करें तो हमें इन मशीनों के बनाने के कारखानों को भी स्वीकार करना होगा न?]

"हाँ, किन्तु ऐसे कारखाने किसी की निजी सम्पत्ति न होंगे बल्कि

सरकारी मिल्कियत होंगे। इतना 'सोशलिस्ट' मैं हूं।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, २।११।'२४; पृष्ठ ९०-९१ श्री रामचन्द्रन से बातचीत के सिलसिले में]

× × ×

ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त पर प्रकाश

प्रश्न—क्या खुली या गुप्त हिंसा के बिना पूंजी जमा करना संभव है?

उत्तर—व्यक्ति जब तक हिंसात्मक तरीका न ग्रहण करें तब तक पूँजी जमा होना संभव नहीं है किन्तु एक अहिंसक समाज में स्टेट (राज्य) के द्वारा पूँजी का जमा किया जाना न केवल संभव बल्कि इष्ट और आवश्यक है।

प्रश्न—आदमी भौतिक और नैतिक दोनों प्रकार की दौलत समाज के दूसरे अंगों की मदद या सहयोग से ही जमा करता है तब उसका थोड़ा सा हिस्सा भी केवल अपने निजी लाभ के लिए उपयोग करने का नैतिक अधिकार उसे है?

उत्तर—नहीं, बिलकुल नहीं।

प्रश्न—किसी भी ट्रस्टी का उत्तराधिकारी कौन हो इसका फैसला किस तरह किया जाय? खास ट्रस्टी को सिर्फ़ अपने उत्तराधिकारी के नाम की दरख्वास्त करने का अधिकार हो किन्तु उसकी दरख्वास्त पर अन्तिम स्वीकृति देने का अधिकार स्टेट के हाथ में ही न रखा जाय?

उत्तर—उत्तराधिकारी पसन्द करने का अधिकार तो अव्वल ट्रस्टी बनने वाले खास मालिक का ही रहे, मगर उसकी दरख्वास्त

मंजूर या न मंजूर करने का अधिकार स्टेट के हाथ में रहना चाहिए।

—सतघरिया (नोआखाली) २।२।४७। हरिजन १६।२।४७; पृष्ठ २५]

पश्चिम की स्पर्द्धा सर्वनाश का पथ है

"..... हमें समझ लेना चाहिए कि पाश्चात्य लोगों के साधनों द्वारा पश्चिमी देशों की स्पर्धा में उतरना अपने हाथों अपना सर्वनाश करना है। इसके विपरीत अगर हम यह समझ सकें कि इस युग में भी जगत् नैतिक बल पर ही टिका हुआ है, तो अहिंसा की असीम शक्ति में हम अडिग श्रद्धा रख सकेंगे और उसे पाने का प्रयत्न कर सकेंगे।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, ५।९।'२९; पृष्ठ २३]

× × ×

ग्रामों का सर्वनाश

"...हमारे सामने जो कुछ हो रहा है, उसे हम देख रहे हैं। आटे की छोटी-छोटी मिलें हाथ की चक्कियों को, तेल की मिलें गाँव की ढेंकी को और शक्कर की मिलें गुड़ बनाने के ग्रामीण साधनों आदि को विलुप्त करती जा रही हैं। ग्रामीण श्रम के इस प्रकार उठजाने से ग्रामवासी कङ्गाल हो रहे हैं और धनी लोग मालदार बन रहे हैं। अगर काफी लम्बे अरसे तक यही क्रम चलता रहा तो और किसी प्रयत्न के बगैर ही गाँवों का नाश हो जायगा।"

—ह० से०: २०।६।'३६: पृष्ठ १४०]

: १३ :

देशधर्म

राजनैतिक आदर्श

"मेरी दृष्टि से राजनैतिक सत्ता हमारा ध्येय नहीं हो सकता। जिन साधनों की बदौलत जीवन के प्रत्येक विभाग में अपनी उन्नति करने की शक्ति लोगों में आती है उनमें से राजनैतिक सत्ता एक है। राष्ट्र के प्रतिनिधियों-द्वारा राष्ट्रीय जीवन का नियमन करने की शक्ति का ही नाम राजनैतिक सत्ता है। यदि राष्ट्रीय जीवन इतना पूर्ण हो जाय कि वह स्वनियंत्रित रहे तो प्रतिनिधित्व की आवश्यकता ही नहीं रहती। वह एक सुसंस्कृत अराजकता की अवस्था होगी जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपना ही शासक होगा। वह अपना नियमन आपही इस तरह करेगा कि जिससे उसके पड़ोसी के हित में बाधा न हो। आदर्श स्थिति में राज्य-संस्था ही नहीं रहेगी तो फिर राजनैतिक सत्ता कहाँ से आयेगी! इसीलिए थोरो ने अपने अभिजात सूत्र में कहा है कि सब से बढ़िया सरकार वह है जो कम से कम शासन करती है।"

—'सर्वोदय', जनवरी,' ३९, प्रथम कवर का उद्धरण]

देश-भक्ति

"मेरी देशभक्ति कोई ऐसी ऐकान्तिक वस्तु नहीं है। वह सर्व-व्यापिनी है। मुझे उस देश-भक्ति का त्याग करना चाहिए जो दूसरे राष्ट्रों को आफत में डालकर, उन्हें लूटकर, बड़प्पन पाना चाहती है। ...यही नहीं मेरा धर्म और तज्जन्य मेरी देश-भक्ति सर्वजीवन-व्यापिनी है। मैं केवल मानव प्राणियों से ही भाई-चारे का सम्बन्ध स्थापित

करना नहीं चाहता, बल्कि प्राणिमात्र से एकता का सम्बन्ध जोड़ना—उसका अनुभव करना चाहता हूँ।…”

—यं० इं० । हिं० न० जी० ४।४।’२९; पृष्ठ २५८]

प्रान्तीयता का विष

“हमें प्रान्तवाद को भी मिटाना चाहिए। यदि आन्ध्रवाले कहें कि आन्ध्र आन्ध्र के लिए है, उत्कल-निवासी कहें कि उत्कल उत्कल-वासियों के लिए है तो इस तरह काफी प्रान्तीयता आ जाती है। सच तो यह है कि आन्ध्र और उत्कल दोनों को देश और जगत् के लिए कुर्बान होने के लिए तैयार होना है।…”

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, डेलांग, २५ मार्च,’ ३८]

नीतिशून्य राजनीति

“…मैं देश की आँख में धूल न झोंकूँगा। मेरे नज़दीक धर्म-विहीन राजनीति कोई चीज़ नहीं है। धर्म के मानी वहमों और गतानु-गतिकत्व का धर्म नहीं, द्वेष करनेवाला और लड़नेवाला धर्म नहीं, बल्कि विश्वव्यापी सहिष्णुता का धर्म। नीतिशून्य राजनीति सर्वथा त्याज्य है।”

—साबरमती आश्रम, २६।११।’२४। यं० इं०। हिं० न० जी० ३०।११।’२४; पृष्ठ १२४]

धर्म और राजनीति

“…मैं धर्म से भिन्न राजनीति की कल्पना नहीं कर सकता। वास्तव में धर्म तो हमारे हर एक कार्य में व्यापक होना चाहिए। यहाँ धर्म का अर्थ कट्टर पन्थ से नहीं है। उसका अर्थ है—‘विश्व की एक नैतिक सुव्यवस्था’।”

—ह० से०। १०।२।’४०; पृष्ठ ४१५]

मिथ्या राजनीति

"...हम तो तीस कोटि के साथ अद्वैत सिद्ध करना चाहते हैं! यह तभी होगा जब कि हम शून्यवत् बनेंगे। हमें अधिकार से क्या काम? सत्ता का राजकारण मिथ्या है। हमें लोगों को सच्चा राजकारण बताना चाहिए। जो काम दूसरे लोग नहीं करते, बल्कि जिसे वे घृणा की दृष्टि से देखते हैं, वही रचनात्मक काम हम करेंगे।"

—गां० से० सं० सम्मेलन, मालिकान्दा (बंगाल), २२।२।'४०]

समाज से धर्म का बहिष्कार असम्भव

"...समाज से धर्म को निकालकर फेंक देने का प्रयत्न बाँझ के घर पुत्र पैदा करने जितना ही निष्फल है, और अगर कहीं सफल हो जाय तो समाज का उसमें नाश है।"

—सेवाग्राम, ६।७।'४०, ह० से० २४।८।'४०; पृष्ठ २३२]

शरीरबल तथा आत्मबल से प्राप्त सत्ता

"शरीरबल से प्राप्त की हुई सत्ता मानवदेह की तरह क्षण-भङ्गुर होगी, जब कि आत्म-बल से प्राप्त सत्ता आत्मा की तरह अजर और अमर रहेगी।"

—सेवाग्राम, २५।१।'४२ ह० से० १।२।'४२; पृष्ठ २०]

सच्चे स्वराज्य की साधना

"१. सच्चा स्वराज्य तो अपने मन पर राज्य है।

२. उसकी कुञ्जी सत्याग्रह, आत्म-बल अथवा दयाबल है।

३. इस बल को काम में लाने के लिए सर्वथा स्वदेशी बनने की जरूरत है।"

—१९०८; 'हिन्द स्वराज्य']

स्वराज्य की व्याख्या

"१. स्वराज्य का अर्थ है—स्वयं अपने ऊपर प्राप्त किया हुआ राज्य।

२. परन्तु हमने तो उसके कुछ लक्षण और स्वरूप की भी कल्पना की है। अतएव स्वराज्य का अर्थ है—देश के आयात और निर्यात पर, सेना पर और अदालतों पर जनता का पूरा नियन्त्रण।...

३. परन्तु व्यक्तिगत स्वराज्य का उपयोग तो साधु लोग आज भी करते होंगे, और हमारी पार्लमेण्ट स्थापित हो जाने पर भी लोगों की दृष्टि में, सम्भव है, वह स्वराज्य न हो। इसलिए स्वराज्य का अर्थ है—अन्न-वस्त्र की बहुतायत। वह इतनी होनी चाहिये कि किसी को भी उसके बिना भूखा और नंगा न रहना पड़े।

४. ऐसी स्थिति हो जाने पर भी एक जाति और एक श्रेणी के लोग दूसरी को दबा सकते हैं। अतएव स्वराज्य का अर्थ है—ऐसी स्थिति जिसमें एक बालिका भी घोर अन्धकार में निर्भयता के साथ घूम-फिर सके।

५. ...राष्ट्रीय स्वराज्य में प्रत्येक अङ्ग सजीव और उन्नत होना होगा और होना चाहिये। इस दशा में स्वराज्य का अर्थ है—अन्त्यजों की अस्पृश्यता का सर्वथा नाश।

६. ब्राह्मण और अब्राह्मण के झगड़े की समाप्ति।

७. हिन्दू मुसलमान के मनोमालिन्य का सर्वथा नाश। इसका यह अर्थ है कि हिन्दू मुसलमान की मर्यादा रखें और उनके लिए जान तक दे दें। इसी तरह मुसलमान हिन्दुओं की मर्यादा प्राण-पण से रखें। मुसलमान गोहत्या करके हिन्दुओं का दिल न दुखावें, बल्कि अपने से गोबध बन्द करें और अपने हिन्दू भाई के चित्त को चोट न पहुँचने दें

तथा हिन्दू, बिना किसी तरह का बदला किये, मस्जिदों के सामने बाजे न बजावें और मुसलमानों का जी न दुखावें बल्कि मस्जिदों के पास से जाते हुए बाजे बन्द रखने में बड़प्पन समझें।

८ स्वराज्य का अर्थ है—हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई, यहूदी सब धर्मों के लोग अपने-अपने धर्म का पालन कर सकें और ऐसा करने में एक-दूसरे की रक्षा करें और एक दूसरे के धर्म का आदर करें।

९. स्वराज्य का अर्थ यह है कि प्रत्येक ग्राम चोरों और डाकुओं के भय से अपनी रक्षा करने में समर्थ हो जाय और प्रत्येक ग्राम अपने लिए आवश्यक अन्न-वस्त्र पैदा करे।

१०. स्वराज्य का अर्थ है—देशी राज्यों, ज़मींदारों और प्रजा में मित्र-भाव रहे; देशी राज्य अथवा जमींदार प्रजा को जेरबार न करें और रिआया राजा अथवा जमींदार को तंग न करे।

११. स्वराज्य का अर्थ है—धनवान और श्रमजीवियों में परस्पर मित्रता। मजूर उचित मज़दूरी लेकर धनवान् के यहाँ खुशी से मज़दूरी करे।

१२. स्वराज्य वह है जिसमें स्त्रियाँ माताएँ और बहनें समझी जायँ और उनका मान-आदर हो तथा ऊँच-नीच का भेद-भाव दूर होकर सब भाई-बहन की भावना से बर्ताव करें।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० १९।८।'२१]

चौमुखी राज्य

"स्वराज्य के मेरे ख्याल के बारे में कोई गलतफ़हमी न रहनी चाहिए। स्वराज्य से मेरा मतलब है—विदेशी शासन से पूरा-पूरा छुटकारा और पूरी-पूरी आर्थिक आज़ादी। इस तरह एक सिरे पर राजकीय

स्वाधीनता है और दूसरी तरफ आर्थिक स्वतन्त्रता। उसके दो सिरे और भी हैं। उनमें से एक नैतिक और सामाजिक है। इसी के अनुरूप सिरा है, धर्म—उस संज्ञा के सच्चे से उदात्त माने में। उसमें हिन्दू धर्म ईसाई धर्म आदि शामिल हैं। हम इसे स्वराज्य का चौकोर कहें। अगर उसका एक भी कोण ग़लत हुआ तो उसकी सूरत ही बिगड़ जायगी। इस राजकीय और आर्थिक स्वतन्त्रता को,......हम सत्य और अहिंसा के बिना नहीं पहुँच सकते। अधिक प्रत्यक्ष भाषा में, ईश्वर में जीवन्त श्रद्धा और इसीलिए नैतिक एवं सामाजिक उत्थान के बिना नहीं पहुँच सकते।"

—२।१।'३७]

स्वतन्त्रता का सच्चा रूप

"...मैं तो रामराज्य यानी दुनिया में ईश्वर के राज्य का स्वप्न देखता हूँ। वही आज़ादी है। स्वर्ग में यह राज्य कैसा होगा, सो मैं नहीं जानता। बहुत दूर की चीज़ जानने की मुझे इच्छा भी नहीं। अगर वर्तमान दिल को काफी अच्छा लगता हो, तो भविष्य उससे बहुत अलग नहीं हो सकता।

"इसलिए राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक तीनों तरह की आज़ादी ही सच्ची आज़ादी है।

"राजनीतिक आज़ादी का मतलब ही यह है कि मुल्क पर ब्रिटिश फ़ौजों की किसी भी शक्ल में कोई हुकूमत न रहे।

"आर्थिक आज़ादी का मतलब ब्रिटिश पूँजीपतियों और ब्रिटिश पूँजी के साथ ही उनके प्रतिरूप हिन्दुस्तानी पूँजीपतियों और उनकी पूँजी से क़तई छुटकारा पाना है। दूसरे लफ़्ज़ों में छोटे से छोटे

आदमी को भी यह महसूस करना है कि वह बड़े से बड़े आदमी के बराबर है।......

"नैतिक आज़ादी का मतलब मुल्क की हिफाजत के लिए रखी हुई हथियारबन्द फौजों से छुटकारा पाना है। रामराज्य की मेरी कल्पना में ब्रिटिश फौजी हुकूमत की जगह राष्ट्रीय फौजी हुकूमत को बैठा देने की कोई गुंजाइश नहीं। जिस मुल्क में फौजी हुकूमत होती है, फिर वह फौज मुल्क की अपनी ही क्यों न हो, वह मुल्क नैतिक दृष्टि से कभी आजाद नहीं हो सकता, और इसलिए उसके सब से कमज़ोर कहे जाने वाले बाशिन्दे कभी पूरी तरह से नैतिक उन्नति नहीं कर सकते।"

— नई दिल्ली, २९-४-'४६। 'हरिजन': ह० से० ५।५।'४६।

अहिंसक स्वराज्य

"जनता के स्वराज का अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति के स्वराज में से उत्पन्न हुआ जनसत्तात्मक राज। ऐसा राज केवल प्रत्येक व्यक्ति के एक नागरिक के रूप में अपने धर्म का पालन करने में से ही उत्पन्न होता है।"

× × ×

"स्वराज्य में राजा से लेकर प्रजा तक का एक भी अङ्ग अविकसित रहे, ऐसा नहीं होना चाहिए। उसमें कोई किसी का शत्रु न हो; सब अपना-अपना काम करें, कोई निरक्षर न रहे, उत्तरोत्तर सब के ज्ञान की वृद्धि होती जाय, सारी प्रजा में कम से कम बीमारियाँ हों, कोई भी दरिद्री न हो, परिश्रम करनेवाले को बराबर काम मिलता रहे, उसमें जुआ चोरी, मद्यपान और व्यभिचार न हो, वर्ग-विग्रह न हो, धनिक अपने धन का विवेकपूर्वक उपयोग करें—भोग-विलास की वृद्धि

करने अथवा अतिशय सञ्चय करने में नहीं। यह नहीं होना चाहिए कि मुट्ठी भर धनिक मीनाकारी के महलों में रहें और हजारों अथवा लाखों लोग हवा और प्रकाश-रहित कोठरियों में।"

× × ×

"...अहिंसक स्वराज्य में कोई भी किसी के उचित अधिकार की काँट-छाँट नहीं कर सकता। इसके विपरीत, कोई अनुचित अधिकार का उपभोग नहीं कर सकता। जहाँ का तन्त्र व्यवस्थित है, वहाँ किसी से अनुचित अधिकारों का भोग किया ही नहीं जा सकता।"

—ह० से० १८।३।'३९; पृष्ठ ३६]

पश्चिमी जन-तन्त्र

"मेरे विचार में पश्चिमी देशों का जन-तन्त्र केवल तथाकथित है। इसमें ठीक जन-तन्त्र के नमूने के कुछ कीटाणु व तत्व अवश्य हैं। मगर यह सच्चे अर्थों में जन-तन्त्र तभी हो सकता है, जब हिंसा-रहित हो जायगा और इसमें से बदअमली और खुराफात अदृश्य हो जायँगे।"

—ह० से० ३।९।'३८; पृष्ठ २२८]

स्वराज्य और मृत्यु-भय

"स्वराज्य की बहुत-सी परिभाषाएँ मैं एकत्र कर रहा हूँ। उनमें एक व्याख्या यह भी है—मृत्यु के भय का त्याग।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० १९।८।'२१]

वज्रहृदय की आवश्यकता

"जबतक वज्रहृदय उसकी रक्षा के लिए मौजूद न हों तब तक आजादी एक अत्यन्त दूषित वस्तु की तरह है।"

—हिं० न० जी० १८।१२।'२१; पृष्ठ १३९]

पत्थर की काया

"...जो अपनी काया को पत्थर बनाकर रहता है वह एक ही

जगह बैठे हुए सारे संसार को हिलाया करता है। पत्थर को कौन मार सकता है?...जिस मनुष्य ने अपने शरीर को इस प्रकार पत्थर बना लिया है उसको इस दुनिया में कौन परास्त कर सकता है? मनुष्य में पत्थर और ईश्वर दोनों का मिलाप होता है। मनुष्य क्या है? चेतनामय पत्थर है। इसी से हमारे शास्त्र हमें शिक्षा देते हैं कि जिसने पूरी तरह देह दमन कर लिया है बस, उसी की पूरी विजय है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० १४।१०।'२१; पृष्ठ ६५]

स्वतन्त्रता की साधना

"...हम सुनसान जङ्गल में दया का रोना रोकर स्वतन्त्रता के दिन और भी निकट तो निश्चय ही नहीं लावेंगे और जनता में क़ैद और फांसी से डरने का मनोभाव बेकार ही पैदा करेंगे। स्वतन्त्रता के प्रेमियों को तो यह सीखना है कि इनका स्वागत मित्र और मुक्तिदाताओं के रूप में करना चाहिए।"

—यं० इं०। हिं० न० जी०, २९।१२।'२७, पृष्ठ १४८]

दमन

"दमन तो सचमुच प्राणवायु का काम करेगा।"

—यं० इं०। हिं० न० जी० १७।१२।'२१; पृष्ठ १३९]

गुप्त राजनीतिक कार्य और १९४२ का आन्दोलन

"...मैं छिपकर किये जानेवाले किसी काम की सराहना नहीं करता। कुछ मुट्ठी भर लोग यह सोच सकते हैं कि गुप्त हलचलों के जरिये वे करोड़ों के लिए स्वराज्य ला सकेंगे! लेकिन क्या यह बच्चों को चम्मच से दूध पिलाने जैसी बात न होगी? आम जनता तो खुली चुनौती और खुले कामों का ही रास्ता अपना सकती है। असली स्वराज्य की

झाँकी तो स्त्रियों, पुरुषों और बच्चों सभी को होनी चाहिए। ऐसे मक़सद के लिए मेहनत करना ही सच्ची क्रान्ति होगी।

१९४२ की घटनाओं का यह बहादुर बहन श्रीमती अरुणा आसफ़अली जो अर्थ लगाती हैं, वह मैं नहीं लगाता। यह अच्छी बात थी कि लोग अपने-आप उठ खड़े हुए। मगर यह बुरी बात हुई कि कुछ लोगों ने या बहुत लोगों ने हिंसा की। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता कि श्री किशोरलाल मशरुवाला, काका साहब और दूसरे काम करनेवालों ने उस समय के उतावली भरे उत्साह में अहिंसा की ग़लत व्याख्या की। उनके ऐसा करने से हो यह साबित होता है कि अहिंसा कितना नाजुक औज़ार है।"

—पूना, २६–२–'४६। 'हरिजन', ह० से०, ३।३।'४६]

खून का तिलक

प्रश्न—आजकल खून से खत लिखने और तिलक करने की एक हवा सी चल पड़ी है। क्या यह रिवाज बन्द करने लायक नहीं?

उत्तर—मैं तो इस रिवाज को बिल्कुल जंगली समझता हूँ। अपना लहू निकाल कर तिलक करने या लहू की बूँदों को गिराकर उससे सही करने में न तो बहादुरी है, न त्याग, न कष्ट-सहन, सिर्फ अविचार की मूर्च्छा है। इसका त्याग करना इष्ट ही नहीं, बल्कि इसे बन्द करना धर्म है।"

—पूना, ६–३–'४६। 'ह० बधु'। ह० से० १७।३।'४६]

कांग्रेस की आन्तरिक स्थिति

"मेरी राय में, कांग्रेस में एक ही पार्टी हो सकती है—कांग्रेसियों की; दूसरों की गुंजाइश नहीं। इसका यह मतलब नहीं कि कांग्रेस में

अलग-अलग रायें या राय रखने वाले न हों।

"..........आज कांग्रेस में हर तरह के लोग हैं। मैंने जो कहा है कि कांग्रेस के ध्येय में से 'शांतिमय और उचित' लफ्ज निकाल दिये जायँ, उसका यह मतलब नहीं कि कांग्रेसी सत्य और अहिंसा छोड़ दें। उसका मतलब सिर्फ़ पाखंड को निकालना है। वह मुझे चुभता है। अगर हम तलवारबाज़ हैं, तो खुल्लमखुल्ला तलवार निकालें। मगर दिल में तलवार हो, मुँह से गाली-गलौज निकले, और नाम अहिंसा का लें, तो उससे हम न सिर्फ़ दग़ाबाज़, बल्कि बुज़दिल भी बनते हैं।"

—ह० सं० १३।१०।'४६]

स्वतन्त्रता सब से चञ्चल स्त्री है!

"हमारे राष्ट्रीय इतिहास के इस युग में निर्जीव यन्त्र के जैसा बहुमत किसी काम का नहीं।...स्वतन्त्रता इस संसार में सब से अधिक चञ्चल और स्वच्छन्द स्त्री है। यह दुनिया में सबसे बड़ी मोहिनी है। इसको प्रसन्न करना बड़ा कठिन काम है। यह अपना मन्दिर जेलखानों में तथा इतनी ऊँचाई पर बनाती है कि जहाँ जाते-जाते आँखों में अँधेरी छा जाती है, और हमें.........हिमालय की चोटी के सदृश ऊँचाई पर बने इस मन्दिर तक जाने की आशा से कँटीले-कँकरीले बीहड़ों में लहूलुहान पैरों से मंजिल तय करते हुए देखकर खिलखिला कर हँसती है।"

—यं० इं०। हिं० न० जी० १८।१२।'२१]

व्याख्यानबाज़ों से डरो

"...भाषणों से और भाषण करनेवालों से डरना, उनसे दूर रहना अच्छा है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० २५।५।'२४; पृष्ठ ३३०]

साम्राज्यवाद

"...दुनिया का सबसे बड़ा सङ्कट तो आज वह साम्राज्यवाद है जो दिन पर दिन अपनी टाँगें फैलाता जाता है।"

—यं० इं० । हिं० न० जी० २४।८।'२४; पृष्ठ १२]

वर्तमान शासन-प्रणाली की विशेषता

"...इस प्रणाली की सब से बड़ी खासियत क्या है? यही कि यह परोपजीविनी है, और राष्ट्रीय जीवन की गन्दगी पर जीवित रहती है; उससे अपने लिए पोषण-सामग्री ग्रहण करती है।"

—यं० इं० । हिं० न० जी०, १४।९।'२४; पृष्ठ ३६]

अहिंसा की शुभ्र कला

"सच्चे जीवन का अच्छा और निश्चय ही एक मात्र मार्ग दिखलाने के लिए संसार की सब संस्थाओं में कांग्रेस ही सबसे उपयुक्त है। हिन्दुस्तान के वर्तमान भय से जाग्रत होने पर अगर यह संसार को रक्त'स्तान' से मुक्ति का मार्ग न बतलाये, तो इसका अहिंसात्मक प्रयोग व्यर्थ होगा। अगर हिन्दुस्तान यह दिखलाकर, कि मनुष्य का महत्व सर्वनाश के साधनों को बढ़ाने की क्षमता में नहीं बल्कि बदला लेने से इन्कार करने में है, अपना स्वाभाविक भाग अदा न करे, तो आज जानमाल का जो अक्षम्य सर्वनाश हो रहा है, वह अन्तिम नहीं होगा। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि अगर हिंसा की काली कला में, जो पशुओं का नियम है, लाखों को दक्ष किया जा सकता है तो अहिंसा की शुभ्र कला में, जो कि धर्मसंस्कारापन्न मनुष्य का नियम है, उन्हें दक्ष करने की उससे भी अधिक सम्भावना है।"

—ह० से०, ३०।९।'३९; पृष्ठ २६०]

लड़ाई के बाद गरीबों का प्राधान्य

"...मेरा ... कहता हूँ कि इस लड़ाई के अन्त में धनिकों की सत्ता का अन्त ... और गरीबों का सिक्का चलनेवाला है। फिर चाहे वह शरीर... चले या आत्मबल से।"

... ह० से० १।२।'४२; पृष्ठ २०]

महायुद्ध का परिणाम

"... मेरा अपना विचार तो यह है कि इस भीषण युद्ध का भी वही अन्त होगा जो महाभारत के प्राचीन युद्ध का हुआ था। त्रावणकोर के ... विद्वान ने महाभारत को उचित ही 'मानव जाति का शाश्वत इतिहास' कहा है। उस महाकाव्य में जो कुछ वर्णित है, सो आज हम अपनी आँखों के सामने होते देख रहे हैं। युद्ध में लिप्त राष्ट्र एक दूसरे को इस क्रूरता और भयङ्करता के साथ नष्ट कर रहे हैं कि अन्त में दोनों लस्तपस्त होकर थक जानेवाले हैं। युद्ध के अन्त में जो जीतेगा, उसकी वही दशा होगी, जो पाण्डवों की हुई थी। महाभारतकार कहता है कि अर्जुन के समान गांडीवधारी महारथी को अन्त में डाकुओं के एक छोटे-से दल ने दिन-दहाड़े लूट लिया था। परन्तु इस महाप्रलय में से उस नवविधान का उदय होगा, जिसकी प्रतीक्षा संसार के करोड़ों शोषित नरनारी इतने दिनों से करते आ रहे हैं।"

—सेवाग्राम १०।२।'४२; ह० से० १५।२।'४२; पृष्ठ ४०]

वर्तमान युद्ध

"सारे संसार के लिए यह कसौटी का समय है। आज के इस युद्ध से कोई बच नहीं सकता। रामायण और महाभारत कवि-कल्पना से भरे हैं लेकिन उनके रचयिता कोरे कवि न थे, अथवा वे सच्चे कवि

यानी ऋषि थे। वे शब्दों के चित्रकार नहीं, मानव-स्वभाव के चित्रकार थे। इसलिए उन्होंने जो कुछ लिखा है, सो सब उस काल में हुआ था या नहीं, इसे जानने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती, क्योंकि आज वह सब हो रहा है। आज रावणों का युद्ध चल रहा है। वे अतुलित बल का परिचय दे रहे हैं। हवा में उड़कर अपने शस्त्रास्त्र फेंक रहे हैं। अपना और अपने माने हुए दुश्मनों का खून पानी की तरह बहा रहे हैं। यह तो वह सोच ही नहीं पाते कि बहादुरी का कोई काम उन से हो नहीं सकता।

मनुष्य इस तरह नहीं लड़ते। देव तो लड़ ही नहीं सकते। पशु ही लड़ सकते हैं। इसलिए हम देख रहे हैं कि मानवपशु ने लज्जा का त्याग कर दिया है।"

—सेवाग्राम २३-२-'४२। ह० से० १३।'४२; पृष्ठ६०]

साम्राज्य के चार स्तम्भ

"जिन लोगों ने हिन्दुस्तान में अंग्रेजी साम्राज्य का निर्माण किया है उन्होंने बड़े धीरज के साथ उसके ये चार आधार-स्तम्भ खड़े किये हैं; गोरे स्वार्थ, सेना, राजा लोग और क़ौमी फूट। और पिछले तीनों खम्भे पहले खम्भे के लिए ही हैं।"

—ह० से० ७।२।'४०; पृष्ठ ४]

सार्वभौम सत्ता कहाँ है ?

"जो राजा रेज़ीडेण्टों के डर से मरे जाते हैं, आशा है वे राजकोट के इस उदाहरण से जान जायँगे कि अगर वे सच्चे हैं और उन की प्रजा वस्तुतः उनके साथ है, तो उन्हें रेज़ीडेण्टों से डरने की कोई ज़रूरत नहीं। निस्सन्देह, उन्हें यह महसूस करना चाहिए कि सार्वभौम सत्ता न तो शिमला में है, न ह्वाइट हाल में बल्कि उनकी प्रजा

में ही उसका निवास है।"

—ह० से०; ७।१।'३९; पृष्ठ ३७८]

देशी राजा

"......देशी राजाओं के लिए स्वतन्त्र भारत में बने रहने का एक मात्र रास्ता यही है कि वे युगबल को पहिचानें—समय की 'स्पिरिट' को स्वीकार करें, उसके आगे झुकें और उसी के अनुसार बर्ताव करें।"

—ह० से० २५।२।'३९; पृष्ठ १४]

राष्ट्रीय शिक्षा

"मेरी राय है कि शिक्षा की वर्तमान पद्धति इन तीन महत्वपूर्ण बातों में स-दोष है:—

१. इसका आधार विदेशी संस्कृति पर है जिससे देशी संस्कृति का इसमें नामोनिशान तक नहीं।

२. यह हृदय और हाथ की संस्कृति पर ध्यान नहीं देती, सिर्फ दिमाग की संस्कृति तक ही इसकी पहुँच है।

३. विदेशी माध्यम के द्वारा वास्तविक शिक्षा असम्भव है।"

—यं० इं० । हिं० न० जी० /२।९।'२१]

हमारे विश्वविद्यालय

"...हमारे देश के विश्वविद्यालयों की ऐसी कोई विशेषता होती ही नहीं। वे तो पश्चिमी विश्वविद्यालयों की एक निस्तेज और निष्प्राण नकल भर हैं। अगर हम उनको सिर्फ पश्चिमी सभ्यता का सोखता या स्याही-सोख कहें तो शायद बेजा न होगा।"

—हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी, २१।१।'४२ ह० से० १।२।'४२ पृष्ठ ९१]

: १४ :

चरखा-खादी

अपङ्ग में भगवान् का दर्शन

"...मुझे सब बातों में चरखा दिखाई देता है क्योंकि मैं चारों ओर निर्धनता और दरिद्रता ही देखता हूँ। हिन्दुस्तान के नर-कङ्कालों को जबतक अन्न-वस्त्र न मिले तबतक उनके लिए धर्म नाम की कोई चीज़ ही दुनिया में नहीं। वे आज पशु की तरह जीवन बिता रहे हैं और उसमें हमारा हाथ है। इसलिए चरखा हमारे प्रायश्चित्त का साधन है। अपङ्ग की सेवा एक धर्म है। भगवान् हमें अपङ्ग के रूप में हमेशा दर्शन देते हैं, पर हम तिलक-छापा करते हुए भी उनकी ओर ईश्वर की अवहेलना करते हैं।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० १०।८।'२४; पृष्ठ ४१८]

चरखा, माला और रामनाम एक ही है!

"...जब माला मुझे राम-नाम जपने में मदद करती है तब माला जपता हूँ। जब इतना एकाग्र हो जाता हूँ कि माला विघ्नरूप मालूम होती है तब उसे छोड़ देता हूँ। सोते-सोते यदि चरखा कात सकूँ और मुझे रामनाम लेने में उसकी सहायता की ज़रूरत मालूम हो तो मैं अवश्य माला के बदले चरखा चलाऊँ। यदि माला और चरखा दोनों चलाने का सामर्थ्य हो और दो में से किसी एक को पसन्द करना हो तो जबतक भारत में फाकेकशी जारी है तबतक मैं जरूर चरखा-रूपी माला को पसन्द करूँगा। मैं एक ऐसा समय आने की राह देख रहा हूँ जब रामनाम का जप करना भी एक उपाधि मालूम होने लगे। जब यह अनुभव होगा कि 'राम' वाणी से भी परे है तब 'नाम' लेने की ज़रूरत ही न रह जायगी। चरखा, माला और रामनाम ये मेरे लिए

जुदी-जुदी चीज़ें नहीं। मुझे तो ये तीनों सेवाधर्म की शिक्षा देती हैं। सेवा धर्म का पालन किये बिना मैं अहिंसा-धर्म का पालन नहीं कर सकता। और अहिंसा-धर्म का पालन किये बिना मैं सत्य की खोज नहीं कर सकता और सत्य के बिना धर्म नहीं। सत्य ही राम है, नारायण है, ईश्वर है, खुदा है, अल्ला है, 'गाड' है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० १०।८।२४; पृष्ठ ४१९]

मूलस्रोत

"सारी चीज़ें चरखे से निकली हैं। ······मेरी प्रवृत्तियों की ग्रह-माला का वही सूर्य है।"

—२१।२।'४०]

चरखा

"···चरखा तो लँगड़े की लाटी है -- सहारा है। भूखे को दाना देने का साधन है। निर्धन स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा करनेवाला क़िला है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, २८।९।'२४; पृष्ठ ५२]

खादी

"स्वराज के समान ही खादी भी राष्ट्रीय जीवन के लिए श्वास के जितनी ही आवश्यक है।···जिस तरह स्वराज को हम नहीं छोड़ सकते हैं, उसी तरह खादी को भी नहीं छोड़ सकते। खादी को छोड़ने के मानी होंगे भारतीय जनता को बेच देना, भारतवर्ष की आत्मा को बेच देना।"

—यं० इं०। हिं० न० जी० १९।१।'२८; पृष्ठ १७३]

चरखा अहिंसा का प्रतीक है!

"···महाभारत में एकलव्य की कथा आई है। वह निरा काव्य नहीं है। उसमें सत्य है। मृत्तिका में चैतन्य नहीं होता। मूर्ति में सामर्थ्य नहीं होती। लेकिन एकलव्य के लिए द्रोणाचार्य की मूर्ति मिट्टी नहीं

थी। उसमें तो वह साक्षात् गुरु द्रोणाचार्य को देखता था। उसकी अखण्ड श्रद्धा क्योंकर फलीभूत नहीं होती? अगर हम चरखे में ऐसी श्रद्धा रख सकें तो हमारे लिए वह प्राणवान प्रतिमा बन जाय। तब हम उसमें अपनी समस्त सङ्कल्प-शक्ति और हृदय लगा दें। चरखा तो हमारे लिए अहिंसा का प्रतीक है। असली चीज़ मूर्ति नहीं, हमारी दृष्टि है। एक दृष्टि से संसार सही है; दूसरी दृष्टि से ईश्वर ही एक मात्र सत्य है। अपनी-अपनी दृष्टि से दोनों बातें सत्य हैं। यदि हम अपने प्रतीक में ईश्वर का साक्षात्कार कर सकें तो हमारे लिए वह भी सच हो जाता है।"

चरखा माला है!

"....एकाग्रता के लिए चरखा ही मेरी माला है।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, हुदली। २०।४।'३७]

खादी का अर्थशास्त्र

"....खादी का अर्थशास्त्र सामान्य अर्थशास्त्र से भिन्न है। सामान्य अर्थशास्त्र की रचना प्रतिस्पर्धा के तत्व पर हुई है, और उसमें स्वदेश-प्रेम, भावना और मानवता का बहुत थोड़ा भाग रहता है, बल्कि यह कहना चाहिये कि बिल्कुल नहीं रहता; जब कि खादी के अर्थशास्त्र की रचना स्वदेश-प्रेम, भावना और मानवता के तत्त्व पर हुई है।"

—ह० से० ३०।७।'३८; पृष्ठ १८९]

चरखा: अहिंसा का प्रतीक

"मैं तो चरखे को सविनय भंग की अपेक्षा अहिंसा का अधिक अच्छा प्रतीक मानता हूँ।"

चरखा: सङ्कल्प का बल

"यों तो चरखा जड़ वस्तु है। उसमें शक्ति सङ्कल्प से आती है। हम उसकी साधना करें। मिट्टी में क्या पड़ा है? पर कोई भक्त मिट्टी

की एक गोली बनाता है और सङ्कल्प करता है कि इसमें भगवान् शङ्कर बैठा है, तो वही मिट्टी कामधेनु बन जाती है। निरी मिट्टी में क्या पड़ा है? दूसरा आदमी उसे उठाकर फेंक देगा। मिट्टी में शङ्कर नहीं है। श्रद्धा ही शङ्कर है।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, वृन्दावन (विहार)। ३।५।'३९]

मन्त्र में शक्ति की भावना

"मेरे लिए तो चरखा अहिंसा की प्रतिमा है। उसका आधार जैसा कि मैं कह चुका हूँ, सङ्कल्प है। रामनाम की भी वही बात है। राम नाम में कोई स्वतन्त्र शक्ति नहीं है। वह कोई कुनैन की गोली नहीं है। कुनैन की गोली में स्वतन्त्र शक्ति है। उसमें कोई विश्वास करे या न करे। वह 'अ' को मलेरिया हुआ तो भी काम देती है और 'ब' को हुआ तो भी काम देती है।...रामनाम में ऐसी स्वतन्त्र शक्ति नहीं है। मन्त्र में शक्ति सङ्कल्प से आती है।"

—गां० से० सं० सम्मेलन, वृन्दावन (विहार); ५।५।'३९]

चर्खा

"एक अंग्रेज महाकवि ने पूर्व और पश्चिम की टक्कर का भव्य चित्र खींचा है। जब रोमन साम्राज्य अपनी सत्ता से मदान्ध और उच्छृंखल होकर पूर्व पर आँधी की तरह चढ़ आया, तो पूर्व ने अप्रतिकार-भाव से स्वागत किया। वह छोटे पौधों की तरह ज़रा झुक गया। आँधी निकल गई और पूर्व फिर सिर ऊँचा करके ध्यानावस्थित हो गया। मेरे निकट चर्खा अतीतकालिक पूर्व की इसी शाश्वत नीति का चिह्न है।"

—ह० से० १३।१।'४०; पृष्ठ ३८६]

चरखे की शक्ति का रहस्य

"......एक आदमी है। वह माला तो फेरता है लेकिन उसका दिल ऊपर को जाता है, नीचे को जाता है; चारों ओर भटकता फिरता

है तो वह माला उसको गिराती है। वह झूठा आश्वासन लेता है कि मैं माला फेरता हूँ। वहाँ माला से ईश्वर का अनुसन्धान नहीं है। वह कितना ही माला फेरता रहे, ज्यों का त्यों रहेगा। उसको अंगुलियों में कष्ट होना शुरू हो जाता है। उसकी माला निकम्मी ही नहीं, नुक़सान-देह भी है क्योंकि उसमें दम्भ है। माला अनेक धर्मों में अनादिकाल से नाम स्मरण का साधन रही है। लेकिन जहाँ ध्यान और अनु-सन्धान नहीं है वहाँ दम्भ ही रह जाता है। इस तरह माला फेरने वाला ईश्वर को धोखा देता है और जगत को भी।

"यही बात चरखे पर लागू है। चरखे में मैंने जो शक्ति पाई है वह यदि आप न पावें, जैसी मेरी श्रद्धा है वैसी अगर आपकी न हो तो वह चरखा ही आपका नाश करेगा।......अगर जड़वत् माला फेरने में दम्भ है तो यन्त्रवत् चरखा चलाने में आत्म-वञ्चना है।"

चरखा की महिमा

"......चरखा वह मध्यवर्त्ती सूर्य है जिसके गिर्द अन्य सब तारा-गण घूमते हैं। ओक नाम के वृक्ष का बीज कितना छोटा होता है। लेकिन जहाँ एक बार उसकी जड़ जमी कि उसका विस्तार होता जाता है और वह कितनी ही वनस्पतियों को आश्रय देता है। अगर चरखे की वृत्ति फैल गई तो सिर्फ चरखा ही थोड़े रहनेवाला है। उसकी छाया में असंख्य उद्योगों को स्थान मिलेगा। उसकी सुगन्ध से सारी दुनिया सुगन्धित हो जायगी।"

"यह सच है कि सारी चीजें चरखे से ही निकली हैं। ग्राम उद्योग संघ उसी में से निकला है। अस्पृश्यता-निवारण और नई तालीम उसी के फल हैं। मेरी प्रवृत्तियों की ग्रहमाला का वही सूर्य है।"

--गां० से० सं० सम्मेलन, मालिकान्दा (बंगाल), २१।२।'४०]

: १५ :

हिन्दू-मुस्लिम समस्या

भारतवर्ष एक पक्षी है

"...भारतवर्ष एक पक्षी है। हिन्दू और मुसलमान उसके दो पंख हैं। आज ये दोनों पंख अपङ्ग हो गये हैं और पक्षी आस्मान में उड़कर स्वतन्त्रता की आरोग्यप्रद और शुद्ध हवा लेने में असमर्थ हो गया है।"

—'कामरेड' [हिं० न० जी० २।११। '२४; पृष्ठ ९५]

हृदय-मंदिर की चुनाई पहले

"ईंट-चूने की चुनाई के पहले हृदय-मन्दिर की चुनाई बहुत ज़रूरी है। अगर यह हो जाय तो और सब तो हुआ ही है।"

—नवजीवन [हिं न० जी०, ११।९। '२९; पृष्ठ ३३]

हिन्दू-मुसलमान

"...मेरा निजी अनुभव इस ख़्याल को मजबूत करता है कि मुसलमान प्रायः गुण्डे होते हैं और हिन्दू अमूमन नामर्द।"

—[हिं० न० जी० १।६।'२४; पृष्ठ ३३६]

हिन्दू धर्म और इस्लाम

"हिन्दू धर्म का दूसरा नाम कमज़ोरी और इस्लाम का शारीरिक बल हो गया है।"

—[ह० से० ६।१।'४०; पृष्ठ ३७५]

हिन्दू-मुस्लिम मित्रता

"...हिन्दू-मुस्लिम मित्रता का हेतु है भारत के लिए और सारे संसार के लिए एक मंगलमय प्रसाद होना, क्योंकि इसकी कल्पना के मूल में शान्ति और सर्वभूत-हित का समावेश किया गया है। इसने

भारत में सत्य और अहिंसा को अनिवार्य रूप से स्वराज्य प्राप्त करने का साधन स्वीकार किया है। इसका प्रतीक है चरखा—जो सादगी, स्वावलम्बन, आत्मसंयम, स्वेच्छापूर्वक करोड़ों लोगों में सहयोग, का प्रतीक है।"

—यं० इं० । हिं० न० जी०, २४।८।'२४; पृष्ठ १२]

हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की समस्या

हिन्दुओं का भय मूल कारण है

"...जब तक हिन्दू डरा करेंगे तब तक झगड़े होते ही रहेंगे। जहाँ डरपोक होता है वहाँ डरानेवाला हमेशा मिल ही जाता है। हिन्दुओं को समझ लेना चाहिए कि जब तक वे डरते रहेंगे तब तक उनकी रक्षा कोई न करेगा। मनुष्य का डर रखना यह सूचित करता है कि हमारा ईश्वर पर अविश्वास है। जिन्हें यह विश्वास न हो कि ईश्वर हमारे चारों ओर है, सर्वव्यापी है, या, यह विश्वास शिथिल हो वे अपने बाहु-बल पर विश्वास रखते हैं। हिन्दुओं को दो में से एक बात प्राप्त करनी होगी। यदि ऐसा न करेंगे तो हिन्दू जाति के नष्ट हो जाने की सम्भावना है।"

दो मार्ग

"पहला मार्ग है—केवल ईश्वर पर विश्वास रखकर मनुष्य का डर छोड़ देना। यह अहिंसा का रास्ता है और उत्तम है। दूसरा बाहुबल का अर्थात् हिंसा का मार्ग। दोनों मार्ग संसार में प्रचलित हैं। और हमें दो में से किसी भी एक को ग्रहण करने का अधिकार है। पर एक आदमी एक ही समय दोनों का उपयोग नहीं कर सकता।

"यदि हिन्दू और मुसलमान दोनों बाहुबल का ही रास्ता ग्रहण करना चाहते हों तो फिलहाल शीघ्र स्वराज्य मिलने की आशा छोड़ देना ही उचित है। तलवार के न्याय से ही यदि सुलह करनी हो तो दोनों को पहले खूब लड़ लेना होगा, खून की नदियाँ बहेंगी। दो-चार खून होने या पाँच-पचीस मन्दिर तोड़ने से फैसला नहीं हो सकता।"

तपश्चर्या का मार्ग

"यदि हम मुसलमानों के दिल को जीतना चाहें तो हमें तपश्चर्या करनी होगी; हमें पवित्र बनना होगा। हमें अपने ऐबों को दूर कर देना होगा। अगर वे हमारे साथ लड़ें तो हमें उलटकर प्रहार न करते हुए हिम्मत के साथ मरने की विद्या सीखनी होगी। डर कर, औरतों, बाल बच्चों और घर-बार को छोड़कर भाग जाना और भागते हुए मरजाना मरना नहीं कहाता, बल्कि उनके प्रहार के सामने खड़ा रहना और हँसते-हँसते मरना हमें सीखना पड़ेगा।"

बाजे का प्रश्न

"...हिन्दू धर्म की कोई भी विधि ऐसी नहीं है जो बिना बाजा बजाये हो सकती हो। कितनी ही विधियाँ तो ऐसी हैं जिनमें शुरू से अखीर तक बाजा बजाना जरूरी है। हाँ, इसमें भी हिन्दुओं को इतनी चिन्ता जरूर रखनी चाहिये कि मुसलमानों का दिल न दुखने पाये। बाजा धीमे बजाया जाय, कम बजाया जाय। यह सब लेन-देन की नीति के अनुसार हो सकता है और होना चाहिये। कितने ही मुसलमानों के साथ बातें करने से मुझे ऐसा मालूम होता है कि इस्लाम में ऐसा कोई फरमान नहीं है जिसमें दूसरों के बाजे को बन्द करना लाजिमी हो। इसलिए मस्जिद के सामने विधर्मी के बाजा बजाने से इस्लाम को

धक्का नहीं पहुँचता। अतएव यह बाजे का सवाल झगड़े का मूल न होना चाहिये।"

"...कितनी ही जगह मुसलमान भाई जबर्दस्ती बाजे बन्द कराना चाहते हैं। यह नागवार है। जो बात विनय की खातिर की जा सकती है वह जोरो-जब्र की खातिर नहीं की जा सकती। विनय के सामने झुकना धर्म है, जोरो-जब्र के सामने झुकना अधर्म है। मार के डर से यदि हिंदू बाजे बजाना छोड़ें तो हिन्दू न रहेंगे। इसके लिए सामान्य नियम इतना ही बताया जा सकता है कि जहाँ हिन्दुओं ने समझ-बूझकर बहुत समय से मस्जिद के समक्ष बाजे बन्द करने का रिवाज रखा है वहाँ उन्हें उसका पालन अवश्य करना चाहिये। जहाँ वे हमेशा बाजे बजाते आये हैं वहाँ उन्हें बजाने का अधिकार होना चाहिये।................ जहाँ मुसलमान बिलकुल न माने, अथवा जहाँ हिन्दुओं पर जबर्दस्ती किया जाने का अन्देशा हो और जहाँ अदालत से बाजा बजाना बन्द किया गया हो वहाँ हिन्दुओं को निडर होकर बाजा बजाते हुए निकलना चाहिए, और मुसलमान चाहे कितनी ही मार-पीट करें हिन्दू उसे सहन करें। इस तरह जितने बाजे बजानेवाले वहाँ मिलें सब अपना बलिदान वहाँ कर दें—इसमें धर्म और आत्म-सम्मान दोनों की रक्षा होगी।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, १४।९।'२४; पृष्ठ ३४]

हिन्दू-मुस्लिम समस्या : सत्याग्रह के प्रकाश में

"... मैं जानता हूँ कि काफी मुसलमान ऐसे भरे हैं, जो हिन्दुओं को काफिर मानते हैं, और उनसे मेल नहीं चाहते हैं। लेकिन सभी मुसलमानों के दिल में छुरी नहीं है; बहुत से यह भी माननेवाले हैं कि हिन्दू हमारे देश-भाई हैं, और उनके साथ हिलमिल रहने में ही दोनों

की भलाई और तरक्की है। पर हम तो ऐसे मुसलमानों से भी न डरें, जिनके हाथों और दिलों में छुरी हो। हम उनके दिलों को भी जीत लें; उनके लिए भी हम पर छुरी चलाना अशक्य हो जाय। आखिर क्या हमी मनुष्य हैं और वे नहीं हैं? एक दिन मनुष्यता की कद्र वे भी करने वाले हैं। हमारा इलाज उनकी समझ में किसी न किसी दिन जरूर आवेगा। यह सवाल हृदय की एकता का है। राज्य-प्रकरण की सौदा-गिरी से थोड़ी देर के लिए झगड़े भले ही बन्द हो जायँ, लेकिन दिल एक नहीं होने वाला है।...''

—गांधी सेवासंघ सम्मेलन, डेलांग, २६।३।'३८]

× × ×

"...अहिंसा की दृष्टि से चाहे स्वराज्य हो या न हो, हिन्दू-मुस्लिम एकता तो होनी ही है। हिन्दू मुस्लिम एकता हमारे लिए स्वराज्य का साधन नहीं है।......मैं जिस तरह इस चीज को मानता हूँ उस तरह हज़ार आदमी भी आज नहीं मानते। जैसे मैं यह कहता हूँ कि असत्य या हिंसा से स्वराज्य मिले तो मुझे नहीं चाहिये, उसी तरह मैं यह भी आज कहना चाहता हूँ कि अगर हिन्दू-मुस्लिम एकता के बिना स्वराज्य मिले तो मुझे ऐसा नहीं चाहिए।...''

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, डेलांग, २८।३।'३८]

हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य

"...यह सच है कि हिन्दू मुसलमानों के झगड़े का एक खास कारण तीसरी ताकत की हस्ती है। लेकिन मैं यह नहीं मानता कि केवल उस तीसरी ताकत को परास्त कर देने से झगड़ा मिट जायगा।...... मेरे पास तो स्वराज्य प्राप्त करने का और हिन्दू-मुसलमान एकता का

एकही इलाज है, वह है सत्याग्रह ।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, डेलांग, २६।३।'३८]

हिन्दुओं और मुसलमानों के दुःस्वप्न

"…हिन्दुओं के लिए यह आशा करना कि इस्लाम, ईसाई धर्म और पारसी धर्म हिंदुस्तान से निकाल दिया जा सकेगा, एक निरर्थक स्वप्न है। इसी तरह मुसलमानों का भी यह उम्मीद करना कि किसी दिन अकेले उनके कल्पनागत इस्लाम का राज्य सारी दुनिया में हो जायगा, कोरा ख्वाब है। पर अगर इस्लाम के लिए एकही खुदा को तथा उसके पैग़म्बरों की अनन्त परम्परा को मानना काफ़ी हो तो हम सब मुसलमान हैं; इसी तरह हम सब हिन्दू और ईसाई भी हैं। सत्य किसी एक ही धर्मग्रन्थ की ऐकान्तिक सम्पत्ति नहीं है।"

—१९।९।'२४ यं० इं०। हिं० न० जी०, २८।९।'२४; पृष्ठ ५४]

सम्प्रदायिक वातावरण

"…आज तो आकाश काले बादलों से घिरा हुआ है। पर मैं उम्मीद नहीं छोड़ूँगा कि ये बादल तितर-बितर हो जायँगे और हमारे अभागे देश में साम्प्रदायिक ऐक्य जरूर पैदा होगा। यदि मुझसे कोई पूछे कि इसका सबूत दूँ, तो मेरा जवाब यह होगा कि मेरी आशा की बुनियाद तो श्रद्धा है और श्रद्धा को सबूत की कोई जरूरत नहीं।"

—ह० से०, २७।४।'४०; पृष्ठ ८७]

मुसलमानों के अन्दर ग़लत प्रचार

"…धर्म तो इन्सान को ईश्वर के साथ बाँधता है, और इन्सान को इन्सान के साथ। क्या इस्लाम सिर्फ मुसलमान को मुसलमान के ही साथ बाँधता है और हिन्दू के साथ दुश्मनी पैदा कराता है? क्या पैग-

म्बर साहब का शान्ति का पैगाम केवल मुसलमानों तक ही सीमित था और हिन्दुओं और गैर-मुसलमानों के खिलाफ था ? क्या आठ करोड़ मुसलमानों को यही खुराक देनी है, जिसे मैं केवल ज़हर ही कह सकता हूँ ? जो लोग यह जहर मुसलमानों के दिलों में भर रहे हैं वे इस्लाम की बड़ी भारी कुसेवा कर रहे हैं। मैं जानता हूँ कि यह इस्लाम नहीं है।..."

—ह० से०, ४।५।'४०; पृष्ठ १००]

पाकिस्तान

"...मैं तो कह चुका हूँ कि पाकिस्तान एक ऐसा 'असत्य' है जो टिक ही नहीं सकता। ज्यों ही इस योजना के बनाने वाले इसे अमल में लाने बैठेंगे, उन्हें पता चल जायगा कि यह अमल में लाने जैसी चीज ही नहीं है।"

—ह० से० १८।५।'४०; पृष्ठ ११३]

: १६ :

स्त्रियाँ और उनकी समस्याएँ

स्त्री

"स्त्री क्या है ? साक्षात् त्यागमूर्ति है। जब कोई स्त्री किसी काम में जी-जान से लग जाती है तो वह पहाड़ को भी हिला देती है।"

—यं० इं० । हिं० न० जी०, २५।१२।'२१]

स्त्री पुरुष से श्रेष्ठ है

"...स्त्री को अबला कहना उसका अपमान करना है। उसे अबला कहकर पुरुष उसके साथ अन्याय करता है। अगर ताकत से मतलब पाशवी ताक़त से है तो निस्सन्देह पुरुष की अपेक्षा स्त्री में कम पशुता है पर अगर इसका मतलब नैतिक शक्ति से है तो अवश्य ही पुरुष की अपेक्षा स्त्री कहीं अधिक शक्तिशालिनी है। क्या स्त्री में पुरुष से अपेक्षाकृत अधिक प्रतिभा नहीं है ? क्या उसका आत्मत्याग पुरुष से बढ़कर नहीं है ? उसमें सहन शक्ति की कमी है ? साहस का अभाव है ? बिना स्त्री के पुरुष हो नहीं सकता। अगर अहिंसा हमारे जीवन का ध्यान-मन्त्र है तो कहना होगा कि देश का भविष्य स्त्रियों के हाथ में है।"

—यं० इं० । हिं० न० जी० १०।४।'३०; पृष्ठ ३७७]

स्त्री, धर्म का अवतार

"बिना सहन-शक्ति और धैर्य के धर्म की रक्षा असम्भव है। स्त्री सहन-शक्ति की साक्षात् प्रतिमूर्ति है, धैर्य का अवतार है। धर्म के मूल में श्रद्धा रही है। जहाँ श्रद्धा नहीं, वहाँ धर्म नहीं। स्त्री की श्रद्धा के साथ पुरुष की श्रद्धा की कोई तुलना नहीं हो सकती।"

—ह० से०, ७।४।'३३]

स्त्री पुरुष की गुड़िया नहीं

"स्त्री में जिस प्रकार बुरा करने की, लोक का नाश करने की शक्ति है, उसी प्रकार भला करने की, लोक-हितसाधन करने की शक्ति भी उसमें सोई हुई पड़ी है, यह भान अगर स्त्री को हो जाय तो कितना अच्छा हो! अगर वह यह विचार छोड़ दे कि वह खुद अबला है और पुरुष के खेलने की गुड़िया होने के ही योग्य है तो वह खुद अपना और पुरुष का (फिर चाहे वह उसका पिता हो, पुत्र हो, या पति हो) जन्म सुधार सकती है, और दोनों के ही लिए इस संसार को अधिक सुखमय बना सकती है।"

× × ×

"अधिकांशतः बिना किसी कारण के ही मानव प्राणियों का संहार करने की जो शक्ति पुरुष में है उस शक्ति में उसकी बराबरी करने से स्त्री मानव जाति को सुधार नहीं सकती। पुरुष की जिस भूल से पुरुष के साथ-साथ स्त्री का भी विनाश होनेवाला है, उस भूल में से पुरुष को बचाना उसका परम कर्तव्य है, यह स्त्री को समझ लेना चाहिए।"

—ह० से० २४।११।'३६; पृष्ठ ३१८]

स्त्री

"...स्त्री अहिंसा की मूर्ति है। अहिंसा का अर्थ है अनन्त प्रेम और उसका अर्थ है कष्ट सहने की अनन्त शक्ति। पुरुष की माता, स्त्री, से बढ़कर इस शक्ति का परिचय अधिक से अधिक मात्रा में और किससे मिलता है?...... युद्ध में फँसी हुई दुनिया आज शान्ति का अमृत पान करने के लिए तड़प रही है। यह शान्ति-कला सिखाने का काम भगवान् ने स्त्री को ही दिया है।..."

—ह० से० २४।२।'४०; पृष्ठ १६]

स्त्री की स्वाधीनता

"....स्त्री पुरुष की गुलाम नहीं है। वह अर्द्धांगिनी है, सहधर्मिणी है। उसको मित्र समझना चाहिए।"

—हिं० न० जी० ४।३।'२६; पृष्ठ २३, श्री रामेश्वरप्रसाद नेवटिया के साथ जमनालालजी की बड़ी लड़की श्री कमलाबाई के विवाह के समय दिये गये आशीर्वादात्मक भाषण से]

विषयेच्छा

"विषयेच्छा एक सुन्दर और श्रेष्ठ वस्तु है; इसमें शर्म की कोई बात नहीं है। किन्तु यह है सन्तानोत्पत्ति के लिए ही। इसके सिवा इसका कोई उपयोग किया जाय तो वह परमेश्वर और मानवता के प्रति पाप होगा।"

—ह० से०, २८।३।'३६; पृष्ठ ४५]

कृत्रिम सन्तति-निग्रह

"सन्तति-निग्रह के कृत्रिम उपाय किसी न किसी रूप में पहले भी थे और बाद में भी रहेंगे; परन्तु पहले उनका उपयोग पाप माना जाता था। व्यभिचार को सद्गुण कहकर उसकी प्रशंसा करने का काम हमारे ही युग के लिए सुरक्षित रक्खा हुआ था।"

× × ×

"मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो विद्वान स्त्री-पुरुष सन्तति-निग्रह के कृत्रिम साधनों के पक्ष में बड़ी लगन के साथ प्रचार-कार्य कर रहे हैं वे, इस झूठे विश्वास के साथ कि इससे उन बेचारी स्त्रियों की रक्षा होती है जिन्हें अपनी इच्छा के विरुद्ध बच्चों का भार सम्हालना

पड़ता है, देश के युवकों की ऐसी हानि कर रहे हैं, जिसकी कभी पूर्ति नहीं हो सकती।

× × ×

"इस प्रचारकार्य में सबसे बड़ी जो हानि हो रही है वह तो पुराने आदर्श को छोड़कर उसकी जगह एक ऐसे आदर्श को अपनाना है, जो अगर अमल में लाया गया तो जाति का नैतिक तथा शारीरिक सर्वनाश निश्चित है।"

—ह० से०; २८।३।'३६; पृष्ठ ४५]

सन्तति-निरोध और नारी

[प्रश्न—सन्तति-निरोध के लिए स्त्रियाँ संयम करना चाहें, पर पुरुष बलात्कार करें तब क्या किया जाय ?]

"यह तो सच्चे स्त्रीधर्म का सवाल है ···सतियों को मैं पूजता हूँ पर उन्हें कुएँ में नहीं गिराना चाहता। स्त्री का सच्चा धर्म तो द्रौपदी ने बताया है। पति अगर गिरता हो तो स्त्री न गिरे। स्त्री के संयम में बाधा डालना शुद्ध व्यभिचार है। यदि वह बलात्कार करने आवे तो उसे थप्पड़ मारकर भी सीधा करना उसका धर्म है। व्यभिचारी पति के लिए वह दरवाजा बन्द कर दे। अधर्मी पति की पत्नी बनने से उसे इन्कार करना चाहिए। हमें स्त्रियों के अन्दर यह हिम्मत पैदा कर देनी चाहिए।"

—गांधी सेवा-संघ सम्मेलन, सावली, ४ मार्च,' ३६]

कृत्रिम सन्तति-निग्रह

"···कृत्रिम साधनों के साथ भोग हुआ भोग बच्चों का आना तो रोकेगा, पर पुरुष और स्त्री दोनों की—स्त्री की अपेक्षा पुरुष की

अधिक—जीवन-शक्ति को चूस लेगा। आसुरी वृत्ति के खिलाफ युद्ध करने से इन्कार करना नामर्दी है।"

—ह० से०; २४।४।'३७; पृष्ठ ८०]

आजकल की लड़कियाँ और आत्म-रक्षा

"लेकिन मुझे यह भी डर है कि आजकल की लड़की को भी तो अनेक मजनुओं की लैला बनना प्रिय है। वह दुस्साहस को पसन्द करती है।...आजकल की लड़की वर्षा या धूप से बचने के उद्देश्य से नहीं, बल्कि लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए तरह तरह के भड़कीले कपड़े पहनती है। वह अपने को रँगकर कुदरत को भी मात करना और असाधारण सुन्दर दिखना चाहती है। ऐसी लड़कियों के लिए कोई अहिंसात्मक मार्ग नहीं है।...हमारे हृदय में अहिंसा की भावना के विकास के लिए भी कुछ निश्चित नियम होते हैं। अहिंसा की भावना एक बहुत महान् प्रयत्न है। विचार और जीवन-प्रणाली में यह क्रान्ति उत्पन्न कर देता है। यदि मेरी पत्र-लेखिका और उस तरह के विचार रखनेवाली लड़कियाँ ऊपर बताये गये तरीके से अपने जीवन को बिल्कुल ही बदल डालें तो उन्हें जल्दी ही यह अनुभव होने लगेगा कि उनके सम्पर्क में आनेवाले नौजवान उनका आदर करना तथा उनकी उपस्थिति में भद्रोचित व्यवहार करना सीखने लगे हैं। लेकिन यदि उन्हें मालूम होने लगे कि उनकी लाज और धर्म पर हमला होने का खतरा है, तो उनमें उस पशु-मनुष्य के आगे आत्म-समर्पण करने के बजाय मर जाने तक का साहस होना चाहिए।"

—ह० से०, ३१।१२।'३८; पृष्ठ ३७१]

× × ×

स्त्रियों को निर्भय होने की आवश्यकता

"...लेकिन असल चीज़ तो यह है कि स्त्रियाँ निर्भय बनना सीख-जायँ। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि कोई भी स्त्री जो निडर है और जो दृढ़तापूर्वक यह मानती है कि उसकी पवित्रता ही उसके सतीत्व की सर्वोत्तम ढाल है, उसका शील सर्वथा सुरक्षित है ऐसी स्त्री के तेजमात्र से पशुपुरुष चौंधिया जायगा और लाज से गड़ जायगा।"

—सेवाग्राम २३।२।'४२। ह० से० १।३।'४२; पृष्ठ ६०]

पत्नी के प्रति पति का कर्तव्य

"...तुम अपनी पत्नी की आबरू की रक्षा करना, और उसके मालिक मत बन बैठना; उसके सच्चे मित्र बनना। तुम उसका शरीर और आत्मा वैसे ही पवित्र मानना, जैसे कि वह तुम्हारा मानेगी।..."

—यं० इं०। हिं० न० ज० २।२।'२८; पृष्ठ १९२, पुत्र रामदास गांधी के विवाह के समय दिये आशीर्वाद से]

स्त्री के प्रति पति का व्यवहार

[प्रश्न—मैं २३ बरस का नवयुवक हूँ। पिछले दो साल से शुद्ध खादी का इस्तेमाल कर रहा हूँ। पिछले २८ दिन से फुरसत के समय नियम से कातता हूँ। मगर मेरी पत्नी खादी पहनने से इन्कार करती है। कहती है, वह मोटा बहुत है। क्या मैं उसे खादी इस्तेमाल करने के लिए मजबूर करूँ? मैं यह भी बता दूँ कि हमारे स्वभाव नहीं मिलते।]

"भारतीय जीवन में सब जगह यही रोना है। मैंने अक्सर कहा है कि पति ज्यादा बलवान और शिक्षित होता है, इसलिए उसे अपनी पत्नी का गुरु बन जाना चाहिए और उसमें कोई दोष हो तो सहन

करना चाहिए। आपकी बात यह है कि आप को पत्नी का बेमेल स्वभाव सहन ही करना है और अपनी पत्नी को प्रेम से जीतना है, दबाव डालकर हर्गिज नहीं। इससे यह नतीजा निकला कि आप अपनी पत्नी को खादी इस्तेमाल करने के लिए मजबूर नहीं कर सकते। आपको विश्वास रखना चाहिए कि आपका प्रेम और आचरण उससे सही बात करवा लेगा। याद रखिए, जैसे आप उसकी सम्पत्ति नहीं हैं वैसे ही आपकी पत्नी आपकी सम्पत्ति नहीं है। वह आपका आधा अङ्ग है। आप उसके साथ यही समझकर व्यवहार कीजिए। आपको इस प्रयोग पर अफसोस नहीं होगा।"

—ह० से० १७·२।'४०; पृष्ठ १]

स्त्री-पुरुष समस्या

क. मूल में एक हैं :

"मेरी अपनी राय तो यह है कि जैसे मूल में स्त्री और पुरुष एक हैं, ठीक उसी तरह उनकी समस्या का तत्त्व भी असल में एक ही है। दोनों में एक ही आत्मा विराजमान है। दोनों एक ही प्रकार का जीवन बताते हैं। दोनों की एक ही भाँति की भावनाएँ हैं। एक दूसरे का पूरक है। एक की असली सहायता के बिना दूसरा जी नहीं सकता।"

× × ×

ख. पर भिन्न भी हैं :

"फिर भी इसमें कोई शक नहीं कि एक जगह पहुँचकर दोनों के काम अलग-अलग हो जाते हैं। जहाँ यह बात सही है कि मूल में दोनों एक हैं, वहाँ यह भी उतना ही सच है कि दोनों की शरीर-रचना एक दूसरे से बहुत भिन्न है। इसलिए दोनों का काम भी अलग-अलग ही होना चाहिए। मातृत्व का धर्म ऐसा है जिसे अधिकांश

स्त्रियाँ सदा ही धारण करती रहेंगी। मगर उसके लिए जिन गुणों की आवश्यकता है उनका पुरुषों में होना जरूरी नहीं है। वह सहने वाली है, वह करने वाला है। वह स्वभाव से घर की मालकिन है, वह कमाने वाला है। वह कमाई की रक्षा करती और बाँटती है। वह हर माने में पालक है। मानव-जाति के दुधमुँहे बच्चों को पाल-पोसकर बड़ा करने की कला उसी का विशेष धर्म और एकमात्र अधिकार है। वह सँभालकर न रखे तो मानव जाति नष्ट हो जाय।"

—ह० से० २४।२।'४०; पृष्ठ ११]

स्त्रियों की आर्थिक स्वतन्त्रता

[प्रश्न—जायदाद पर विवाहित स्त्रियों के अधिकार-सम्बन्धी कानूनों के सुधार का चन्द लोग इस बिना पर विरोध करते हैं कि स्त्रियों की आर्थिक स्वतन्त्रता से उनमें दुराचार फैलेगा और गृहस्थ जीवन टूटकर बिखर जायगा। इस सवाल पर आपका क्या रुख है ?]

"मैं इस सवाल का जवाब एक दूसरा सवाल पूछकर दूँगा। क्या पुरुषों की स्वतन्त्रता और मिल्कियत पर उनके प्रभुत्व ने पुरुषों में दुराचार का प्रचार नहीं किया है ? अगर तुम इसका जवाब 'हाँ' देते हो, तो फिर औरतों के साथ भी वही घटित होने दो और जब औरतों को भी मिल्कियत के अधिकार तथा और बातों में भी उनको पुरुषों-जैसे हक़ मिल जायँगे, तब यह पता चलेगा कि ऐसे अधिकारों के उपयोग पर उनके पाप-पुण्य की जिम्मेदारी नहीं है। जो सदाचरण किसी पुरुष या स्त्री की निस्सहायता पर निर्भर है उसमें प्रशंसा के योग्य कोई बात नहीं है। सदाचरण तो हमारे हृदयों की शुद्धता-निर्मलता में बद्धमूल होता है।"

—सेवाग्राम, ४।६।'४० ह० से० ८।६।'४०; पृष्ठ १३८]

सतीत्व-भंग बनाम बलात्कार

"···सच्चा सतीत्व-भंग तो उस स्त्री का होता है, जो उसमें सम्मत हो जाती है; लेकिन जो विरोध करते हुए भी घायल हो जाती है उसके सम्बन्ध में सतीत्व-भंग की अपेक्षा यह कहना अधिक उचित है कि उस पर बलात्कार हुआ। 'सतीत्व भंग' या व्यभिचार शब्द बदनामी का सूचक है इसलिए वह बलात्कार का पर्यायवाची नहीं माना जा सकता।"

—सेवाग्राम, २३।२।'४२ ह० बं० । ह० से० १।३।'४२; पृष्ठ ६०]

मातृजीवन धर्म है

"······आम तौर पर बहनों को मातृधर्म की शिक्षा नहीं मिलती लेकिन अगर गृहस्थजीवन धर्म है तो मातृजीवन भी धर्म ही है। माता का धर्म एक कठिन धर्म है।···जो स्त्री देश को तेजस्वी, नीरोग और सुशिक्षित सन्तान भेंट करती है, वह भी सेवा ही करती है।···"

—सेवाग्राम, ३।३।'४२। ह० से०, ८।३।'४२; पृष्ठ ६६]

हिन्दू विधवा

"······हिन्दू विधवा दुःख की प्रतिमा है। उसने संसार के दुःख का भार अपने सिर ले लिया है। उसने दुःख को सुख बना डाला है। दुःख को धर्म बना दिया है।"

—नवजीवन। हिं न० जी० २।७।'२५; पृष्ठ ३७३]

वैधव्य

"······वैधव्य हिन्दू धर्म का शृङ्गार है। धर्म का भूषण वैराग्य है, वैभव नहीं।"

× × ×

"परन्तु हिन्दूशास्त्र किस वैधव्य की स्तुति और स्वागत करता है?

पन्द्रह वर्ष की मुग्धा के वैधव्य का नहीं जो कि विवाह का अर्थ भी नहीं जानती।......वैधव्य सब तरह, सब जगह, सब समय अनिवार्य सिद्धान्त नहीं है। वह उस स्त्री के लिए धर्म है जो उसकी रक्षा करती है।"

× × ×

"सती स्त्रियों, अपने दुःख को तुम सँभालकर रखना! वह दुःख नहीं सुख है। तुम्हारा नाम लेकर बहुतेरे पार उतर गये हैं और उतरेंगे।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० २।७।'२५; पृष्ठ ३७३]

हिन्दू विधवा

"हिन्दू विधवा की सृष्टि करके विधाता ने कमाल कर दिया है। जब-जब मैं पुरुषों को अपने दुःख की कथा कहते हुए सुनता हूँ तब-तब विधवा बहिनों की प्रतिमा मेरे सामने खड़ी हो जाती है। उस पुरुष को, जो अपने दुःखों का रोना रोता है, देखकर मुझे हँसी आती है।

"हिन्दूधर्म ने संयम को उच्चतम कोटिपर पहुँचाया है और वैधव्य उसकी परिसीमा है।"

"......अनेक विधवाएँ दुःख को दुःख ही नहीं मानतीं। त्याग उनके लिए एक स्वाभाविक चीज़ हो गई है। त्याग का ही त्याग उन्हें दुःख रूप मालूम होता है। विधवा का दुःख ही उसके लिए सुख माना गया है।

"यह स्थिति बुरी नहीं। अच्छी है। इसमें हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता है। वैधव्य को मैं हिन्दूधर्म का भूषण मानता हूँ। जब मैं विधवा बहिनों को देखता हूँ तो मेरा सिर अपने आप उनके चरणों पर झुक जाता है। विधवा का दर्शन मेरे नज़दीक अपशकुन नहीं। प्रातःकाल उसका दर्शन करके मैं अपने को कृतार्थ मानता हूँ! उसके आशीर्वाद को मैं एक बड़ा प्रसाद मानता हूँ। उसे देखकर मैं तमाम दुःखों को भूल जाता

हूँ। विधवा के मुकाबले पुरुष एक पामर प्राणी है। विधवा-धैर्य का अनुकरण असम्भव है। प्राचीनकाल की जो विरासत विधवा को मिली है उसके सामने पुरुष के क्षणिक त्याग की पूँजी की क्या कीमत हो सकती है?

"यदि इस विधवा-धर्म का लोप हो, यदि कोई अज्ञान या जहालत के वशीभूत होकर सेवा की इस साक्षात् मूर्ति का खण्डन करे तो हिन्दू-धर्म को बड़ी हानि पहुँचे।"

वैधव्य

"...मेरा यह दृढ़ मत होता जाता है कि दुनिया में बाल-विधवा-जैसी कोई प्रकृति-विरुद्ध वस्तु होनी ही न चाहिए। वैधव्य धर्म नहीं, धर्म तो संयम है। बल-प्रयोग और संयम ये दोनों परस्पर-विरुद्ध हैं।...

× × ×

"..........बलपूर्वक पालन कराया गया वैधव्य पाप है, स्वेच्छा से पालित वैधव्य धर्म है, आत्मा की शोभा है, समाज की पवित्रता की ढाल है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० १०।७।'२५; पृष्ठ ३९३]

सच्ची विधवा और बाल-विधवा

"......मेरा विश्वास है कि सच्ची हिन्दू विधवा एक रत्न है।...परन्तु बाल-विधवाओं का अस्तित्व हिन्दूधर्म के ऊपर एक कलङ्क है...।"

—यं० इं०। हिं० न० जी०, १९।८।'२६; पृष्ठ ६]

वेश्यावृत्ति

"...जबतक स्त्रियों में से ही असाधारण चरित्र वाली बहिनें उत्पन्न होकर इन पतित बहिनों के उद्धार का कार्य अपने हाथ में न लेंगी तब-

तक वेश्यावृत्ति की समस्या हल नहीं हो सकती ।......वेश्यावृत्ति उतनी ही पुरानी है जितनी कि यह दुनिया है; पर आज की तरह वह नगर-जीवन का नियमित अंग शायद ही रही हो । हर हालत में वह समय आये बिना नहीं रह सकता जब कि मानव जाति इस पाप के खिलाफ़ आवाज़ उठावेगी और वेश्यावृत्ति को भूतकाल की चीज़ बना देगी ।"

—यं० इं० । हिं० न० जी० २८।५।'२५; पृष्ठ ३३८]

× × ×

"...वेश्यावृत्ति एक महाभीषण और बढ़ता जाने वाला दोष है । दोष में भी गुण देखने की और कला के पवित्र नाम पर अथवा दूसरी किसी मिथ्या भावना से बुराई को जायज़ मानने की प्रवृत्ति ने इस अधःपातकारी पाप-विलास को एक प्रकार के सूक्ष्म आदरभाव से सज्जित कर दिया है और वही इस नैतिक कुष्ट के लिए ज़िम्मेदार है ।..."

—यं० इं० । हिं० न० जी० ९।७।'२५; पृष्ठ ३८५]

समाज-सुधार अधिक कठिन है !

"· राजनीतिक हलचल की अपेक्षा, समाज-सुधार का काम कहीं अधिक मुश्किल है ।"

—नवजीवन । हिं० न० जी०, ६।९।'२८; पृष्ठ २१]

दहेज

"···जब वर-कन्या के बाप से विवाह करने की मिहरबानी के लिए दण्ड लेता है तब नीचता की हद्द हो जाती है ।···पैसे के लालच से किया गया विवाह विवाह नहीं है, एक नीच सौदा है ।"

—नवजीवन । हिं० न० जी०, ६।९।'२८; पृष्ठ २४]

परदा और पवित्रता

"...पवित्रता कुछ परदे की आड़ में रखने से नहीं पनपती। बाहर से यह लादी नहीं जा सकती। परदे की दीवार से उसकी रक्षा नहीं की जा सकती। उसे तो भीतर से ही पैदा होना होगा। और अगर उसका कुछ मूल्य है तो वही सभी प्रकार के बिन-बुलाये आकर्षणों का सामना करने योग्य होनी चाहिए। वह तो सीता की पवित्रता-सी उद्धत होगी। अगर वह पुरुषों की नज़र को सहन न कर सके तो उसे बहुत ही साधारण वस्तु कहना होगा।"

—यं० इं०। हिं० न० जी० ३।२।२७; पृष्ठ १९५]

परदा

"...परदे की बुराई के विषय में मैं काफ़ी लिख चुका हूँ। यह प्रथा हर तरह से अकल्याणकारिणी है। अनुभव से यह सिद्ध हो चुका है कि स्त्री की रक्षा करने के बदले यह स्त्री के शरीर और मन को हानि पहुँचाती है।"

—हिं० न० जी०, १२।९।'२९; पृष्ठ २८]

गहने

"...गहनों की उत्पत्ति की जो कल्पना मैंने की है, वह अगर ठीक है तो चाहे जैसे हलके और खूबसूरत क्यों न हों हर हालत में गहने त्याज्य हैं। बेड़ी सोने की हो या हीरा-मोती से जड़ी हो, आखिर बेड़ी ही है। अँधेरी कोठरी में बन्द करो या महल में रखो, दोनों में रखे स्त्री-पुरुष कैदी तो कहे ही जायँगे।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, ९।१।'३०; पृष्ठ १६५]

: १७ :

सहधर्मियों को चेतावनी

मानव-पूजा नहीं, आदर्श-पूजा

"...मैंने कोई रास्ता बतला दिया है। उसे आपने मान लिया है लेकिन मनुष्य की पूजा करना हमारा काम नहीं है। पूजा आदर्श और सिद्धान्त की ही हो सकती है।...आप मेरे पुजारी न बनें। सत्य है, अहिंसा है, इनके पुजारी आप बन सकते हैं। आपने जिस चीज को अपना लिया वह स्वतन्त्र रूप से आप की हो गई। और जो स्वतन्त्र रूप से आप की हो, वही आप की है।"

विचारों की बदहज़मी

"....किसी आदमी के ख्यालात को हमने ग्रहण तो किया, पर हजम नहीं किया, बुद्धि से उनको ग्रहण कर लिया पर उन्हें हृदयस्थ नहीं किया, उनपर अमल नहीं किया तो वह एक प्रकार की बदहजमी ही है; बुद्धि का विलास है। विचारों की बदहजमी खुराक की बदहजमी से कहीं बुरी है। खुराक की बदहजमी के लिए तो दवा है, पर विचारों की बदहजमी आत्मा को बिगाड़ देती है।"

—तृतीय गांधी सेवा संघ सम्मेलन, हुदली, १६।४।'३७]

झूठा गांधीवाद

"...अगर गांधीवाद में असत्य की बू है तो उसका अवश्य ध्वंस होना चाहिये। अगर उसमें सत्य है तो उसके नाश के लिए लाखों या करोड़ों आवाजें लगाई जाने पर भी उसका नाश नहीं होगा।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, मालिकान्दा (बंगाल); २०।२।'४०]

× × ×

"...जो अपने हृदय को रोककर मेरी सलाह पर चलते हैं या मेरे दबाव से काम करते हैं, वे सच्चे गांधीवादी नहीं हैं।"

—मालिकान्दा (बंगाल) २१।२।'४०]

× × ×

"सच बात तो यह है कि आपको 'गांधीवाद' नाम ही छोड़ देना चाहिये, नहीं तो आप अन्धकूप में जाकर गिरेंगे। गांधीवाद का ध्वंस होना ही है।...'वाद' का तो नाश ही होना उचित है। वाद तो निकम्मी चीज है। असली चीज अहिंसा है। वह अमर है। वह जिन्दा रहे इतना मेरे लिए काफी है।......आप साम्प्रदायिक न बनें। मैं तो किसी का साम्प्रदायिक नहीं बना। कोई सम्प्रदाय कायम करना कभी मेरे ख्वाब में ही नहीं आया। मेरे मरने के बाद मेरे नाम पर अगर कोई सम्प्रदाय निकला तो मेरी आत्मा रुदन करेगी।"

—मालिकान्दा, २२।२।'४०]

'मेरा कोई अनुयायी नहीं'

"लोग चाहे जो कहें, सेवा का कोई सम्प्रदाय नहीं बन सकता। वह तो सब के लिए है। हम सब को स्वीकार करेंगे। सब के साथ चलने की कोशिश करेंगे। यही अहिंसा का रास्ता है। अगर हमारा कोई 'वाद' है तो यही है।...मेरे पास कोई अनुयायी नहीं है। मैं ही अपना अनुयायी हूँ। नहीं, नहीं, मैं भी अपना पूरा-पूरा अनुयायी कहाँ बन पाया हूँ। अपने विचारों पर मैं भी कहाँ अमल कर सकता हूँ। तब दूसरे मेरे अनुयायी कैसे हो सकते हैं। दूसरे मेरे साथ चलें, मेरे सहयात्री रहें, यह तो मुझे प्रिय है। लेकिन कौन आगे चले, कौन पीछे चले, इसका मुझे कहाँ पता है? आप सब मेरे सहाध्यायी, सहकर्मी, सहसेवक, सहसंशोधक हैं। अनुयायी होने की बात आप छोड़ दें। कोई आगे नहीं,

कोई पीछे नहीं। कोई नेता नहीं, कोई अनुयायी नहीं। हम सब साथ साथ हारबन्द (एक कतार में) चल रहे हैं।"

—गां० से० सं० सम्मेलन, मालिकान्दा (बंगाल) २२।२।'४०]

गांधी सेवा संघ का विसर्जन

"...वह सीता जो लुप्त हो गई, अमर है। आज तक हम उसका नाम लेकर पावन होते हैं। वह सीता जिन्दा है। छाया की सीता मर गई। अगर हम दरअस्ल शक्तिशाली होना चाहते हैं तो संघ का विसर्जन कर दें। यह भी शक्ति का काम है। इसके लिए भी हिम्मत और बल चाहिये।"

—गां० से० सं० सम्मेलन, मालिकान्दा (बंगाल) २१।२।'४०]

गांधी सेवा संघ और कांग्रेस

"...कांग्रेस एक तूफानी समुद्र है। वहाँ जाकर अगर आप अपने रोषादि रोक सकते हैं तो मान लीजिये कि अपना जहाज चल रहा है। संघ तो बन्दरगाह है। यहाँ शक्ति के प्रयोग का कोई अवसर ही नहीं।"

—गां० से० सं० सम्मेलन, मालिकान्दा (बंगाल) ३१।२।'४०]

गांधीवाद का ध्वंस हो !

"...अगर गांधीवाद सम्प्रदायवाद का ही दूसरा नाम है तो वह मिटा देने के काबिल है। मरने के बाद अगर मुझे मालूम हो कि मैंने जिन चीजों की हिदायत की थी बिगड़कर सम्प्रदायवाद बन गई हैं तो मेरी आत्मा को गहरी चोट पहुँचेगी। हमें तो चुपचाप कर जाना है। कोई यह न कहे कि मैं गांधी का अनुयायी हूँ। मैं जानता हूँ कि मैं अपना कितना अपूर्ण अनुयायी हूँ।"

—ह० से० २६।३।'४०; पृष्ठ ३३। गांधी सेवा संघ के भाषण से]

: १८ :

विधायक कार्यक्रम

स्वराज्यनिर्माण की प्रक्रिया

"...दूसरे और अधिक उपयुक्त शब्दों में, विधायक कार्यक्रम को सत्य और अहिंसक साधनों द्वारा पूर्ण स्वराज्य...की रचना या निर्माण की प्रक्रिया कह सकते हैं।"

१. साम्प्रदायिक एकता

"...इस एकता का अर्थ केवल राजनैतिक एकता नहीं है क्योंकि राजनैतिक एकता तो ज़बर्दस्ती लादी जा सकती है। साम्प्रदायिक एकता के मानी हृदय की वह एकता है जो तोड़ने से भी टूट न सके। इस एकता की स्थापना की पहली शर्त यह है कि प्रत्येक कांग्रेसजन, चाहे वह किसी धर्म का क्यों न हो, अपने-आपमें हिंदू, मुसलमान, ईसाई ज़रथुस्त्री, यहूदी आदि का, याने, एक शब्द में, प्रत्येक हिन्दू और गैर-हिन्दू का प्रतिनिधित्व करे।...इसके लिए प्रत्येक कांग्रेसजन को दूसरे धर्म के व्यक्तियों के साथ व्यक्तिगत मित्रता क़ायम करनी और बढ़ानी चाहिए। उसे दूसरे धर्मों के प्रति उतना ही आदर रखना चाहिए जितना कि अपने धर्म के प्रति।..."

२. अस्पृश्यता-निवारण

"...कई कांग्रेसजनों ने इस काम को केवल राजनैतिक दृष्टि से ही ज़रूरी समझा है और यह नहीं माना कि हिन्दुओं को उसकी आवश्यकता अपने धर्म की रक्षा के लिए है। कांग्रेसी हिन्दू यदि इस काम को शुद्ध भावना से अपने हाथ में ले लें तो सनातनी कहलाने वाले लोगों पर आज तक जो असर हुआ है उससे कहीं अधिक असर पड़

सकेगा।...हर एक हिन्दू को हरिजनों को अपनाना चाहिए, उनके सुख-दुःख में भाग लेना चाहिए और उनके पृथग्वास में उनके साथ मित्रता करनी चाहिए।..."

३. शराबबन्दी

"...अगर हम अहिंसात्मक प्रयत्न के द्वारा अपना ध्येय प्राप्त करना चाहते हैं तो जो लाखों स्त्री-पुरुष शराब, अफ़ीम वगैरा नशीली चीज़ों के व्यसन के शिकार हो रहे हैं, उनके भाग्य का निर्णय हम भविष्य की सरकार पर नहीं छोड़ सकते।...कांग्रेस कमेटियाँ ऐसे विश्रान्तिगृह खोल सकती हैं, जहाँ थके-माँदे मजदूर को विश्राम मिले, उसे स्वास्थ्यपूर्ण और सस्ता कलेवा मिले और उनके लायक खेल खेलने का इन्तजाम हो। यह सारा काम चित्ताकर्षक और उन्नतिकारक है। स्वराज्य के बारे में अहिंसक दृष्टि सर्वथा नई दृष्टि है। उसमें पुराने मूल्यों की जगह नये मूल्य दाखिल हो जाते हैं।...स्थायी और स्वास्थ्य-पूर्ण मुक्ति भीतर से ही आती है याने आत्म-शुद्धि से ही उद्भूत होती है।"

४. खादी

"...खादी देश के सब प्रजाजनों की आर्थिक स्वतन्त्रता और समानता के आरम्भ की सूचक है।...खादी के स्वीकार के साथ-साथ उसमें अन्तर्भूत दूसरी सारी चीजों का स्वीकार भी होना चाहिए। खादी के माने हैं सर्वव्यापी स्वदेशी भावना; जीवन की सारी आवश्यकताएँ हिंदुस्तान में से ही, और सो भी ग्रामवासियों की मेहनत और बुद्धि के प्रयोग के द्वारा, प्राप्त करने का निश्चय।...इसके लिए बहुत लोगों की मनोवृत्ति और अभिरुचि में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने की ज़रूरत है। अहिंसक मार्ग कई बातों में सुगम है लेकिन दूसरी बहुत सी बातों में

बहुत विकट भी है। वह हर एक भारतवासी के जीवन को स्पर्श करता है, उसके भीतर छिपी हुई शक्ति की भावना का तेज प्रज्वलित करता है और भारतीय महामानव-सागर की बूँद-बूँद के साथ अपने तादात्म्य का अभिमान उसके दिल में जाग्रत करता है। हम कई युगों से अहिंसा को गलती से निष्प्राणता समझते आये हैं। लेकिन यह निष्प्राणता नहीं है, बल्कि मनुष्य का जीवन जिसपर निर्भर है ऐसी आज तक की सभी ज्ञात शक्तियों से अधिक प्रभावशाली शक्ति है। मैंने कांग्रेस को, और उसके जरिए दुनिया को, यही शक्ति भेंट करने का यत्न किया है। मेरे लिए खादी भारतीय मानवता की एकता का, उसकी आर्थिक स्वतन्त्रता और समानता का प्रतीक है···खादी मनोवृत्ति के माने जीवन की आवश्यकताओं के उत्पादन और विभाजन का विकेन्द्रीकरण है।···"

५. अन्य ग्रामोद्योग

"ये उद्योग खादी के अनुचर-जैसे हैं। वे खादी के बिना जी नहीं सकते और उनके बिना खादी की सारी वकअत नष्ट हो जायगी। हाथ-पिसाई, हाथ-कुटाई, साबुनसाजी, कागज़, दियासलाई बनाना, चमड़ा कमाना, तेल पेरना आदि आवश्यक ग्रामोद्योगों के बिना ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था पूर्ण नहीं हो सकती। ···जहाँ-जहाँ और जब-जब देहात की बनी चीज़ें मिल सकें वहाँ उन्हीं का उपयोग करना हर एक को अपना कर्तव्य मानना चाहिए।···"

६. गाँव की सफाई

"बुद्धि और श्रम के तलाक की बदौलत देहातों की अवहेलना का अपराध हमसे हुआ है, और इसलिए सारे देश में जहाँ-तहाँ रमणीय

गांवों के बदले हम घूरे देखते हैं।···अगर अधिकांश कांग्रेसजन देहातों से ही आये हुए हों···तो उनमें अपने गांवों को हर माने में स्वच्छता के आदर्श बनाने की कूवत होनी चाहिए। लेकिन देहातियों के दैनिक जीवन के साथ समरस हो जाना क्या उन्होंने कभी अपना कर्त्तव्य समझा है?···हम जैसे-तैसे स्नान कर लेते हैं लेकिन हम जिस कुएँ, तालाब या नदी पर नहाते-धोते हैं उसे गन्दा करने में कोई बुराई नहीं समझते। मैं इस दोष को एक महान् दुर्गुण मानता हूँ।···"

७. नई या बुनियादी तालीम

"यह नया विषय है।·····इस शिक्षण का उद्देश देहाती बालकों को आदर्श ग्रामवासी बनाना है। इसका आयोजन ही खास उन्हींके लिए है। इसकी प्रेरणा देहात से मिली है।······प्रचलित प्राथमिक शिक्षण एक ढकोसला है, जिसमें न तो ग्रामीण भारत की आवश्यकताओं का कोई लिहाज रखा गया है और न शहरों की ज़रूरतों का ही। बुनियादी शिक्षण शहर और देहात के बालकों का सम्बन्ध भारत के उत्कृष्ट और चिरस्थायी तत्त्वों के साथ कायम कर देता है।···"

८. प्रौढ़-शिक्षण

"······अगर प्रौढ़ शिक्षण मुझे सौंप दिया जाय तो मैं अपने प्रौढ़ विद्यार्थियों में सबसे पहले अपने देश की महत्ता और विशालता का भाव जाग्रत करूँगा।···देहाती का हिन्दुस्तान उसके अपने गाँव तक सीमित होता है।······उसके लिए हिन्दुस्तान एक भौगोलिक संज्ञा है। देहातों में जो अज्ञान छा रहा है, उसका हमें कोई ख्याल नहीं है।······मेरे प्रौढ़-शिक्षण के मानी हैं कि सबसे पहले प्रौढ़ों को मौखिक रूप से सच्ची राजनैतिक शिक्षा दी जाय।······"

९. स्त्रियों की उन्नति

"...... स्त्री ऐसे कानूनों और रस्म-रिवाजों में दबा दी गई है जिनके लिए पुरुष जिम्मेदार है और जिनके गढ़ने में स्त्री का कोई हाथ नहीं रहा। अहिंसा की नींव पर रची हुई समाज-व्यवस्था में स्त्री को अपने भाग्य का विधान करने का उतना ही अधिकार है, जितना पुरुष को। परन्तु अहिंसक समाज में प्रत्येक अधिकार कर्तव्य-पालन से उत्पन्न होता है इसलिए यह क्रमप्राप्त है कि सामाजिक व्यवहार के नियम पारस्परिक सहयोग और विचार-विनिमय से बनाये जायँ। वे कभी बाहर से लादे नहीं जा सकते। स्त्रियों के प्रति अपने व्यवहार में पुरुषों ने यह सत्य पूरी तरह महसूस नहीं किया है। स्त्रियों को अपने मित्र और सहयोगी समझने के बजाय उन्होंने अपने को उनका स्वामी और शासक माना है। कांग्रेसजनों का यह विशेष अधिकार है कि वे भारत की स्त्री जाति को ऊपर उठाने में मदद दें।......"

१०. स्वास्थ्य और शौच की शिक्षा

"......यह बात निःसंदिग्ध रूप से प्रमाणित हो चुकी है कि मनुष्य जाति को होनेवाले अधिकांश रोग स्वास्थ्य और शौच के नियमों की अवहेलना के कारण ही होते हैं। हमारे यहाँ मृत्यु का बहुत बड़ा परिमाण निस्सन्देह हमारे प्राणों को कुतरनेवाले दारिद्र्य के ही कारण है लेकिन लोगों को शौच और स्वास्थ्य की समुचित शिक्षा दी जाय, तो वह परिमाण घटाया जा सकता है।......'चंगा शरीर चंगा दिल' शायद मानवता का पहला कानून है।......शरीर और मन में अनिवार्य सम्बन्ध है।...... स्वास्थ्य और शौच के मूलभूत नियम सीधे-सादे हैं...नियम इस प्रकार हैं:—

शुद्ध से शुद्ध विचार रखिए। सारे बेकार और अपवित्र विचारों को निकाल दीजिए।

रातदिन ताजी से ताजी हवा में रहिए।

शारीरिक और मानसिक श्रम का सन्तुलन रखिए।

सीधे खड़े हूजिए, सीधे बैठिए, अपने हर-एक काम में साफ़-सुथरे रहिए। इन सब बातों में आपकी भीतरी स्थिति अभिव्यक्त होनी चाहिए।

अपने भाइयों की सेवा के हित जीने के लिए खाइए। भोग-विलास के लिए जीवित न रहिए। अतः आपका आहार ठीक उतना ही हो जितना मन और शरीर को सुस्थिति में रखने के लिए आवश्यक हो। मनुष्य जो खाता है, वैसा बनता है।

आपका पानी, अन्न और हवा स्वच्छ होने चाहिएँ और आपको सिर्फ व्यक्तिगत स्वच्छता से सन्तोष नहीं मानना चाहिए बल्कि जो त्रिविध स्वच्छता आप अपने लिए चाहते हैं उसीसे अपने आसपास का वातावरण भर देना चाहिए।

११. राष्ट्रभाषा-प्रचार

"......अंग्रेजों ने हम पर जो जादू का असर डाला वह अभी नष्ट नहीं हुआ है। उसके कारण हम हिन्दुस्तान की, उसके ध्येय की ओर प्रगति में रोड़े अटकाते हैं। हम अंग्रेजी सीखने में जितने साल बिताते हैं उतने महीने अगर हिन्दी सीखने में बिताने का कष्ट नहीं करते तो जनता के लिए हमारा प्रेम बिल्कुल ऊपरी है।"

१२. स्वभाषाप्रेम

"......अपनी मातृभाषा की अपेक्षा अंग्रेजी के प्रति हमारे विशेष अनुराग ने सुशिक्षित और राजनैतिक वृत्ति के वर्गों के तथा जनता के

बीच एक गहरी खाई खोद दी है। हिन्दुस्तान की भाषाएँ श्रीहीन हो गई हैं।......जबतक हम इस अनर्थ का निराकरण नहीं करेंगे तबतक जनता की बुद्धि जकड़ी हुई रहेगी।

१३. आर्थिक समानता के लिए प्रयत्न

"यह अन्तिम चीज़ अहिंसक स्वतन्त्रता की मानो गुरुकुञ्जी है। आर्थिक समानता के प्रयत्न के माने पूँजी और श्रम के शाश्वत विरोध का परिहार करना है। उसके माने ये हैं कि एक तरफ़ से जिन मुट्ठी भर धनाढ्यों के हाथ में राष्ट्र की सम्पत्ति का अधिकांश इकट्ठा हुआ है वे नीचे को उतरें; और जो करोड़ों लोग भूखे और नंगे हैं, उनकी भूमिका ऊँची उठे।......हरएक कांग्रेसजन को अपने आपसे यह पूछना चाहिए कि आर्थिक समानता की स्थापना के लिए उसने क्या किया है।"

—बारडोली ; १३।१२।'४१]

: १९ :

अपने विषय में

आत्मदर्शन ही इष्ट है !

"जो बात मुझे करनी है, आज ३० साल से जिसके लिए मैं उद्योग कर रहा हूँ, वह तो हैं—आत्मदर्शन, ईश्वर का साक्षात्कार, मोक्ष। मेरे जीवन की प्रत्येक क्रिया इसी दृष्टि से होती है। मैं जो कुछ लिखता हूँ, वह भी इसी उद्देश से; और राजनीतिक क्षेत्र में जो मैं कूदा सो भी इसी बात को सामने रखकर।"

—साबरमती, मार्गशीर्ष शुल्क ११, सं० १९८२; 'आत्मकथा' की भूमिका से]

मेरी महत्त्वाकांक्षा

"मैं इस बात का दावा तो रखता हूँ कि मैं भारत-माता का और मनुष्य-जाति का एक नम्र सेवक हूँ और ऐसी सेवाओं के करते हुए मृत्यु की गोद में जाना पसन्द करूँगा।"

"पर मुझे सम्प्रदाय स्थापित करने की कोई इच्छा नहीं है। सच पूछिए तो मेरी महत्त्वाकांक्षा इतनी विशाल है कि कुछ अनुयायियों का कोई सम्प्रदाय स्थापित करने से तृप्त नहीं हो सकती। मैंने किसी नये सत्य का आविष्कार नहीं किया है बल्कि सत्य को जैसा मैं जानता हूँ उसी के अनुसार चलने का और लोगों को बताने का प्रयत्न करता हूँ। हाँ, प्राचीन सत्य-सिद्धान्त पर नया प्रकाश डालने का दावा मैं ज़रूर करता हूँ।"

—यं० इं० से। हिं० न० जी०, २६।८।'२१]

मैं क्या हूँ ?

"मैं तो एक विनम्र सत्य-शोधक हूँ। मैं अधीर हूँ, इसी जन्म में

आत्म-साक्षात्कार कर लेना, मोक्ष प्राप्त कर लेना चाहता हूँ। मैं अपने देश की जो सेवा कर रहा हूँ वह तो मेरी उस साधना का एक अंग है जिसके द्वारा मैं इस पञ्चभौतिक शरीर से अपनी आत्मा की मुक्ति चाहता हूँ। इस दृष्टि से मेरी देश-सेवा केवल स्वार्थ-साधना है। मुझे इस नाशवान् ऐहिक राज्य की कोई अभिलाषा नहीं है। मैं तो ईश्वरीय राज्य को पाने का प्रयत्न कर रहा हूँ। वह है मोक्ष। अपने इस ध्येय की सिद्धि के लिए मुझे गुफा का आश्रय लेने की कोई आवश्यकता नहीं। यदि मैं समझ पाऊँ तो एक गुफा तो मैं अपने साथ ही लिये फिरता हूँ। गुफा-निवासी तो मन में महल को भी खड़ा कर सकता है; पर जनक-जैसे महल में रहनेवालों को महल बनाने की ज़रूरत ही नहीं रहती। जो गुफावासी विचारों के परों पर बैठकर दुनिया की चारों ओर मँडराता है उसे शान्ति कहाँ? परन्तु जनक राजमहलों में आमोदप्रमोदमय जीवन व्यतीत करते हुए भी कल्पनातीत शान्ति प्राप्त कर सकते हैं। मेरे लिए तो मुक्ति का मार्ग है अपने देश की और उसके द्वारा मनुष्य-जाति की सेवा करने के लिए सतत परिश्रम करना। मैं संसार के भूतमात्र से अपना तादात्म्य कर लेना चाहता हूँ। मैं 'समः शत्रौ च मित्रे च' हो जाना चाहता हूँ।···इस प्रकार मेरी देशभक्ति और कुछ नहीं अपनी चिरमुक्ति और शान्ति के देश की मंजिल का एक विश्रामस्थान है। मेरे नज़दीक धर्मशून्य राजनीति कोई चीज़ नहीं। राजनीति धर्म की अनुचरी है। धर्महीन राजनीति को एक फाँसी ही समझिए। वह आत्मा का नाश कर देती है।"

—यं० इं०। हिं० न० जा० ६।४।'२४]

मेरा धर्म

"मेरा धर्म तो मेरे और मेरे सिरजनहार के बीच की बात है। अगर

मैं हिन्दू हूँगा तो सारी हिन्दू दुनिया के छोड़ देने पर भी मेरा हिन्दूपन मिट नहीं सकता ।"

—यं० इं० । हिं० न० जी० १।६।'२४; पृष्ठ ३३५]

मेरी चेष्टा

"मैं गरीब से गरीब हिन्दुस्तानी के जीवन के साथ अपने जीवन को मिला देना चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि दूसरे तरीकों से मुझे ईश्वर के दर्शन हो ही नहीं सकते। मुझे उसे प्रत्यक्ष देखना है; इसके लिए मैं अधीर हो बैठा हूँ। जब तक मैं गरीब से गरीब न बन सकूँ तब तक साक्षात्कार हो ही नहीं सकता।"

—नवजीवन । हिं० न० जी० २७।७।'२४; पृष्ठ ४०४]

मैं मूर्तिपूजक हूँ और मूर्तिभञ्जक भी !

"....मैं मूर्ति-पूजक भी हूँ और मूर्तिभञ्जक भी हूँ, पर उस अर्थ में जिसे मैं इन शब्दों का सही अर्थ मानता हूँ। मूर्ति-पूजा के अन्दर जो भाव हैं मैं उसका आदर करता हूँ। मनुष्य जाति के उत्थान में उससे अत्यन्त सहायता मिलती है और मैं अपने प्राण देकर भी उन हजारों पवित्र देवालयों की रक्षा करने की सामर्थ्य अपने अन्दर रखना पसन्द करूँगा जो हमारी इस जननी जन्मभूमि को पुनीत कर रहे हैं।...मैं मूर्तिभञ्जक इस मानी में हूँ कि मैं उस धर्मान्धता के रूप में छिपी सूक्ष्म मूर्तिपूजा का सिर तोड़ देता हूँ जो कि अपनी ईश्वर-पूजा की विधि के अलावा दूसरे लोगों की पूजाविधि में किसी गुण और अच्छाई को देखने से इन्कार करती है।...."

—यं० इं० । हिं० न० जी०, ३१।८।'२४; पृष्ठ २०]

स्वतन्त्रता की सीमा

"...मैं मानता हूँ कि मैं परिस्थिति के अधीन हूँ---देश और काल के अधीन हूँ। फिर भी परमेश्वर ने कुछ स्वतन्त्रता मुझे दे रखी है और मैं उसकी रक्षा कर रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि धर्म और अधर्म को जानकर उनमें से मुझे जो पसन्द हो उसे ग्रहण करने की स्वतन्त्रता मुझे है। मुझे यह कभी प्रतीत न हुआ कि मुझे स्वतन्त्रता नहीं है। परन्तु यह निर्णय करना कठिन है कि किसी कार्य के करने की स्वतन्त्रता अपना रूप बदलकर कर्तव्य कहाँ बन जाती है। अवशता और परवशता की सीमा बहुत ही सूक्ष्म है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, १४।१२।'२४; पृष्ठ १४२, मानसशास्त्र के एक अमेरिकन अध्यापक से बातचीत करते हुए]

मेरा क्षेत्र

"...मेरा क्षेत्र निर्मित हो गया है। वह मुझे प्रिय भी है। मैं अहिंसा के मन्त्र पर मुग्ध हो गया हूँ। मेरे लिए वह पारसमणि है। मैं जानता हूँ कि दुखी हिन्दुस्तान को अहिंसा का ही मन्त्र शान्ति दिला सकता है। मेरी दृष्टि में अहिंसा का रास्ता कायर या नामर्द का रास्ता नहीं है। अहिंसा क्षत्रिय धर्म की परिसीमा है क्योंकि उसमें अभय की सोलहों कलाएँ सोलह आने खिल पड़ती हैं। अहिंसा धर्म के पालन में पलायन या हार के लिए जगह ही नहीं है। वह आत्मा का धर्म है इसलिए दुःसाध्य नहीं। जो समझता है, उसमें सहज ही स्फुरित होता है।..."

—हिं० न० जी०, ८।१।'२५; पृष्ठ १७३–१७५। काठियावाड़ राजनीतिक परिषद् में ८।१।'२५ को अध्यक्ष पद से दिये गये भाषण से]

मैं घृणा कर ही नहीं सकता !

"...मैंने अनेक बार यह देखने की कोशिश की है कि मैं अपने

शत्रु से घृणा कर सकता हूँ या नहीं—यह देखने का नहीं कि प्रेम कर सकता हूँ या नहीं पर यह देखने का कि घृणा कर सकता हूँ या नहीं—और मुझे ईमानदारी के साथ, परन्तु पूरी नम्रता से, कहना चाहिए कि नहीं मालूम हुआ कि मैं उससे घृणा कर सकता हूँ। मुझे यह याद नहीं आता कि कभी किसी भी मनुष्य के प्रति मेरे मन में तिरस्कार उत्पन्न हुआ हो। मैं नहीं समझ सकता कि यह स्थिति मुझे किस तरह प्राप्त हुई है। पर आपसे यह कहता हूँ कि जीवन भर मैं इसी का आचरण करता आया हूँ।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० २७।८।'२५; पृष्ठ ९। भारतीय लण्डन मिशनरी सोसाइटी कलकत्ता में दिये गये भाषण से]

मेरे नाम का दुरुपयोग

"...मेरे नाम के दुरुपयोग की कहानी लम्बी है। मेरे नाम पर मनुष्यों का वध हुआ है, मेरे नाम पर असत्य का प्रचार हुआ है, मेरे नाम का दुरुपयोग चुनावों के समय किया गया है, मेरे नाम पर बीड़ियाँ बेची जाती हैं, जिनका कि मैं शत्रु हूँ; मेरे नाम पर दवाइयाँ बेची जाती हैं।...एक अँग्रेज लेखक ने कहा है कि जहाँ मूर्खों की, अज्ञानियों की संख्या अधिक है वहाँ धूर्त, धोखेबाज़ भूखों नहीं मरते। इस सत्य का किसे अनुभव न होगा। मैं पुकार-पुकारकर कह चुका हूँ कि मेरे नाम के उपयोग से कोई धोखे में न आवे। हर चीज़ के गुण-दोष का विचार स्वतन्त्रतापूर्वक रखे।..."

—नवजीवन। हिं० न० जी० २४।९।'२५; पृष्ठ ४२। एक चाय कम्पनी गांधी जी के नाम का अपने प्रचार में दुरुपयोग कर रही थी। इसी पर गांधीजी ने यह लिखा था]

मैं तो ईश्वर की राह देखता हूँ !

"यदि भारतवर्ष और उसके नेतागण मुझसे थक गये हैं तो अब मेरे लिए केवल हिमालय का ही मार्ग बचा है। हिमालय अर्थात् धवलागिरि नहीं। वह मेरे हृदय का हिमालय है। उसकी गुफा में बैठ जाना मेरे लिए बहुत आसान है। उसे भी मैं ढूँढ़ने न जाऊँगा; वही मुझे ढूँढ़ लेगा। जो भक्त हैं वे ईश्वर के पास नहीं जाते हैं। यदि जायँ तो वे उसका तेज ही सहन नहीं कर सकते इसीलिए ईश्वर ही भक्तों के पास पहुँच जाता है और वे जैसा भाव रखते हैं वैसा ही उन्हें दर्शन देता है। मेरा ईश्वर जानता है मैं उसी की राह देख रहा हूँ। मेरे लिए तो उसका इशारा भी काफी होगा।

'काँचे रे ताँतणे मने हरजाये रे बाँधी जेम ताणे तेम तेमनी रे।'

कच्चे धागे मे मुझे हरि ने बाँध लिया है, जिस प्रकार चाहें खींचे मैं उन्हीं की हूँ।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० २४।१२।'२५; पृष्ठ १४७]

मेरा अविभाज्य अङ्ग

"...मेरा माहात्म्य मिथ्या उच्चार है। वह तो मुझे मेरी बाह्य प्रवृत्ति के—मेरे राजनीतिक कार्य के—कारण प्राप्त है। वह क्षणिक है। मेरा सत्य का, अहिंसा का और ब्रह्मचर्यादि का आग्रह ही मेरा अविभाज्य और सबमें अधिक मूल्यवान अङ्ग है। उसमें मुझे जो कुछ ईश्वरदत्त प्राप्त हुआ है उसका कोई भूल कर भी अवज्ञा न करे; उसमें मेरा सर्वस्व है। इसमें दिखाई देने वाली निष्फलता सफलता की सीढ़ियाँ हैं। इसलिए निष्फलता भी मुझे प्रिय है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० १८।२।'२६; पृष्ठ २१५]

ईश्वर की साक्षी

"...छाती पर हाथ रखकर मैं कह सकता हूँ कि एक मिनट के लिए भी मैं भगवान को भूलता नहीं। गत बीस वर्षों से मैंने सभी काम उसी प्रकार किये हैं मानों साक्षात् ईश्वर मेरे सामने खड़े हों।"

—यं० इं० । हिं० न० जी० १०।२।'२७; पृष्ठ २०८, सिवान, विहार, के भाषण से]

भक्ति और प्रार्थना मेरा सहारा है

"......मेरा दावा है कि मेरा एकमात्र सहारा भक्ति और प्रार्थना है और अगर मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े भी कर दिये जायँ तो भी परमात्मा मुझे वह शक्ति देंगे कि मैं उन्हें इन्कार न करूँगा—यही जोरों से कहूँगा कि वे हैं।"

—हिं० न० जी० १५।१२।'२७; पृष्ठ १३३, लंका के एक भाषण से]

मेरे जीवन का नियम

"...मेरे लिए अहिंसा महज़ दार्शनिक सिद्धान्त भर नहीं है। यह तो मेरे जीवन का नियम है। इसके बिना मैं जी ही नहीं सकता। मैं जानता हूँ कि मैं गिरता हूँ; बहुत बार चेतनावस्था में; उससे भी अधिक बार अचेतन अवस्था में। यह प्रश्न बुद्धि का नहीं बल्कि हृदय का है सन्मार्ग तो परमात्मा की सतत प्रार्थना से, अतिशय नम्रता से, आत्म-विलोचन से, आत्मत्याग करने को हमेशा तैयार रहने से मिलता है। इसकी साधना के लिए ऊँचे से ऊँचे प्रकार की निर्भयता और साहस की आवश्यकता है। मैं अपनी निर्बलताओं को जानता हूँ और मुझे उनका दुःख है।"

—यं० इं० । हिं० न० जी० २९।९।'२८; पृष्ठ ३६]

सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक नहीं हूँ

"...गांधीवाद जैसी कोई चीज़ मेरे तो दिमाग में ही नहीं है। मैं कोई सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक नहीं हूँ। तत्त्वज्ञानी होने का तो मैंने कभी दावा भी नहीं किया है। मेरा यह प्रयत्न भी नहीं है। कई लोगों ने मुझसे कहा कि तुम गांधी विचार की एक स्मृति लिखो। मैंने कहा, स्मृतिकार कहाँ और मैं कहाँ!......स्मृति बनाने का अधिकार मेरा नहीं है। जो होगा, मेरी मृत्यु के बाद होगा...।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन; सावली; ३।३।'३६]

सिरजनहार की गोद में

"मैं अपने अनेक पापों को स्पष्ट-से-स्पष्ट रूप में स्वीकार कर चुका हूँ। लेकिन हमेशा अपने कन्धों पर उनका बोझ लादे नहीं फिरता। यदि, जैसा कि मैं समझता हूँ, मैं ईश्वर की ओर जा रहा हूँ, तो मैं सुरक्षित हूँ। क्योंकि मैं उसकी उपस्थिति के प्रखर प्रकाश को अनुभव करता हूँ। मैं यह जानता हूँ कि आत्म-सुधार के लिए यदि मैं आत्म-दमन, उपवास और प्रार्थना पर ही निर्भर रहूँ तो कोई लाभ न होगा। लेकिन अगर, जैसी मुझे उम्मीद है, ये बातें अपने सिरजनहार की गोद में अपना चिन्ताकुल सिर रखने की आत्मा की आकांक्षा को व्यक्त करती हैं तो इनका भी मूल्य है।"

—ह० से० १८।४।'३६; पृष्ठ ६९]

मेरा विकास हो रहा है

"...मैंने विचारों को दुरुस्त किया है या बिगाड़ा है, यह आप को स्वतन्त्र रूप से सोचना है।...मैं हर रोज विकास की ओर जा रहा हूँ, और मेरे विचारों का प्रयोग रोज विस्तृत होता जा रहा है। आपको देखना पड़ेगा कि यह विकास ठीक तरह से हो रहा है या नहीं। स्वतन्त्र

रूप से विचार न करें तो आप यह सब नहीं कर सकते। आप मेरे नाम से इस तरह चिपटे रहेंगे तो दुनिया आपको हँसेगी।"...

"सत्य और अहिंसा में मेरी श्रद्धा बढ़ती ही जाती है। और मैं अपने जीवन में जैसे-जैसे उन पर अमल करता हूँ, मैं भी बढ़ता जाता हूँ। उसी के साथ मेरे विचारों में नयापन आता है।......मेरी बुद्धि का विकास होता ही जा रहा है। सत्य और अहिंसा के विषय में नित्य नई-नई चीजें उसके सामने आती हैं। उनमें मैं नया प्रकाश देखता हूँ। रोज नया अर्थ दिखाई देता है। इसीलिए चरखा संघ, हरिजन सेवक संघ और ग्राम-उद्योग संघ आदि संस्थाओं के सामने मैं बराबर नये-नये विचार रखता आ रहा हूँ। इसका मतलब यह है कि वे संस्थाएँ और उनके सञ्चालक जिन्दा हैं। और वृक्ष की तरह वे नित्य बदलती रहेंगी, नई-नई बनती रहेंगी। उनका गुण भी तो यह है कि वे बढ़ें, गतिमान हों; नहीं गिर जायँगी।—मुझे तो यह लगता ही नहीं कि मैं गिर रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप भी मेरे साथ विकास की ओर बढ़ें।"

—तृतीय गांधी सेवा संघ सम्मेलन, हुदली: १६।४।'३७ ; प्रारम्भिक भाषण से]

प्रभु के अनेकविध दर्शन

"...मेरे प्रभु के मेरे पास सहस्रों रूप हैं। कभी मैं उसका दर्शन चरखे में करता हूँ, कभी हिन्दू-मुस्लिम एकता में, और कभी अस्पृश्यता-निवारण में। मुझे जब मेरी भावना जिस रूप की ओर खींच ले जाती है, तब उस रूप की ओर चला जाता हूँ। जिस संस्था के कमरे में जाना चाहता हूँ, चला जाता हूँ और वहीं अपने प्रभु के साथ सानिध्य कर लेता हूँ।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, हुदली, २०।४।'३७]

एक प्रयत्नशील क्षुद्र जीव हूँ !

"विचार, उच्चार और आचार में बिल्कुल शुद्ध, सत्यनिष्ठ और अहिंसक बनने को तड़पने वाला मैं केवल एक प्रयत्नशील क्षुद्र जीव हूँ। मैं उस आदर्श को सत्य मानता हूँ। लेकिन यहाँ तक पहुँचने में निरन्तर असफल ही रहा हूँ। यह बड़ी विकट चढ़ाई है, लेकिन उस चढ़ाई में होने वाले कष्टों में मैं सच्चे आनन्द का अनुभव करता हूँ। हर एक कदम, जो मैं ऊपर की ओर बढ़ाता हूँ, मुझे अधिकाधिक सामर्थ्य और योग्यता का प्रत्यय दिलाता है।"

—'सर्वोदय', अक्तूबर,' ३८; अन्तिम आवरण पृष्ठ पर उद्धरण]

प्रेम का कटोरा

"तलवार को ताक पर रख देने के बाद जो मेरा विरोध करते हैं उनके लिए मेरे पास सिवा प्रेम के कटोरे के और कुछ रह ही नहीं जाता। उस कटोरे को उनके आगे रखकर ही मैं उन्हें अपने नजदीक खींच सकता हूँ। आदमी और आदमी में स्थायी बैर की तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। मेरा पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास है, और मैं इस आशा में जीता हूँ कि इस जन्म में नहीं तो दूसरे जन्म में मैं अपने प्रेमपूर्ण आलिङ्गन में सारी मानवता को हृदय से लगा सकूंगा।"

—सर्वोदय, सितम्बर,'३८ : पृष्ठ ५३ के नीचे उद्धरण]

'मैं सबका हूँ और किसी का नहीं हूँ !'

"...मैं समाजवाद को मानता हूँ और साम्यवाद का भी माननेवाला हूँ। मैं सब को मानता हूँ, लेकिन अपनी दृष्टि से मानता हूँ। मैं सबका हूँ और किसी का नहीं हूँ।"

—मालिकान्दा (बंगाल) २१।२।'४०]

मैं एक वैज्ञानिक शोधक हूँ

"...मैं तो एक अटूट आशावादी हूँ। कोई वैज्ञानिक दुर्बल हृदय से अपने प्रयोग नहीं आरम्भ करता। मैं उन्हीं कोलम्बस और स्टीवेंसन के दल का हूँ, जिन्होंने जबर्दस्त कठिनाइयों के बीच भी, निराशा में भी, अपनी आशा क़ायम रखी। चमत्कारों का युग अभी ख़त्म नहीं हुआ है। जबतक ईश्वर है, ये चमत्कार होते रहेंगे।..."

—सेवाग्राम, ९।६।'४०, ह० से० १५।६।'४०; पृष्ठ १४७]

ईश्वर ने मुझे क्यों चुना

"...उन्हें (अपनी त्रुटियों को) मैं तटस्थ होकर देखता हूँ, उनका प्रत्यक्ष दर्शन करता हूँ, क्योंकि मुझमें अनासक्ति है। उन त्रुटियों के लिए न मुझे दुःख है, न पश्चात्ताप। जिस प्रकार मैं अपनी सफलता और शक्ति परमात्मा की ही देन समझता हूँ, उसी को अर्पण करता हूँ, उसी प्रकार अपने दोष भी भगवान् के चरणों में रखता हूँ। ईश्वर ने मुझ-जैसे अपूर्ण मनुष्य को इतने बड़े प्रयोग के लिए क्यों चुना? मैं अहङ्कार से नहीं कहता लेकिन मुझे विश्वास है कि परमात्मा को गरीबों में कुछ काम लेना था, इसलिए उसने मुझे चुन लिया। मुझसे अधिक पूर्ण पुरुष होता तो शायद इतना काम न कर सकता। पूर्ण मनुष्य को हिन्दुस्तान शायद पहचान भी न सकता। वह बेचारा विरक्त होकर गुफा में चला जाता। इसलिए ईश्वर ने मुझ-जैसे अशक्त और अपूर्ण मनुष्य को ही इस देश के लायक समझा। अब मेरे बाद जो आयेगा, वह पूर्ण पुरुष होगा।"

—गांधी सेवा संघ की सभा में, वर्धा, २२।६।'४०]

सेवाग्राम एक प्रयोगशाला है

"...सेवाग्राम की प्रयोगशाला मेरे लिए अहिंसा की प्रयोगशाला

है । अगर मेरा प्रयोग यहाँ सफल हुआ तो बड़े क्षेत्र में भी मुझे सफलता पाने की चाबी मिल जायगी । यह मिल गई तो पूर्ण स्वराज की चाबी भी मिली ही समझो । इसलिए सेवाग्राम को छोड़कर मेरा कहीं जाने को मन ही नहीं करता ।"

× × ×

—ह० से० २७।७।'४० पृष्ठ २०६, प्यारेलाल के लेख से]

अहिंसा की अपूर्णता

"...यह मेरी अहिंसा का अधूरापन है कि मेरे आस-पास जितनी चाहिए उतनी अहिंसा देखने में नहीं आती...।"

—ह० से० २७।७।'४०; पृष्ठ २०६, श्री प्यारेलाल के लेख से]

अपने बारे में

"पिछले कुछ सालों से दुनिया में बड़े-बड़े उल्कापात हो चुके हैं । क्या सत्य और अहिंसा पर अब भी मेरी श्रद्धा वैसी ही बनी हुई है ? क्या अणु बम ने मेरी श्रद्धा को चूर चूर नहीं कर डाला ? नहीं, ज़रा भी नहीं । उलटे, उसकी वजह से मेरा यह विश्वास अधिक दृढ़ हुआ है कि दुनिया में सत्य और अहिंसा से बढ़कर कोई ताकत नहीं है । उसके मुकाबले अणु बम कोई चीज़ नहीं । एक नैतिक और आध्यात्मिक ताकत है, दूसरी शारीरिक और भौतिक—इन दो विरोधी ताकतों के बीच ज़मीन-आसमान का फर्क है । एक में आत्मा की अथाह शक्ति मौजूद है, जबकि दूसरी स्वभाव से ही नाशवान है । आत्मा की शक्ति हमेशा आगे बढ़ने वाली और अनन्त है । जब इस शक्ति का पूरा उदय होता है, तो यह संसार में अजेय बन जाती है ।...इस ताक़त की दूसरी खूबी यह है कि बिना किसी रंग या वर्ण के भेद के यह हर एक मर्द, औरत और बच्चे में मौजूद रहती है । बात इतनी ही है

कि बहुतों में यह सोई हुई हालत में रहती है गो कि विवेकमयी शिक्षा से इसे जगाया जा सकता है।

एक दूसरी बात ध्यान रखने लायक है कि इस सत्य के अपनाये बिना और इसके साक्षात्कार का प्रयत्न किये बिना सर्वनाश से बचने का दूसरा कोई इलाज नहीं।...''

—हरिजन। हरिजन-सेवक १०।२।'४६; पृष्ठ १]

आज मेरी श्रद्धा की परीक्षा है!

''जिस अहिंसा को मैं हिन्दू धर्म का मुख्य गौरव समझता हूँ, उसे हमारे लोग यह कहकर टालना चाहते हैं कि वह तो सिर्फ संन्यासियों के पालने का धर्म है। मेरी यह राय नहीं। मैं तो शुरू से यह मानता आया हूँ कि अहिंसा ही धर्म है, वही ज़िन्दगी का एक रास्ता है, और सारी दुनिया को यह रास्ता दिखाने का काम हिन्दुस्तान का है। लेकिन सवाल यह है कि इस बारे में मैं खुद कहाँ खड़ा हूँ? क्या मुझमें यह अहिंसा है? क्या मैंने इसे सिद्ध किया है? मैं इसका प्रतिनिधि हूँ? अगर मैं अहिंसा का सच्चा प्रतिनिधि हूँ तो मेरी हाज़िरी की वजह से दग़ा, फरेब और दुश्मनी की यह ज़हरीली हवा साफ़ क्यों नहीं होती? चुनांचे अपने जिन साथियों की मदद से अब तक मैं अपना काम करता आया हूँ, उनसे अलग होकर अकेला, बैसाखी की ही मदद से क्यों न हो, मगर अपने बल पर चल कर ही, मैं इस बात का पता लगा सकूँगा कि आज मैं खुद कहाँ खड़ा हूँ। साथ ही, इस तरह में ईश्वर के बारे में अपनी श्रद्धा की परीक्षा भी कर सकूँगा।''

—काज़ीरखिल, १६।११।'४६। ह० से० ८।१२।'४६]

: २० :

रत्नकण

[१]

वीर-वाणी

पत्थर की काया

"जो अपनी काया को पत्थर बनाकर रखता है वह एक ही जगह बैठे हुए सारे संसार को हिलाया करता है।"

पत्थर में मानव और ईश्वर का मिलन

"मनुष्य में पत्थर और ईश्वर दोनों का मिलाप होता है। मनुष्य क्या है? चेतनामय पत्थर है।"

—'नवजीवन'; १९२१

× × ×

"हमारे राष्ट्रीय इतिहास के इस युग में निर्जीव यन्त्र के जैसा बहुमत किसी काम का नहीं।

"हमें जेल के दरवाजों को अपनी भीड़ से खोल देना चाहिए और ऐसे हर्ष के साथ जेलों में दाखिल होना चाहिए जैसे दूल्हे को भाँवर के समय होता है।"

× × ×

"स्वतंत्रता का पाणिग्रहण धारासभाओं में या अदालतों में या स्कूल-कालेजों के कमरों में नहीं, बल्कि क़ैदखाने की दीवारों में और कभी कभी तो फाँसी के तख्तों पर चढ़कर ही किया जाता है।"

× × ×

"स्वतंत्रता इस संसार में सबसे अधिक चञ्चल और स्वच्छन्द स्त्री है। यह दुनिया में सब से बड़ी मोहिनी है। इसको प्रसन्न करना बड़ा कठिन काम है। यह अपना मन्दिर जेलखानों में तथा इतनी ऊँचाई

पर बनाती है कि जहाँ जाते-जाते आँखों में अँधेरा छा जाता है, और हमें जेल की दीवारों पर चढ़ते हुए तथा हिमालय की चोटी के सदृश ऊँचाई पर बने इस मन्दिर तक जाने की आशा से कँटीले-कँकरीले बीहड़ों में लहू-लुहान पैरों से मंज़िल तय करते हुए देखकर खिलखिला कर हँसती है।"

'कौंसिलें वज्रहृदय मनुष्य तैयार करने का कारखाना नहीं हैं; और जबतक वज्र हृदय उसकी रक्षा के लिए मौजूद न हों तबतक आज़ादी एक अत्यन्त दूषित वस्तु की तरह है।"

—हिं० न० जी० १८।१२।'२१]

× × ×

"जो मनुष्य मार के डर से गाली खाकर बैठ रहता है, वह न तो मनुष्य है, न पशु है।"

× × ×

"भारत इस समय मर्द बनने का पाठ पढ़ रहा है। यदि पूरा पाठ पढ़ ले तो स्वराज्य हथेली पर रखा है।"

× × ×

"आत्म-संयम स्वराज्य अर्थात् आत्म-शासन की कुञ्जी है।"

× × ×

"मरने की शक्ति तो सब में है; पर सबको उसकी इच्छा नहीं होती।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० १५।१।'२२; पृष्ठ १७६]

मृत्यु क्रान्ति है : जीवन विकास है

"राष्ट्रों की उन्नति विकास और क्रान्ति दोनों के द्वारा हुई है। दोनों एक-से आवश्यक हैं। मृत्यु, जो कि शाश्वत सत्य है, क्रान्ति है और जन्म तथा जीवन धीरे-धीरे और स्थिर रूप से होनेवाला विकास है।

मनुष्य की उन्नति के लिए स्वयं जीवन जितना आवश्यक है उतनी ही आवश्यक मृत्यु भी है।......इतिहास में सुव्यवस्थित कही जानेवाली उन्नति की अपेक्षा क्रान्ति के ही उदाहरण अधिक मिलते हैं।

—यं० इं० : हिं० न० जी० : ५।२।'२२]

स्वराज्य एक मनोदशा

"स्वराज्य तो एक मनोदशा है। जब इस मनोदशा की प्रतिष्ठा हृदय में होगी तभी इसकी प्रतिमा स्थापित होगी।"

—नवजीवन । हिं० न० जी० २२।१।'२२; पृष्ठ १८२]

बोदा बनानेवाला वायुमण्डल

"भारत का वर्तमान वायुमण्डल मनुष्य को बोदा बना देनेवाला है।"

असभ्यता भी हिंसा है

"असभ्यता एक प्रकार की हिंसा है।"

—नवजीवन । हिं० न० जी० २९।१।'२२; पृष्ठ १९३

चौरीचौरा

"चौरीचौरा देश की हिंसा वृत्ति का एक परिणत चिह्न मात्र है।"

—यं० इं० । हिं० न० जी० १९।२।'२२; पृष्ठ २१४

जानपर खेलनेवाला ही जान बचाता है

"...मनुष्य जितना ही अधिक अपनी जान देता है उतना अधिक वह उसे बचाता है।"

—यं० इं० । हिं० न० जी० ८।१।'२५; पृष्ठ १७७]

अपमान की घाटी

"...हमारा राष्ट्र इस समय अपमान की घाटी से गुज़र रहा है।"

—यं० इं० । हिं० न० जी० १९।१।'२९; पृष्ठ १६५]

जीवन-कण

नकली मर्द

"...जो अपनी नामर्दी कबूल करेगा, शायद वह किसी दिन मर्द बन सकता है, पर जो नाहक मर्द बनने का दावा करता है वह कभी मर्द बनने का नहीं है।"

सिंहों की संस्था कहाँ है ?

"...यह सभा बकरों की है, सिंहों की नहीं। सिंहों की संस्था किसी ने जगत् में नहीं देखी है।"

वीरता

"राजपूतों का इतिहास पढ़कर सीखो कि वीरों का एक भी वचन मिथ्या नहीं जाता। वीरता बातें कहने में नहीं, परन्तु उन्हें मिथ्या नहीं जाने देने में है।"

आत्म-अङ्कुश

"दूसरे का डाला अङ्कुश गिरानेवाला है और अपना बनाया उठानेवाला।"

शर्मानेवाली कोई बात नहीं

"मुझसे ऐसा नहीं पार लग सकता कि जिससे मुझे शर्माना पड़े, या आपको शर्माना पड़े या किसी को शर्माना पड़े।"

सर्वस्वार्पण बिना सेवा नहीं

"...सेवा करनेवाले को तो अपनी लाज, आबरू, मान, सर्वस्व होम करके ही प्रजा की सेवा का इरादा करना चाहिए।"

—हिं० न० जी०, ९।२।'२८; पृष्ठ १९६]

ज्ञान-कण

तपस्या की महिमा

"सच्चा कष्ट यदि सचाई के साथ सहन किया जाय तो वह पत्थर-जैसे हृदय को भी पानी-पानी कर डालता है। कष्ट-सहन की, अर्थात् तपस्या की महिमा ऐसी ही है। और यही सत्याग्रह की कुञ्जी है।"

—दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह; हिन्दी; पृष्ठ २९ (१९२१-'२३)]

लोकसेवा का कठिन धर्म

"केवल सेवा भाव से सार्वजनिक सेवा करना तलवार की धार पर चढ़ने के समान है। लोकसेवक स्तुति लेने के लिए तो तैयार हो जाता है फिर उसे निन्दा के समय क्योंकर अपना मुँह छिपाना चाहिए ?"

—दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह; हिन्दी; पृष्ठ २६४ (१९२१-'२३)]

चरित्रहीन व्यक्ति

"मालिक से शून्य महल जिस तरह खण्डहर के समान मालूम होता है, ठीक वही हाल चरित्रहीन मनुष्य और उसकी सम्पत्ति का समझना चाहिए।"

—द० अ० का सत्याग्रह : उत्तरार्द्ध हिन्दी; पृ० ६६; १९२४]

श्रद्धा चुराई नहीं जा सकती

"मनुष्य श्रद्धा अथवा धैर्य किसी दूसरे से नहीं चुरा सकता।"

—द० अ० का सत्याग्रह, उत्तरार्द्ध, हिन्दी पृ० ८०; १९२४]

युद्ध ही विजय है !

"एक सिपाही के लिए तो स्वयं युद्ध ही जीत है।"

—द० अ० का सत्याग्रह : उत्तरार्द्ध, हिन्दी; पृ० १०१; १९२४]

अविश्वास भी डर की निशानी है

"अविश्वास भी डर की निशानी है।"

—द० अ० का सत्याग्रह : उत्तरार्द्ध, हिन्दी; पृ० १९९; १९२४]

'निर्बल के बल राम'

"जब मनुष्य अपने को एक रजकण से भी छोटा मानता है, तब ईश्वर उसकी मदद करता है। निर्बल को ही राम बल देता है।"

—२ अप्रैल, १९२४, 'दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह' की भूमिका से]

सूक्ष्म हिंसा

"बुरे विचारमात्र हिंसा है; उतावली (जल्दबाज़ी) हिंसा है; किसी का बुरा चाहना हिंसा है; जगत् के लिए जो वस्तु आवश्यक है उसपर कब्ज़ा रखना भी हिंसा है।"

—यरवदा जेल, २९।७।'३०]

ब्रह्मचर्य

"विषय-मात्र का निरोध ही ब्रह्मचर्य है।"

—यरवदा जेल, ५।८।'३०]

व्रत-भंग

"किसी भी वस्तु को स्वाद के लिए चखना व्रत का भंग है।"

—यरवदा जेल; १२।८।'३०]

सूक्ष्म चोरी

"जिस चीज़ की हमें ज़रूरत नहीं है, उसे जिसके अधिकार में वह

हो उसके पास से उसकी आज्ञा लेकर भी लेना चोरी है। अनावश्यक एक भी वस्तु न लेनी चाहिए।...मन से हमने किसी की वस्तु प्राप्त करने की इच्छा की या उसपर जूठी नज़र डाली तो वह चोरी है।"

—यरवदा जेल; १९।८।'३०]

आत्यन्तिक अपरिग्रह

"आदर्श आत्यन्तिक अपरिग्रह तो उसी का होगा जो मन से और कर्म से दिगम्बर है। मतलब, वह पक्षी की भाँति बिना घर के, बिना वस्त्रों के और बिना अन्न के विचरण करेगा।...इस अवधूत अवस्था को तो बिरले ही पहुँच सकते हैं।"

अपरिग्रह सच्ची सभ्यता का लक्षण है

"सच्चे सुधार का, सच्ची सभ्यता का लक्षण परिग्रह बढ़ाना नहीं है, बल्कि उसका विचार और इच्छापूर्वक घटाना है। ज्यों-ज्यों परिग्रह घटाइए त्यों-त्यों सच्चा सुख और सच्चा सन्तोष बढ़ता है, सेवा-शक्ति बढ़ती है।"

—यरवदा जेल; २६।८।'३०]

तलवार भीरुता का चिह्न है !

"तलवार शूरता की निशानी नहीं, भीरुता का चिह्न है।"

अभय

"अभय व्रत का सर्वथा पालन लगभग अशक्य है। भयमात्र से मुक्ति तो, जिसे आत्म-साक्षात्कार हुआ हो वही पा सकता है। अभय मोह-रहित अवस्था की पराकाष्ठा है।"

—यरवदा जेल; २।९।'३०]

नम्रता

"नम्रता का अर्थ है अहम्भाव का आत्यन्तिक क्षय।"

आत्यन्तिक स्वदेशी

"आत्मा के लिए स्वदेशी का अन्तिम अर्थ सारे स्थूल सम्बन्धों से आत्यन्तिक मुक्ति है। देह भी उसके लिए परदेशी है।"

—यरवदा जेल; ७।१०।'३०]

अमेरिका को सन्देश

"वह धन को उसके सिंहासन से हटाकर ईश्वर के लिए थोड़ी जगह खाली करे। मेरा ख्याल है कि अमेरिका का भविष्य उज्ज्वल है। लेकिन अगर वह धन की ही पूजा करता रहा तो उसका भविष्य अंधकारमय है, फिर लोग चाहे जो कहें। धन अखीर तक किसी का सगा नहीं रहा। वह हमेशा बेवफ़ा दोस्त साबित हुआ है।"

—नई दिल्ली। २१।१०।'४६। प्रेस्टन ग्रोवर के साथ बातचीत में]



विविध विचार

दूसरे भी सही हो सकते हैं !

"यह समझ लेना अच्छी आदत नहीं है कि दूसरे के विचार गलत हैं और सिर्फ हमारे ही ठीक हैं तथा जो हमारे विचारों के अनुसार नहीं चलते वे देश के दुश्मन हैं।"

बंग-भंग

बंग-भंग से अँग्रेज़ी सत्ता को जैसा धक्का लगा वैसा और किसी काम से नहीं लगा है।"

असन्तोष सुधार का पिता है

"हर एक सुधार से पहले असन्तोष का होना जरूरी है।"

'पार्लमेण्टों की माँ'

"जिसे पार्लमेण्टों की माँ कहते हैं वह तो बाँझ है।"

इंग्लैण्ड की नकल में सर्वनाश

"मेरा तो यह पक्का विचार है कि हिन्दुस्तान ने इंग्लैण्ड की नकल की तो उसका सर्वनाश हो जायगा।"

युरोपीय सभ्यता

"यह (युरोपीय) सभ्यता वस्तुतः सभ्यता नहीं है और इसके कारण युरोप के राष्ट्रों का दिन-दिन पतन होकर नाश होता चला जा रहा है।"

× × ×

"यह सभ्यता ऐसी है कि अगर हम धीरज रक्खें तो अन्त को इस सभ्यता की आग सुलगाने वाले आप ही इसमें जल मरेंगे ।...इस सभ्यता ने अंग्रेजी राष्ट्र में घुन लगा दिया है। यह सभ्यता नाशकारी और नाशमान है। इससे बचकर रहने में ही कल्याण है।"

आधुनिक सभ्यता से दबा भारत

"यह तो मेरी पक्की राय है कि हिन्दुस्तान अंग्रेजों के नहीं बल्कि आजकल की सभ्यता के बोझ से दबा हुआ है। इस राक्षसी की झपेट में वह पड़ गया है। अभी इससे बचने की कोई तदबीर हो सकती है, लेकिन जैसे-जैसे दिन बीतते जाते हैं, वक्त हाथ से निकलता जा है। मुझे तो धर्म प्यारा है, इसलिए पहला दुःख तो मुझे यही है कि हिन्दुस्तान धर्मभ्रष्ट होता जा रहा है। यहाँ धर्म से मेरा मतलब...उस धर्म से है जो सब धर्मों का आधार है। सच तो यह है कि हम ईश्वर से विमुख होते जा रहे हैं।"

सांसारिक पाखण्ड बनाम धार्मिक पाखण्ड

"....मैं तो यह भी कहने को तैयार हूँ कि दुनियावी पाखण्ड से धार्मिक पाखण्ड फिर भी अच्छा है।.. सभ्यता की आग में भस्म होनेवालों की कोई हद ही नहीं है और मज़ा यह है कि लोग उसे अच्छा समझकर उसमें कूद पड़ते हैं। फलतः न वे दीन के रहते हैं, न दुनिया के। सभ्यता तो चूहे की तरह है जो अन्दर ही अन्दर कुतरता जाता है पर हमें गुदगुदी लगाते हुए। उस वक्त उसका असर मालूम नहीं पड़ता। जब हमें उसके पूरे असर का पता लगेगा तब मालूम होगा कि आधुनिक सभ्यता की बनिस्बत धार्मिक अन्धविश्वास बहुत कम हानिकारक है। मैं यह नहीं कहता कि इन अन्धविश्वासों या पाखण्डों को हमें जारी

रखना चाहिए। निश्चय ही अपनी पूरी ताकत के साथ हम उन्हें दूर करने की कोशिश करेंगे लेकिन ऐसा हम धर्म की उपेक्षा करके नहीं, बल्कि…सच्चे रूप में धर्म-मार्ग पर चलने से ही कर सकेंगे।"

निर्भयता बल है

"…बल तो निर्भयता में है; शरीर में मांस बढ़ जाने में नहीं।"

विश्वास-सम्पादन

"…जो आदमी दूसरों के मन में अपना विश्वास पैदा कर सका है उसने दुनिया में कभी कुछ गँवाया नहीं।"

वकीलों का बोया विष

"…वकीलों ने हिन्दुस्तान को गुलामी में फँसाया है और हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े बढ़ाकर अंग्रेजों का राज्य पक्का किया है।"

भारतीय सभ्यता की श्रेष्ठता

"… मैं तो यह मानता हूँ कि हमारी (भारतीय) सभ्यता से बढ़-कर दुनिया की कोई सभ्यता नहीं है।"

अनहोनी भी होती है

"जो इतिहास में नहीं है वह हुआ ही नहीं है और हो ही नहीं सकता, ऐसा समझना तो मनुष्य की शक्ति में अविश्वास करना है।"

हिंसा कायरता है

"कायर होने के कारण ही हम दूसरों के खून का विचार करते हैं।"

केवल ईश्वर का भय

"जिस मनुष्य को अपने मनुष्यत्व का मान है, वह ईश्वर के सिवा और किसी से नहीं डरता।"

स्वराज्य की कुञ्जी

"अगर मनुष्य एक बार इस बात को महसूस कर ले कि अनुचित जान पड़नेवाले कानूनों का पालन करना नामर्दी है, तो फिर किसी का जुल्म उसे मजबूर नहीं कर सकता। यही स्वराज्य की कुञ्जी है।

कल-कारखाने साँप के बिल हैं

"कल-कारखाने तो साँप के बिल की तरह हैं; जिनमें एक नहीं हजारों साँप भरे पड़े हैं।"

सेवा के लिए ब्रह्मचर्य

"बहुत कुछ अनुभव के बाद मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि देश-सेवा के लिए जो लोग सत्याग्रही होना चाहते हैं उन्हें ब्रह्मचर्य का पालन करना ही चाहिए, सत्य का सेवन तो करना ही चाहिए और निर्भय बनना चाहिये।"

—१९०८,'हिंद स्वराज्य']

[नोट—'विविध विचार' पृष्ठ २२१ से यहाँतक के सब उद्धरण 'हिन्द स्वराज्य' (१९०८ ई०) के हैं।]

भूखों का ईश्वर अन्न है

"जो लोग भूखों मर रहे हैं और बेकार हैं उनका परमेश्वर तो योग्य काम और उससे मिलनेवाला अनाज ही है।"

परिश्रम न करनेवाले चोर हैं

"जो अपने हिस्से का काम किये बिना ही भोजन पाते हैं वे चोर हैं।"

प्रेम की पुकार

"चरखे की पुकार दूसरी सब पुकारों से मधुर है। क्योंकि वह प्रेम

की पुकार है। और प्रेम ही स्वराज्य है।"

परिश्रम का गौरव

"चरखा कातने की हिमायत करना मानो परिश्रम के गौरव को मान्य करना है।"

—हिं० न० जी० २१।१०।'२१]

आशा ही आस्तिकता है

"आशावाद आस्तिकता है। सिर्फ नास्तिक ही निराशावादी हो सकता है।"

—नवजीवन : १९२१]

आत्म-निरीक्षण

"मेरे सामने जब कोई असत्य बोलता है तब मुझे उसपर क्रोध होने के बजाय स्वयं अपने ऊपर अधिक कोप होता है। क्योंकि मैं जानता हूँ कि अभी मेरे अन्दर—तह में असत्य का वास है।"

—नवजीवन : १९२१]

प्रेमहीन असहयोग राक्षसी है

"जिस असहयोग में प्रेम नहीं, वह राक्षसी है, जिसमें प्रेम है वह ईश्वरी है।"

—नवजीवन : १९२१]

बिना दुःख के सुख नहीं

"जिस प्रकार बिना भूख के खाया हुआ भोजन नहीं पचता उसी प्रकार बिना दुःख के सुख भी नहीं पच सकता।"

—नवजीवन : १९२१]

सन्देहग्रस्त का ठिकाना नहीं

"जिसे सन्देह है, उसे कहीं ठिकाना नहीं। उसका नाश निश्चित

है। वह रास्ते चलता हुआ भी नहीं चलता है, क्योंकि वह जानता ही नहीं कि मैं कहाँ हूँ।"

—नवजीवन : १९२१]

मैं श्रद्धावान हूँ

"मैं त्रिकालदर्शी नहीं हूँ। मैं देवता नहीं। मैं श्रद्धावान हूँ। मैं ईश्वर को सर्व-शक्तिमान मानता हूँ। हमारे हृदय में वह कब उथल-पुथल कर डालेगा, यह कौन कह सकता है ?"

—नवजीवन : १९२१]

पवित्रता और निर्भयता का योग

"जहाँ पवित्रता है वहीं निर्भयता हो सकती है।"

स्त्री-पुरुषों के प्रति हीन दृष्टि

"स्त्रियों को हम इतनी न-कुछ समझते हैं कि वे मानो अपनी पवित्रता की रक्षा करने के योग्य ही नहीं हैं। और पुरुषों को हम इतना पतित मानते हैं कि मानो वे पर-स्त्रियों को केवल अपनी निर्लज्ज दृष्टि से ही देखा करते हैं।"

स्त्री-पुरुष दोनों को लज्जास्पद

"यह ख्याल गलत है कि स्त्रियाँ अपनी पवित्रता की रक्षा करने के योग्य नहीं हैं। यह अनुभव के भी विरुद्ध है और स्त्री-पुरुष दोनों के लिए लज्जास्पद है।"

पवित्र स्त्री अजेय है !

"जिस स्त्री को अपनी पवित्रता का ख्याल है उसपर बलात्कार करनेवाला पुरुष न तो आजतक पैदा हुआ है, न होगा।"

मरने को तैयार नारी !

"जो स्त्री मरने के लिए तैयार है उसे कौन दुष्ट एक शब्द भी बोल

सकता है। उसकी आंखों में ही इतना तेज होगा कि सामने खड़ा हुआ व्यभिचारी पुरुष जहाँ का तहाँ ढेर हो जायगा।"

—न० जी० : हिं० न० जी० १५।१।'२२]

विनोदवृत्ति

"यदि मुझमें विनोद की वृत्ति न होती तो मैंने कभी आत्महत्या कर ली होती।

—यं० इं०; १९२१]

भूल और सुधार

"मेरे निजी अनुभवों ने तो मुझे यही सिखाया है कि हम नम्रता-पूर्वक इस बात को जानें और मानें कि भूलों के साथ संग्राम करना ही जीवन है।"

—यं० इं० । हिं० न० जी० १९।८।'२१]

गलती कबूल करने का महत्त्व

"...गलती हर इन्सान से होती है। लेकिन जब इंसान अपनी गलती को छिपाता है, या उस पर मुलम्मा चढ़ाने के लिए और झूठ बोलता है, तो वह खतरनाक बन जाती है, जब किसी फोड़े में पीप पड़ जाता है तो हम उसे दबाकर जहरीले पीव को बाहर निकाल देते हैं और फोड़ा बैठ जाता है। लेकिन अगर वही जहर बदन के अन्दर फैल जाय तो मौत होकर ही रहे।...यही हाल गलती और पाप का होता है पता चलते ही किसी गलती या पाप को कबूल कर लेने के मानी हैं उसे बाहर निकाल फेंकना। अपनी सारी जिंदगी में मैंने ऐसा ही किया है।'

—नई दिल्ली। ह० से० २०।१०।' ४६]

नवजीवन

"......प्रति सप्ताह 'नवजीवन' में मैंने अपनी आत्मा उँड़ेलने

का प्रयत्न किया है। एक भी शब्द ईश्वर को साक्षी रखे बिना मैंने नहीं लिखा है।"

—न० जी०। हिं० न० जी०, २८।९।'२४; पृष्ठ ५२]

रिवाज

"रिवाज के कुएँ में तैरना अच्छा है। उसमें डूबना आत्महत्या है।"

—न० जी०। हिं० न० जी०, २।७।'२५; पृष्ठ ३७३]

× × ×

"कुरीति के अधीन होना पामरता है। उसका विरोध करना पुरुषार्थ है।"

—न० जी०। हिं० न० जी०, १०।९।'२५; पृष्ठ ४९४]

बीड़ी

"......ज़रा सी बीड़ी ! वह दुनिया का कैसा नाश कर रही है ! बीड़ी का ठण्डा नशा कुछ अंशों में मद्यपान से भी अधिक हानिकर है क्योंकि मनुष्य उसका दोष शीघ्र नहीं देख सकता है। उसका उपयोग असभ्यता में नहीं गिना जाता, बल्कि सभ्य कहलानेवाले लोग ही उस का उपयोग बढ़ा रहे हैं।"

—न० जी०। हिं० न० जी० ३१।१२।'२६; पृष्ठ १५४]

शब्दों की अजितशक्ति

"...राम शब्द के उच्चार से लाखों-करोड़ों हिन्दुओं पर फौरन असर होगा और 'गाड' शब्द का अर्थ समझने पर भी उसका उनपर कोई असर न होगा। चिरकाल के प्रयोग से और उनके उपयोग के साथ संयोजित पवित्रता से शब्दों को शक्ति प्राप्त होती है।"

—यं० ई०। हिं० न० जी० १९।९।'२६; ३३९]

मित्रता

"....मित्रता में अद्वैतभाव होता है। ऐसी मित्रता संसार में बहुत थोड़ी देखी जाती है।"

अभिन्न-मित्रता

"....मेरा मत यह है कि अभिन्न-मित्रता अनिष्ट है; क्योंकि मनुष्य दोष को झट ग्रहण कर लेता है। गुण ग्रहण करने के लिए प्रयास की जरूरत है।......"

—हिन्दी आत्मकथा । सस्तासंस्करण १९३९ भाग १,अध्याय ६; पृष्ठ २१]

संस्था और हिसाब-किताब

"......किसी भी संस्था का सविस्तर हिसाब उसकी नाक है। उसके बिना वह संस्था अन्त में जाकर गन्दी और प्रतिष्टाहीन हो जाती है। .."

—हिन्दी आत्मकथा : भाग २, अध्याय १९, पृष्ठ १६८ सस्ता संस्करण]

प्रतिपक्षी के प्रति व्यवहार

"मेरा अनुभव कहता है कि प्रतिपक्षी के साथ न्याय करके हम अपने लिए जल्दी न्याय प्राप्त कर सकते हैं।"

—हिन्दी आत्मकथा। भाग २ : अध्याय २९। पृष्ठ २०१ सस्ता संस्करण,१९३९]

पूजा

"सुगन्ध जलाकर हम सुगन्ध फैलाते हैं उसी प्रकार पूजा करके हम सुगन्धमय बनते हैं।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० १५।९।'२७; पृष्ठ २६ मैसूर से विदा होते समय, स्वयंसेवकों को दिये प्रवचन से]

ईश्वर घटघटवासी है

"मानवता की सेवा द्वारा ही ईश्वर के साक्षात्कार का प्रयत्न मैं कर रहा हूँ। क्योंकि मैं जानता हूँ कि ईश्वर न तो स्वर्ग में है और न

पाताल में, किन्तु हर एक के हृदय में है।"

आँखें

"....आंखें सारे शरीर का दीपक हैं।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० १२।४।'२८; पृष्ठ २६७]

फीरोज़शाह, लोकमान्य और गोखले

"....सर फीरोज़शाह मुझे हिमालय-जैसे मालूम हुए; लोकमान्य समुद्र की तरह मालूम हुए। गोखले गंगा की तरह मालूम हुए; उसमें मैं नहा सकता था। हिमालय पर चढ़ना मुश्किल है, समुद्र में डूबने का भय रहता है; पर गंगा की गोदी में खेल सकते हैं; उसमें डोंगी पर चढ़कर तैर सकते हैं।"

—हिन्दी आत्मकथा : भाग २, अध्याय २८; पृष्ठ १९७, सस्ता संस्करण १९३९]

राजगोपालचार्य

"....यह भी सही है कि उनकी बुद्धिमत्ता और ईमानदारी में मेरा असीम विश्वास है और मैं यह मानता हूँ कि कम से कम कांग्रेसियों में तो उनसे बढ़कर क़ाबिल पार्लमेण्टेरियन और कोई नहीं है।........ सत्याग्रह की हमारी सेना में उनसे काबिल कोई योद्धा नहीं हैं।"

—ह० से० १०।९।'३८; पृष्ठ २३६]

महादेव भाई

"मेरे विचार से महादेव के चरित्र की सबसे बड़ी खूबी थी, मौका पड़ने पर अपने को भूल कर शून्यवत् बनजाने की उनकी शक्ति।"

—सेवाग्राम १२-८-'४६। 'हरिजन': ह० से० १८।८।'४६]

उड़ीसा

"....भारतवर्ष में यह उड़ीसा मेरी प्रियतम भूमि है।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, डेलांग, २५।३।'३८]

महाराष्ट्र

"महाराष्ट्र में त्याग है, पर श्रद्धा नहीं।"

—चिपलूणकर की मूर्ति का उद्‌घाटन करते समय पूना में सितम्बर १९२४ हि० न० जी० १४।९।'२४]

"महाराष्ट्र अच्छे परिश्रमी सेवकों का एक मधुमक्खियों के जैसा छत्ता है।"

—ह० से० ७।११।'३६; पृष्ठ ३०१]

अतिशयोक्ति

"अतिशयोक्ति भी असत्य है।"

—ह० से०; १७।३।'३३]

आत्मरक्षा

"जहाँ शरीर होम देने की तत्परता न हो, वहाँ आत्मरक्षा का मार्ग ही एक मात्र प्रतिष्ठित मार्ग है।"

—ह० से०, २६।७।'३५; पृष्ठ १८५]

युवावस्था

"निर्दोष युवावस्था एक अनमोल निधि है।"

—ह० से० २७।९।'३५; पृष्ठ २५६]

गोसेवा

"गोसेवा के बारे में अपने दिल की बात कहूँ तो आप रोने लग जायँगे और मैं रोने लग जाऊँ—इतना दर्द मेरे दिल में भरा हुआ है।"

—गांधी सेवा संघ सम्मेलन, सावली, ६।३।'३६]

जीवन के टुकड़े

"मैं जीवन को जड़ दीवारों से विभक्त नहीं किया करता। एक व्यक्ति की भाँति राष्ट्र का भी जीवन अविभक्त और पूर्ण होता है।"

—ह० से० २९।२।'३७; पृष्ठ ५]

मौन की भाषा

"मौन कभी-कभी वाणी से अधिक वाचाल होता है।"

—ह० से०; २५।२।'३९; पृष्ठ १३]

निर्बल कौन है ?

"निर्बल वह नहीं है जिसे निर्बल कहा जाता है बल्कि वह है जो अपने को निर्बल समझता है।"

—ह० से० ४।३।'३९; पृष्ठ २२]

लोटा भर गंगा जल से गन्दा तालाब शुद्ध नहीं हो सकता

"मेरे पास अगर एक लोटा भर गंगा-जल हो तो उसे एक तालाब भर गन्दे जल में मिला देने से वह गंदा जल शुद्ध हो जायगा, ऐसा समझने की मूर्खता मैं नहीं करूँगा।"

प्रगति का पहला पग

"अपनी अपूर्णता महसूस करना प्रगति का पहला कदम है।"

मूर्ख-शिरोमणि कौन है ?

"जो यह भी नहीं जानता कि वह कुछ नहीं जानता, वह सबसे बड़ा मूर्ख-शिरोमणि है।"

—मालिकान्दा (बंगाल) २२।२।'४०]

गुण्डा और कायर

"गुण्डा खुद एक अपशकुन मात्र है, और किसी मौजूदा स्थिति का, जैसे बुजदिली का, एक जवाब है।"

× × ×

"अक्सर लोग यह भूल जाते हैं कि कायरता या बुजदिली अन्याय-पूर्ण हो सकती है। सच यह है कि कायरों में न्याय-भावना ही नहीं

होती। वे सिर्फ धमकी या क्रियात्मक बल-प्रयोग के आगे झुकना जानते हैं। मैं नहीं जानता कि कायर और गुण्डे दोनों में से किसको अच्छा समझा जाय। दोनों एक- से हैं। दोनों एक-से बुरे हैं; फर्क इतना ही है कि गुण्डा हमेशा बुजदिल के पीछे लगा रहता है।"

—ह० से० २४।२।'४०, पृष्ठ ९]

फाँसी

"फाँसी की सजा को मैं अहिंसा के विरुद्ध समझता हूँ।"

—ह०से०२७।४।'४०; पृष्ठ ८७]

अपराध एक बीमारी है

"...हर एक गुनाह एक किस्म की बीमारी है और उसका इलाज भी इसी दृष्टि से होना चाहिए।"

—ह० से० २७।४।'४०; पृष्ठ ८७]

आत्महत्या पाप है

[प्रश्न—कहा गया है कि 'जीने की इच्छा' विवेक-रहित है, क्योंकि वह जीवन के प्रति छलनापूर्ण आसक्ति से पैदा होती है। तब आत्म-हत्या पाप क्यों है?]

"जीने की इच्छा अविवेकपूर्ण नहीं है; यह प्राकृतिक भी है। जीवन के प्रति आग्रह कोई छलना नहीं है; यह अत्यन्त वास्तविक है। सबके ऊपर जीवन का अपना एक उद्देश्य होता है। उस उद्देश्य को पराजित करने का यत्न करना पाप है। इसलिए बिल्कुल ठीक ही आत्महत्या को पाप माना गया है।"

—सेवाग्राम, २८।५।'४० : ह० से० १।६।'४०; पृष्ठ १३०]

गुण्डा

"गुण्डे सिर्फ बुजदिल लोगों के बीच पनप सकते हैं।"

—सेवाग्राम,४।६।'४०; ह० से० ८।६।'४०; पृष्ठ १३७]

कांग्रेस

"आज तो कांग्रेस हिन्दुस्तान की आशा और विश्वास का प्रधान लंगर—आश्रय—है।"

—सेवाग्राम, ११।६।'४० ह० से० १५।६।'४०; पृष्ठ १४८]

नौजवान के लिए

प्रश्न—एक पिता के नाते आप एक ऐसे नौजवान को, जो ज़िन्दगी के दरिया में पहली बार अपनी नाव छोड़ने वाला हो, क्या सलाह देंगे?

उत्तर—"यही कि वह अपनी ज़बान बन्द रखे।"

—ह० से० ६।१०।'४६]

'वनस्पति घी' धोका है

"यह घी नहीं है, न हो सकता है।...किसी प्राणी के दूध में से जो चिकना पदार्थ पैदा होता है, वह घी या मक्खन है। उस घी के नाम से जो वनस्पति तेल, घी या मक्खन की शकल में, या उसके नाम से, बेचा जाता है, वह हिन्दुस्तान के साथ किया जाने वाला एक बड़ा धोका है, दग़ा है।"

—नई दिल्ली, ६-१०-४६।ह० से० १३।१०।'४६]

नई शिक्षा-पद्धति

"हर हिटलर तलवार के बल पर अपना उद्देश पूरा कर रहा है; मैं आत्मा के द्वारा पूरा करना चाहता हूँ। विदेशी विचारों और आदर्शों का आवरण निकाल फेंकिए, अपने-आप को ग्रामवासियों के साथ समरस बना दीजिए। पाश्चात्य जगत विनाशक शिक्षा दे रहा है; हमें अहिंसा के ज़रिये रचनात्मक शिक्षा देनी है।"

—ह० से० ३०।४।'३८, पृष्ठ ८५। २१ एप्रिल को वर्धा विद्यामंदिर ट्रेनिंग स्कूल का उद्घाटन करते हुए]

सरकार हमारी कायरता का निशान है

"...सरकार को कोसना, उसे गालियाँ देना फिजूल है। यही नहीं, वह हमारी कायरता का निशान है। जैसे हम हैं, वैसी ही हमारी सरकार है। सरकार लोक-जागृति के नाप का औज़ार है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० १३।४।'२४; पृष्ठ २७९]

अपने कष्टों के लिए हम स्वयं ज़िम्मेदार हैं

"...आजकल हम अपने कष्टों के लिए औरों की निन्दा करते हैं। हम भूल जाते हैं अथवा भूल जाना चाहते हैं कि अपने कष्टों के लिए खुद हमीं ज़िम्मेदार हैं। यदि जुल्म को बर्दाश्त करनेवाले न हों तो वहाँ ज़ालिम क्या कर सकता है? जब तक हम अधीन होने की कमज़ोरी को क़ायम रखेंगे तब तक अधीन करनेवाले को गालियाँ देना आसान परन्तु व्यर्थ का उद्यम है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी० २५।५।'२४; पृष्ठ ३३०]

हर घर एक किला हो

"मेरा यह पक्का ख्याल है कि जब तक हमारा हर एक घर अपने-आप में एक क़िला नहीं बन जाता, तब तक हिन्दुस्तान अपने पैरों खड़ा न हो सकेगा—पूरी तरह आज़ाद न बन सकेगा। यह क़िला तवारीख़ के काले ज़माने का क़िला न होगा, वरन् उस बहुत पुराने ज़माने का क़िला होगा, जब हर इंसान दूसरे के ख़िलाफ़ बुरे ख्याल रखे बिना मर जाना जानता था...।"

—नई दिल्ली, १२-१०-'४६। ह० से० २०।१०।'४६]

: २१ :

मानस के स्फुट चित्र

मालूम पड़ता है, राह भूल गया हूँ !

[१९२४]

"...जान पड़ता है, मैं भी अपने प्रेम से हाथ धो बैठा हूँ, और ऐसा मालूम होता है कि मैं राह भूल गया हूँ, इधर-उधर भटक रहा हूँ। मुझे अनुभव तो ऐसा होता है कि मेरा सखा निरन्तर मेरे आस-पास है—पर फिर भी वह मुझे दूर दिखाई देता है क्योंकि वह मुझे ठीक-ठीक राह नहीं दिखा रहा है और साफ-साफ हुक्म नहीं दे रहा है। बल्कि उलटा गोपियों के छलिया नटखट कृष्ण की तरह वह मुझे चिढ़ाता है—कभी दिखाई देता है, कभी छिप जाता है, और कभी फिर दिखाई देता है। जब मुझे अपनी आँखों के सामने स्थिर और निश्चित प्रकाश दिखाई देगा तभी मुझे अपना पथ साफ़-साफ़ मालूम पड़ेगा और तभी मैं पाठकों से कहूँगा कि आइए, अब मेरे पीछे पीछे चलिए।..."

— यं० इं० । हिं० न० जी०, ७।९।'२४; पृष्ठ २६]

भारत के रङ्क बच्चों के लिए—

[१९२४]

"...आप मुझे महात्मा मानते हैं। इसका कारण न तो मेरा सत्य है, न मेरी शान्ति है, बल्कि दीन-दुखियों के प्रति मेरा अगाध प्रेम ही इसका कारण है। चाहे कुछ हो जाय पर इन फटेहाल नर-कङ्कालों को मैं नहीं भूल सकता, नहीं छोड़ सकता। इसी से आप समझते हैं कि गांधी किसी काम का आदमी है। इसीलिए अपने प्रेमियों से मैं कहता हूँ कि आप मेरे प्रति यदि प्रेम-भाव रखते हैं तो ऐसी कोशिश कीजिए

कि देहात के लोगों को, जिन्हें मैं प्रेम करता हूँ, अन्न-वस्त्र मिले बिना न रहे। इन दीन-दुखियों को आप भजिए। किस तरह भजेंगे ? सो मैं बताता हूँ। जो झूठ-मूठ माला फेरता होगा उसे मुक्ति कभी न मिलेगी, उलटे अधोगति प्राप्त होगी, क्योंकि ऊपर से माला फेरते हुए वह अन्दर तो छुरा ही घिसता रहेगा। मैं मानता हूँ कि चरखा चलाते हुए भी मेरे मन में मलिनता होने की सम्भावना है। पर मलिनता के होते हुए भी कातने के बाह्य फल से तो मैं वञ्चित नहीं रह सकता। मैं तो सिर्फ इतना कहना चाहता हूँ कि ईश्वर या खुदा का नाम लेकर मैं भारत के रङ्क बच्चों के लिए चरखा कातता हूँ और आपसे भी ऐसी ही करने की प्रार्थना करता हूँ।"

दीन-दुखियों से तादात्म्य

[१९२४]

"....मुझे इस बात पर विश्वास है कि मेरे प्रति आपका जो प्रेम है उसका कारण और कुछ नहीं—यही है कि मैं दीन-दुखियों के साथ तदाकार हो गया हूँ। मैं भंगी के साथ भंगी हो सकता हूँ, ढेड़ के साथ ढेड़ होकर उसका काम कर सकता हूँ। यदि इस जन्म में अस्पृश्यता न मिट जाय और मुझे दूसरा जन्म लेना पड़े तो मैं चाहता हूँ कि भंगी के ही घर मेरा जन्म हो। यदि अस्पृश्यता के कायम रहने के कारण मुझे हिन्दू धर्म छोड़ देना पड़े तो मैं जरूर छोड़ दूँ और कलमा पढ़ लूँ या बपतिस्मा ले लूँ। पर मुझे तो अपने धर्म पर इतनी श्रद्धा है कि मुझे उसी में जीना और उसी में मरना है। सो इसके लिए भी अगर फिर जन्म लेना पड़े तो भंगी के ही घर लूंगा।"

—हिं० न०; जी०, ७।९।'२४; पृष्ठ ३०]

प्रेम के दो रूप

[१९२४]

"....अब मैं इतना थक गया हूँ कि अधिक नहीं कह सकता। मेरे स्वभाव के दो अंग हैं—एक उग्र, दूसरा शान्त। उग्र या भयङ्कर रूप के कारण अनेक मित्र मुझसे अलग हो गये हैं; मेरी पत्नी, पुत्र और मेरे स्वर्गीय भाई के बीच खाईं पड़ गई थी। दूसरे रूप में तो लबालब प्रेम ही प्रेम है। पहले रूप में प्रेम को खोजना पड़ता है। मुझ जैसे कठोर आत्म-निरीक्षक शायद ही दूसरे होंगे। मुझे विश्वास है कि पहले रूप में द्वेष की गन्ध तक नहीं है परन्तु उसमें हिमालय-जैसी भयङ्कर भूलें हो जाने की सम्भावना रहती है। किन्तु मनोविज्ञान के ज्ञाता आपको बतावेंगे कि दोनों का उत्पत्ति-स्थान एक ही है। पारावार प्रेम भीषण रूप धारण कर सकता है। यदि मैंने अपनी पत्नी को दुःख पहुँचाया है तो उससे मेरे दिल में और गहरा घाव हो गया है। दक्षिण अफ्रीका में अपने रात-दिन के साथी अंग्रेजों को यदि मैंने दुःख पहुँचाया है तो उससे अधिक दुःख मुझे हुआ है। यदि मेरे यहाँ के कार्यों से अंग्रेजों का जी मैंने दुखाया है तो उससे विशेष दुःख मेरे जी को हुआ है।

"मैं अंग्रेजों से जो यह कहता हूँ कि तुमने हमें खूब चूसा है, आज भी चूस रहे हो पर तुम्हें पता नहीं है। तुम चोरी और सीनाज़ोरी करते हो, याद रखना पछताओगे। इंग्लैण्ड की आँखें खोलने के लिए मुझे अपना भयङ्कर रूप प्रकट करना पड़ा है। तो इसका कारण यह नहीं कि मैं उन्हें कम चाहता हूँ, बल्कि यही है कि मैं उन्हें स्वजनों की तरह चाहता हूँ। पर अब मेरा भीषण रूप चला गया। पं० मोतीलाल से मैंने कहा है कि अब तो लड़ने की भावना ही मुझमें

नहीं रह गई। मैं तो शरणागत हूँ। जब कि हमारे घर में ही फूट फैली हुई है और कटुता और शत्रुता बढ़ रही है* तब दूसरा विचार ही कैसे हो सकता है? मुझे तो इस हालत को दुरुस्त करने के लिए भगीरथ प्रयत्न करना होगा।...मैं मान लूँगा कि मैं हार गया। मैं झुक जाऊँगा और झुककर सबको एकत्र करने की आशा रखूँगा।... मैं तो ईश्वर से इतनी ही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे सत्पथ दिखा, मेरे अन्दर राग-द्वेष या क्रोध का यदि कुछ भी अंश छिपा हुआ रह गया हो तो उसे निकाल डाल और मुझे ऐसा सन्देश पहुँचा जिसमें सब लोग उत्साह और उमङ्ग के साथ शामिल हों।"

—हिं० न० जी०, ७.९.'२४; पृष्ठ ३१]

'महात्मा नाम पर—

[१९२४]

[अगस्त १९२४ के अन्तिम दिनों गांधी जी के कई भाषण बम्बई में हुए थे। एक सभा में भिन्न-भिन्न दलों के वक्ता और श्रोता एकत्र थे। श्री जमनादास द्वारकादास ने अपने भाषण में गांधीजी के लिए 'गांधी जी' शब्द का प्रयोग किया था। जिसपर कुछ लोग चिल्लाने लगे 'महात्माजी' कहिये। इसी पर गांधी जी ने अपने भाषण में अपना हृदय उँडेल दिया।

—सम्पादक।]

---

*१९२४ के आरम्भ में जेल से बाहर आने पर गांधी जी ने देखा कि कांग्रेस में भयङ्कर दलबन्दी है। स्वराजी और अपरिवर्तनवादी एक दूसरे के प्रति कटु हो उठे हैं। हिन्दू-मुस्लिम सद्भावना दूर चली गई है। इन बातों से गांधी जी बड़े दुःखी हुए। उनके उद्गार इसी गहरी वेदना को सूचित करते हैं।—

—सम्पादक।]

"...'महात्मा' के नाम पर अनेक वाहियात बातें हुई हैं। मुझे 'महात्मा' शब्द में बदबू आती है। फिर जब कोई इस बात का इसरार करता है कि मेरे लिए 'महात्मा' शब्द का ही प्रयोग किया जाय तब तो मुझे असह्य पीड़ा होती है; मुझे जिन्दा रहना भारभूत मालूम होने लगता है। यदि मैं इस बात को जानता न होता कि मैं ज्यों-ज्यों 'महात्मा' शब्द का प्रयोग न करने पर जोर देता हूँ त्यों-त्यों उसका प्रयोग अधिकाधिक होता है तो मैं जरूर लोगों का मुँह बन्द कर देता। आश्रम में मेरा जीवन बहता है। वहाँ हर एक बच्चे, स्त्री, पुरुष सब को आज्ञा है कि वे 'महात्मा' शब्द का प्रयोग न करें, किसी पत्र में भी मेरा उल्लेख 'महात्मा' शब्द के द्वारा न करें; मुझे वे सिर्फ गांधी या गांधीजी कहा करें।...हमारा संग्राम शान्तिमय है। विनय और शिष्टाचार के बिना शान्ति कैसे हो सकती है? विनयहीन शान्ति जड़ शान्ति होगी। हम तो चैतन्य के पुजारी हैं और चैतन्यमय शान्ति में तो विवेक, शिष्टता, विनय ज़रूर रहता है। इसलिए मेरी सलाह है कि जिन लोगों ने जमनादासजी के भाषण में रोक-टोक की है वे सब उनसे माफी माँगें। जमनादासजी ने मेरी बड़ी स्तुति की है। पर अगर उन्होंने यह भी कहा होता कि गांधी के बराबर दुखदायी मनुष्य एक भी नहीं है—और जो ऐसा मानते हों उन्हें ऐसा कहने का पूरा अधिकार है—तो भी उन्हें रोकने का अधिकार किसी को नहीं, तो भी हमें उचित है कि हम शिष्टता और सभ्यतापूर्वक उनका भाषण सुनें। (इस जगह दो-तीन आदमियों ने उठकर हाथ जोड़कर जमनादासजी से माफी माँगी)...............

हमारी प्रगति में बाधक होने वाली सब से बड़ी वस्तु है असहिष्णुता। मैं इस स्थिति को दूर करने की कोशिश कर रहा हूँ। मैं अल्प प्राणी हूँ,

महा प्राणी नहीं। यदि महा प्राणी होता तो इस असहिष्णुता को सहज ही रोक सकता। अभी मेरे अन्दर शुद्धता, प्रेम, विनय, विवेक की खामी है। नहीं तो आप को मेरी आँखों में और जबान में वह बात दिखाई देती कि शान्तिमय असहयोग का यह तरीका नहीं है।......

"हिन्दुस्तान मुझ से कुछ आशा कर रहा है। वह समझता है कि बेलगाँव में मैं कोई ऐसा रास्ता बताऊँगा जिससे हम सब एक मत हो जायँगे, अथवा विरोधी विचारों को सहन करने लगेंगे। मैं अपने आप को धोखा नहीं दे सकता। अपनी तारीफ सुनकर मैं यह नहीं मान लेता कि मैं उस तारीफ के लायक हूँ। मेरी स्तुति का अर्थ सिर्फ इतना ही है कि अभी मुझ से अधिक आशा रखी जाती है,—अधिक प्रेम की, अधिक त्याग की, अधिक सेवा की आशा की जाती है। पर मैं यह किस तरह कर सकूँगा? मेरा शरीर अब कमजोर पड़ गया। उसका कारण हैं मेरे पाप। बिना पाप किये मनुष्य रोगी नहीं हो सकता।... मैं जो बीमार हुआ उसका कारण है मेरा कोई पाप ही। और जबतक मेरे हाथों ऐसे पाप जान में वा अनजान में होते रहेंगे तबतक समझना चाहिये कि मैं अपूर्ण मनुष्य हूँ। अपूर्ण मनुष्य सम्पूर्ण सलाह कैसे दे सकता है?......"

—हिं० न० जी० ७।९।'२४; पृष्ठ २९-३०]

बिना शर्त्त के शरणागत हूँ

"...मैं बिना किसी शर्त्त के शरणागत हूँ। मैं महासभा की रहनुमाई उसी हालत में कर सकता हूँ जब कि तमाम दल के लोग ऐसा चाहें। मैं इस घनघोर अन्धकार में सूरज की किरनें देखने की कोशिश कर रहा हूँ। मुझे वह धुँधली-सी दिखाई भी देती हैं। मुमकिन है, अब

भी मैं गलती कर रहा होऊँ। पर मैं इतनी बात जरूर जानता हूँ कि अब मेरे अन्दर लड़ाई का भाव बिल्कुल नहीं रह गया है। मैं एक जन्मजात लड़वैया हूँ। मेरे लिए इतना ही कहना बहुत है। मैं अपने अजीजों और आत्मीयों तक से लड़ा हूँ। पर मैं लड़ा हूँ प्रेमभाव से प्रेरित होकर ही। स्वराजियों से भी मुझे प्रेमभाव से प्रेरित होकर ही लड़ना चाहिये। पर मैं देखता हूँ कि अभी मुझे अपने प्रेम-भाव को साबित कर दिखाना बाकी है। मैं साबित कर चुका हूँ। लेकिन देखता हूँ, मैं गलती पर था। इसलिए मैं अपना कदम पीछे हटा रहा हूँ।"

—यं० इं० । हिं० न० जी० १४।९।'२४; पृष्ठ ३८]

सम्प्रदायिक एकता के लिए २१ दिन का उपवास

[सितम्बर १६२४]

"इन दिनों देश में जो दुर्घटनाएँ हो रही हैं वे मेरे लिए असह्य हो गई हैं। और इसमें मेरी असहाय अवस्था तो मुझे और भी असह्य हो रही है।

मेरा धर्म मुझे कहता है कि जब अनिवार्य सङ्कट उपस्थित हो और कष्ट असह्य हो जाय तब उपवास और प्रार्थना करनी चाहिये। अपने घनिष्ठ आत्मीयों के सम्बन्ध में भी मैंने ऐसा ही किया है।

अब तो यह भी देखता हूँ कि मेरे हर तरह लिखने और कहने से भी हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता नहीं हो सकती। इसीलिए मैं आज से २१ दिन का उपवास आरम्भ करता हूँ। ८ अक्तूबर बुधवार को वह पूरा होगा। अनशन के दिनों में सिर्फ पानी और उसके साथ नमक लेने की मैंने छुट्टी रखी है। यह अनशन प्रायश्चित्त के रूप में भी है और प्रार्थना के रूप में भी। यदि अकेला प्रायश्चित्त-रूप होता तो

इसे सर्वसाधारण के सामने प्रकाशित करने की आवश्यकता न थी। परन्तु इस बात के प्रकट करने का सिर्फ एक ही प्रयोजन है। मुझे आशा करनी चाहिये कि मेरा यह प्रायश्चित्त हिन्दू और मुसलमानों के लिए, जो कि आज तक मेल-मिलाप से काम करते आये हैं, आत्मघात न करने के लिए एक कारगर प्रार्थना हो जाय। मैं तमाम जातियों के नेताओं से, अंग्रेजों तक से, सविनय प्रार्थना करता हूँ कि वे धर्म और मनुष्यता के लिए लाञ्छन-रूप इन झगड़ों के मिटाने के हेतु एक जगह एकत्र होकर विचार करें। आज तो ऐसा ही जान पड़ता है, मानो हम ने ईश्वर को तख्त से उतार दिया है। आइये, हम फिर से अपने हृदय-रूपी सिंहासन पर उसे अधिष्ठित करें।"

मेरा उपवास

"....मैं अपना कोई काम बिना प्रार्थना किये नहीं करता। मनुष्य स्खलनशील है। वह कभी निर्भ्रान्त नहीं हो सकता। जिसे वह अपनी प्रार्थना का उत्तर समझता है, सम्भव है कि वह उसके अहङ्कार की प्रति-ध्वनि हो। अचूक मार्ग दिखाने के लिए मनुष्य का अन्तःकरण पूर्ण निर्दोष और दुष्कर्म करने में असमर्थ होना चाहिए। मैं ऐसा दावा नहीं कर सकता। मेरी तो भूलती-भटकती, गिरती-पड़ती, उठती और प्रयत्न करती हुई अपूर्ण आत्मा है। सो मैं अपने पर तथा अपनों पर प्रयोग करके ही आगे बढ़ सकता हूँ। मैं ईश्वर के, और इसलिए मनुष्य जाति के पूर्ण एकत्व को मानता हूँ। हमारे शरीर यदि भिन्न-भिन्न हैं तो क्या हुआ, आत्मा तो हमारे अन्दर एक ही है। सूर्य की किरणें परावर्तन से अनेक दिखाई देती हैं। पर उनका आधार—उद्गम एक ही है। इसलिए मैं अपने को अत्यन्त दुष्टात्मा से भी अलग

नहीं मान सकता (और न सज्जनों के साथ मेरी तद्रूपता से ही इन्कार किया जा सकता है)। ऐसी अवस्था में मैं, चाहूँ या न चाहूँ, अपने तमाम सजातीयों—मनुष्यों—को अपने प्रयोग में अनायास शामिल किये बिना नहीं रह सकता। और न प्रयोग किये बिना ही मेरा काम चल सकता है। जीवन को प्रयोगों की एक अनन्त मालिका ही समझिए।

× × ×

"......मेरा प्रायश्चित्त है एक विदीर्ण और क्षत-विक्षत हृदय की प्रार्थना कि परमात्मन् मेरे अनजान में किये पापों को क्षमा कर...... एक दूसरे के धर्म को गालियाँ देना, अन्धा-धुन्ध वक्तव्य प्रकाशित करना असत्य बोलना, निर्दोष लोगों के सिर फोड़ना, मन्दिरों या मस्जिदों को तोड़ना अवश्य ईश्वर को न मानना है।......हम शैतान के जाल में फँस गये हैं। धर्म को चाहे जिस नाम से पुकारिये उसका लक्षण यह नहीं है। हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए प्रायश्चित्त-विधि उपवास नहीं बल्कि अपने कदम पीछे हटाना—अपनी गलती सुधारना है। एक मुसलमान के लिए सच्चा प्रायश्चित्त यही है कि वह अपने किसी हिन्दू भाई के प्रति दुर्भाव न रखे और एक हिन्दू के लिए भी यही सच्चा प्रायश्चित्त है कि वह किसी मुसलमान भाई के प्रति जरा भी दुर्भाव न रखे।

× × ×

"मैंने किसी मित्र से इसकी[1] चर्चा न की—हकीम साहब[2] से भी नहीं जो कि बुधवार को बड़ी देर तक मेरे साथ रहे थे—और न मौलाना

---

१. उपवास के निश्चय से अभिप्राय है। २. स्व० हकीम अजमल खाँ। —सम्पादक।

मुहम्मदअली से, जिनके घर मैं आतिथ्य का सौभाग्य प्राप्त कर रहा हूँ। जब कोई मनुष्य ईश्वर से अपना हिसाब कर लेना चाहता हो तब वह किसी तीसरे से सलाह करने नहीं जाता। उसे जाना भी न चाहिए।⋯ यह सलाह-मशिवरे या दलीलों का विषय नहीं। यह तो हृदय की व्याकुलता की बात है। जब राम ने अपने प्राप्त कर्तव्य के पालन का निश्चय कर लिया तब न तो वे अपनी पूज्य माता के रोदन-क्रन्दन से, न गुरु के उपदेश से, न प्रजाजन के अनुनय-विनय से, और यहाँ तक कि न पिता की मृत्यु की निश्चित सम्भावना से अपनी प्रतिज्ञा से ज़रा भी डिगे। ये बातें तो क्षणिक हैं। यदि राम ने ऐसे मोह के अवसरों पर अपने हृदय को वज्र न बना लिया होता तो हिन्दूधर्म में धर्म का अंश बहुत न रह जाता।"

—यं० इं० । हिं० न० जी०, २८।९।'२४; पृष्ठ ५०]

× × ×

"⋯⋯कुछ लोग कानोंकान कह रहे हैं कि मैं मुसलमान मित्रों के बीच इतना रहकर अपने को हिन्दुओं का दिल जानने के अयोग्य बना रहा हूँ। पर हिन्दुओं का दिल कोई मुझसे भिन्न चीज़ है? जब कि मेरे शरीर और मन का एक-एक कण हिन्दू है तो निश्चय ही हिन्दुओं के मन की बात जानने के लिए मुझे हिन्दुओं के बीच रहने की कोई ज़रूरत नहीं है। मेरा हिन्दूधर्म क्षुद्र होगा यदि वह अत्यन्त प्रतिकूल प्रभावों के अन्दर भी न फल-फूल सके। मैं सहज स्फूर्ति से ही इस बात को जानता हूँ कि हिन्दू धर्म के लिए किस बात की आवश्यकता है। लेकिन मुसलमानों के दिल का हाल जानने के लिए ज़रूर मुझे प्रयास करना होगा। उत्कृष्ट मुसलमानों के घनिष्ट सम्पर्क में मैं जितना ही अधिक आऊँगा उतना ही

मुसलमानों और उनके कार्यों के विषय में मेरा अन्दाज़ अधिक न्याययुक्त होगा। मैं इन दोनों जातियों के बीच एक सन्धि-साधन बनने का प्रयत्न कर रहा हूँ। यदि आवश्यकता हो तो अपना खून देकर भी इन दो जातियों में सन्धि करा देने के लिए मैं लालायित हूँ। लेकिन ऐसा करने के पहले मुझे मुसलमानों को यह साबित कर देना होगा कि मैं उन्हें उतना ही प्यार करता हूँ जितना हिन्दुओं को। मेरा धर्म मुझे सिखाता है कि सबपर समान प्रेम रक्खो। ईश्वर इसमें मेरा सहायक हो। और और बातों के अलावा मेरे उपवास का एक उद्देश यह भी है कि मैं उस समभाव—पूर्ण और निःस्वार्थ प्रेमभाव को प्राप्त कर सकूँ।"

—यं० इं०। हिं० न० जी०, २८.९.'२४; पृष्ठ ५०-५१

मानस के स्फुट चित्र

[सितम्बर १९२४]

"प्रति सप्ताह 'नवजीवन' में मैंने अपनी आत्मा उँड़ेलने का प्रयत्न किया है। एक भी शब्द ईश्वर को साक्षी रक्खे बिना मैंने नहीं लिखा है।......

"मैंने तो पुकार-पुकारकर कहा है कि अहिंसा—क्षमा—वीर का लक्षण है। जिसे मरने की शक्ति है वही मारने से अपने को रोक सकता है।......मैंने कितनी ही बार लिखा है और कहा है कि कायरता कभी धर्म नहीं हो सकता। संसार में तलवार के लिए जगह ज़रूर है। कायर का तो क्षय ही हो सकता है। उसका क्षय ही योग्य भी है। परन्तु मैंने तो यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि तलवार चलानेवाले का भी क्षय ही होगा। तलवार से मनुष्य किसको बचावेगा और किसको मारेगा? आत्मबल के सामने तलवार का बल तृणवत है। अहिंसा आत्मा का बल है। तलवार

का उपयोग करके आत्मा शरीरवत् बनती है। अहिंसा का उपयोग करके आत्मा आत्मवत् बनती है। जो इस बात को न समझ सके उसे तो तलवार हाथ में लेकर भी अपने आश्रितों की रक्षा ज़रूर करनी चाहिए।

"ऐसा अनमोल अहिंसा-धर्म मैं शब्दों के द्वारा नहीं प्रकट कर सकता। खुद पालन करके ही उसका पालन कराया जा सकता है। इससे इस समय मैं उसका पालन कर रहा हूँ। *मेरे मन्दिरों को तोड़ने-वाले मुसलमान को भी मैं तलवार से न मारूँगा। उसपर मैं क्रोध भी न करूँगा। उसे भी मैं केवल प्रेम के द्वारा ही जीतूँगा।

"मैंने लिखा है कि हिन्दुस्तान में यदि एक ही शुद्ध प्रेमी पैदा हो जाय तो वह स्वधर्म की रक्षा कर सकता है। मैं चाहता हूँ कि ऐसा बनूँ। मैं हमेशा लिखता हूँ कि तुम भी ऐसे बनो।"

"मैं जानता हूँ कि मेरे अन्दर बहुत प्रेम है। पर प्रेम की तो सीमा ही नहीं होती। मैं यह भी जानता हूँ कि मेरा प्रेम असीम नहीं है। मैं साँप के साथ कहाँ खेल सकता हूँ? जो अहिंसामूर्ति हो उसके सामने साँप भी ठण्डा हो जाता है। मुझे इसपर पूरा-पूरा विश्वास है।"

—नवजीवन। हिं० न० जी०, २८।९।'२४; पृष्ठ ५०

मेरा अवलम्ब

[१९२४ में २१ दिन के उपवास के बीच उपवास के बारहवें दिन लिखी गई रचना—सम्पा०]

---

*सितम्बर १९२४ में गांधीजी ने साम्प्रदायिक अनैक्य से व्यथित हो और उसे दूर करने में अपने को असमर्थ पाकर दिल्ली में २१ दिन का उपवास किया था। उस समय नवजीवन के पाठकों को एक खुली चिट्ठी उन्होंने लिखी थी। उसीमें ये अंश लिये गये हैं :—सम्पादक।

"मेरे प्रायश्चित्त और प्रार्थना का आज बीसवाँ दिन है। अब मैं फिर शान्ति के राज्य से निकलकर तूफानी दुनिया में पड़ने वाला हूँ। ज्यों-ज्यों मुझे इसका खयाल होता है त्यों-त्यों मैं अपने को अधिकाधिक असहाय अनुभव करता हूँ। कितने लोग एकता परिषद् के शुरू किये काम को पूरा करने के लिए मेरी ओर देखते हैं। कितने लोग राजनीतिक दलों को एकत्र करने की उम्मीद मुझसे रखते हैं। पर मैं जानता हूँ कि मैं कुछ नहीं कर सकता। ईश्वर ही सब कुछ कर सकता है। प्रभो, मुझे अपना योग्य साधन बना और अपना इच्छित काम मुझसे ले!

मनुष्य कोई चीज़ नहीं। नेपोलियन ने क्या-क्या मनसूबे बाँधे, पर सेंट हेलेना में एक कैदी बनकर उसे रहना पड़ा। जर्मन सम्राट कैसर ने योरप के तख्त पर अपनी नज़र गड़ाई, पर आज वह एक मामूली आदमी है। ईश्वर को यही मंजूर था। हम ऐसे उदाहरणों पर विचार करें और नम्र बनें।

इन अनुग्रह, सौभाग्य और शान्ति के दिनों में मैं मन ही मन एक भजन गाया करता था। वह सत्याग्रह आश्रम में अक्सर गाया जाता है। वह इतना भावपूर्ण है कि मैं उसे पाठकों के सामने उपस्थित करने की सुखाभिलाषा को रोक नहीं सकता। मेरे शब्दों की अपेक्षा उस भजन का भाव ही मेरी स्थिति को अच्छी तरह प्रदर्शित करता है।

रघुबर तुमको मेरी लाज।

सदा सदा मैं सरन तिहारी, तुम बड़े गरीब नेवाज ॥

पतित उधारन बिरुद तिहारो, स्रवनन सुनी अवाज।

हौं तो पतित पुरातन कहिये, पार उतारो जहाज ॥

अघ-खण्डन दुःख-भंजन जन के, यही तिहारो काज।

तुलसिदास पर किरपा करिये, भक्ति-दान देहु आज ॥

—६.१०.'२४ । यं० इं० । हिं० न० जी०, १२.१०.'२४; पृष्ठ ६५]

अपने विषय में

"...मुझे सेवा-धर्म प्रिय है। इसी से भंगी प्रिय है। मैं तो भंगी के साथ बैठकर खाता भी हूँ। पर आप से नहीं कहता कि आप भी उसके साथ बैठकर खाओ, रोटी-बेटी व्यवहार करो। आप से कह भी किस तरह सकता हूँ ? मैं एक फकीर जैसा हूँ—सच्चा फकीर हूँ या नहीं, सो नहीं जानता। मैं सच्चा संन्यासी हूँ या नहीं, सो भी नहीं जानता। पर संन्यास मुझे पसन्द है। ब्रह्मचर्य मुझे प्रिय है, पर नहीं जानता कि मैं सच्चा ब्रह्मचारी हूँ या नहीं। क्योंकि ब्रह्मचारी के मन में यदि दूषित विचार आते हों, वह सपने में भी व्यभिचार करने का विचार करता हो तो मैं कहूँगा कि वह ब्रह्मचारी नहीं। मेरे मुँह से यदि गुस्से में एक भी शब्द निकले, द्वेष से प्रेरित होकर कोई काम हो, जिसे लोग मेरा कट्टर से कट्टर दुश्मन मानते हों उसके खिलाफ भी यदि क्रोध में कुछ वचन कहूँ तो मैं अपने को ब्रह्मचारी नहीं कह सकता। सो मैं पूर्ण संन्यासी हूँ कि नहीं, यह नहीं जानता। पर हाँ, मैं जरूर कहूँगा कि मेरे जीवन का प्रवाह इसी दिशा में बह रहा है।...ईश्वर की इच्छा हो तो मुझे बचावे अथवा मार डाले। पर मैं तो कोढ़ी की सेवा किये बिना नहीं रह सकता। ऐसा करते हुए यह भी दावा करूँगा कि यदि ईश्वर को गरज हो तो मुझे रखे।"

—हिं० न० जी०, १५.१.'२५; पृष्ठ १८० । काठियावाड़ राजनीतिक परिषद् के भाषण से]

हिन्दुओं से

"...ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों से मैं कहता हूँ कि हिन्दुस्तान

का उद्धार मुसलमानों पर उतना अवलम्बित नहीं, ईसाइयों पर उतना अवलम्बित नहीं, जितना इस बात पर है कि हिन्दू अपने धर्म की रक्षा किस प्रकार करते हैं। क्योंकि मुसलमानों का काशी-विश्वनाथ यहाँ नहीं, मक्का में है, ईसाइयों का जेरूसलेम में है। पर आप तो हिन्दुस्तान में ही रहकर मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। यह युधिष्ठिर की भूमि है; यह रामचन्द्र की भूमि है। ऋषि-मुनियों ने हमसे कह रखा है कि यह कर्म-भूमि है, भोग-भूमि नहीं। इस भूमि के निवासियों से कहता हूँ कि हिन्दू-धर्म आज तराजू पर चढ़ा हुआ है और संसार के तमाम धर्मों के साथ उसकी तुलना हो रही है, और जो बात बुद्धि के बाहर होगी, दया-धर्म के बाहर होगी उसका समावेश यदि हिन्दूधर्म में होगा तो उसका नाश निश्चित समझ रखना। दया-धर्म का मुझे भान है और उसी के कारण मैं देख रहा हूँ कि हिन्दूधर्म के नाम पर कितना पाखण्ड, कितना अज्ञान फैल रहा है। इस पाखण्ड और अज्ञान के खिलाफ, यदि जरूरत पड़े तो, मैं अकेला लड़ूँगा, अकेला रहकर तपश्चर्या करूँगा और उसका नाम जपते हुए मरूँगा। शायद ऐसा भी हो कि मैं पागल हो जाऊँ और कहूँ कि मैंने अस्पृश्यता-सम्बन्धी विचारों में भूल की है, और मैं कहूँ कि अस्पृश्यता को हिन्दूधर्म का पाप कहकर मैंने पाप किया था तो आप मानना कि मैं डर गया हूँ, सामना नहीं कर सकता और दिक होकर मैं अपने विचार बदल रहा हूँ। उस दशा में आप मानना कि मैं मूर्च्छित अवस्था में ऐसी बात बक रहा हूँ।"

—हिं० न० जी०, १५।१।'२५; पृष्ठ १८०। [काठियावाड़ राजनीतिक परिषद् के अध्यक्षपद से दिये प्रारम्भिक मौखिक भाषण से]